ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

तारण त्रिवेणी

(भाग-2)

श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रीज्ञानसमुच्चयसार की
चयनित गाथाओं पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

—: प्रकाशन :—

वीरशासन जयन्ती के अवसर पर

श्रावण कृष्ण 1, दिनांक, 22 जुलाई 2024

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

श्रीमद् तारणतरणस्वामी द्वारा रचित ज्ञानसमुच्चयसार की चुनी हुई गाथाओं पर आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः धारावाही प्रवचन प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

श्रीमद् तारणस्वामी 16वीं शताब्दी के उस कालचक्र में हुए महापुरुष हैं जिस समय राजनीति में उथल-पुथल, सम्प्रदायों में तनाव का जोर था। ऐसी विषम परिस्थितियों में आपने अपनी सरल सुबोध शैली से जैन तत्त्वज्ञान को न मात्र जीवन्त ही रखा अपितु अपने प्रभावक व्यक्तित्व से उसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी किया। कहा जाता है कि आपके उपदेशों से लगभग पाँच लाख लोगों ने साम्प्रदायिक व्यामोह को त्यागकर पवित्र जिनमार्ग को अपनाया था। आपके समागम में सभी जाति और वर्ग के लोग आते थे और पवित्र जिनशासन के अनुगामी बन जाते थे।

वीर निर्वाण संवत् 2491 में पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य अनुयायी सागर निवासी श्रीमन्त समाजभूषण सेठ भगवानदास शोभालालजी ने पूज्य गुरुदेवश्री से तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार की विशिष्ट गाथाओं पर प्रवचन प्रदान करने का अनुरोध किया। जिसे स्वीकार कर गुरुदेवश्री ने ये प्रवचन प्रदान किये। विदित हो कि इससे पूर्व भी गुरुदेवश्री ने तारणस्वामी द्वारा रचित ज्ञानसमुच्चयसार तथा उपदेशशुद्धसार ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। इन तीनों ग्रन्थों पर हुए आठ-आठ प्रवचनों के संकलन संकलित प्रवचन के रूप में अष्ट प्रवचन भाग 1, 2, 3 के रूप में उपलब्ध हैं।

अब यह ज्ञानसमुच्चयसार के शब्दशः प्रवचन आपके सन्मुख प्रस्तुत किये जा रहे हैं। अत्यन्त हर्ष के साथ सूचित करते हैं कि एक मुमुक्षु भाई के सौजन्य से प्रस्तुत उपदेशशुद्धसार और ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थ के ऑडियो प्रवचन भी उपलब्ध हो गये हैं, जिनका शब्दशः प्रकाशन प्रस्तुत किया जा रहा है।

सभी जीव इन प्रवचनों का लाभ अवश्य लेंगे, इसी भावना और विश्वास के साथ...

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

मुम्बई

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं०	दिनांक	गाथा	पृ.सं.
१	२५-०९-१९६२	गाथा-२५, २७, ८०, ८४, ३५०	००१
२	२६-०९-१९६२	गाथा-२८, ३०, १११, १२४-१२५, १६८, १७५	०२१
३	२७-०९-१९६२	गाथा-३१, ३३, २६१, २६२, २६४	०३७
४	२८-०९-१९६२	गाथा-३४ से ३६, ४४८, ५६५, ५६६, ८०७, ८०८, ८०९	०५९
५	२९-०९-१९६२	गाथा-५९, ६१, ४९, १८३, २९०, ३१३	०७९
६	३०-०९-१९६२	गाथा-६२ से ६६, ८८, ९२, ५३९, ५४०	०९९
७	०१-१०-१९६२	गाथा-६७ से ७३, ८८, ५२८, ५३९	१२०
८	०२-१०-१९६२	गाथा-७४ से ७८	१३९

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

तारण त्रिवेणी

(भाग - 2)

श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रीज्ञानसमुच्चयसार की चयनित गाथाओं पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः प्रवचन

भाद्र कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक - २५-०९-१९६२
गाथा-२५, २७, ८०, ८४, ३५०, प्रवचन-१

ज्ञानसमुच्चयसार नाम का ग्रन्थ तारणस्वामी ने बनाया है। ज्ञानसमुच्चय का अर्थ क्या है ? ज्ञान का समूह। सम्यग्ज्ञान का जितना समूह है, उसमें सर्वज्ञ परमात्मा जिनेन्द्रदेव ने साररूप क्या कहा ? समझ में आया ? भगवान की दिव्यध्वनि में आया और परम्परा सन्तों ने आत्मा के साररूप सम्यग्ज्ञान सबका सार क्या कहा, वह इन्होंने अध्यात्मभाषा में कथन किया है। २५ गाथा से लेना है।

सम्यग्दर्शन की जरूरत—आवश्यकता। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, यह अनन्त काल में एक सेकेण्डमात्र भी जाना नहीं। क्या चीज़ है ? और कैसे प्रगट होता है ? ऐसी भी इसकी पहिचान की नहीं। तो उस वस्तु की क्या आवश्यकता है और उस वस्तु से मोक्षमार्ग की शुरुआत होती है। इसके अतिरिक्त मोक्षमार्ग की शुरुआत नहीं होती। उसमें तो मांगलिक किया है पहले। यहाँ अपने २५ से। यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या ही मांगलिक है। '**जिन**' पहला शब्द ही पड़ा है, देखो!

जिन उक्तं सुद्ध संमत्तं, सार्धं भव्यलोकयं।
तस्याति गुणनिरूपं च, सुध सार्धं बुधै जनै॥२५॥

यह इतने शब्द पड़े हैं। पढ़ा भी नहीं होगा कभी। शोभालालजी! घर में रखना।

मुमुक्षु : पूजा करते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजा करते हैं, परन्तु क्या भाव है, यह समझे बिना? सेठ! पूजा करते हैं। लक्ष्मी को प्रयोग करते हैं या नहीं खाने-पीने में? तो इस पुस्तक की मात्र पूजा करना?

कहते हैं कि वस्तु का स्वरूप। यह कहते हैं, देखो! पहला शब्द '**जिन**' मांगलिक पड़ा है। '**जिन उक्तं सुद्ध संमत्तं,' जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथन किया हुआ...** लो! अकेले हम ही कहते हैं, ऐसा नहीं। यह तो जिनेन्द्र भगवान त्रिलोकनाथ देवाधिदेव परमात्मा अनन्त तीर्थंकर हुए, उनका '**उक्तं**'—उनका कहा हुआ हम सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहते हैं। समझ में आया? ऐसी व्याख्या जैनदर्शन के सिवाय कहीं है नहीं। सेठ! तो उसके साथ किसी का मिलान करना, यह बात यथार्थ नहीं है। उसमें प्रमुख है तो उसे ही कहना पड़े न! समझ में आया? क्यों पण्डितजी!

'**जिन उक्तं**' शब्द। सहज ही यह श्लोक लेने की इच्छा हुई और पहला शब्द ही '**जिन**' पड़ा है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञपद अन्तर में से प्रगट हुआ ऐसे जिन। जिन अर्थात् अज्ञान और राग-द्वेष को जीतकर, वीतराग विज्ञानघन की पर्याय जिन्होंने प्रगट की है, उन्हें जिन कहा जाता है। वे जिन तो द्रव्य में भी जिनपना था, गुण में भी था, उसे पर्याय में प्रगट किया, ऐसी बात को जिन कहते हैं। ऐसी बात सर्वज्ञ परमात्मा जिन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं मिलान करो तो हो सकती नहीं। पण्डितजी! बहुत के साथ मिलाया है न इसमें?

'**जिन उक्तं**' जो अपना पद अन्तर में जिनपद ही आत्मा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' समझ में आया? शोभालालजी! यह रिकॉर्डिंग होती है पश्चात् वहाँ घर में सागर में बराबर सुनना। 'जिन सो ही है आत्मा' यह आत्मा ही जिन है। जिन हो गये वे सर्वज्ञ परमात्मा हो गये, परन्तु जिन यह आत्मा है, अपना स्वरूप। अन्तर में एक समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़ दो तो द्रव्य और स्वभाव जिन अर्थात् वीतराग विज्ञानघन स्वभाव अपना है।

वीतराग विज्ञानघन स्वभाव है। जिसने पर्याय में—अवस्था में जिनपना प्रगट किया है, उसे हम कहते हैं कि मांगलिक के लिये उनका स्मरण करके यह उन्होंने कहा, जैसा कहा, उसमें जैन परमेश्वर की भक्ति और बहुमान आ जाता है। समझ में आया?

भगवान कहते हैं। उसमें यह मांगलिक आ गया। 'अरिहंता मंगलं' आता है या नहीं? चार मांगलिक। सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं... तो यह पहले कहते हैं। जिन, ऐसा शब्द पड़ा है। उसमें ही मांगलिक आ गया। अरिहन्त पद जिसे मांगलिकरूप कहते हैं, उस पद में वाणी द्वारा कहा। सिद्ध है, उन्हें वाणी नहीं, तो उन्होंने कहा नहीं। यहाँ तो '**जिन उक्तं**' सर्वज्ञपद जो सयोगी केवलज्ञानी हैं और वाणी निकलने की योग्यता है, उन्हें पहले याद किया है। क्यों याद किया? कि सिद्ध का उपकार पहले नहीं। सिद्ध को वाणी नहीं। और सर्वज्ञजिन को वाणी है। तो उपकार समझने के लिये पहले अरिहन्त का बहुमान आता है। क्योंकि वे उपकारी हैं। ... तो पहले '**जिन उक्तं**' (लिया है)। उनकी वाणी निकलती है, ऐसे जिन वीतराग का मैं आदर करके, याद करके, स्मरण करके यह श्लोक बनाता हूँ। समझ में आया?

'**जिन उक्तं**' तो कोई कहे कि वीतरागपद तो आत्मा की पर्याय में प्राप्त हो जाये, परन्तु उन्हें वाणी नहीं होती। तो ऐसा होता ही नहीं। कोई मुनि हो केवलज्ञानी कि जिन्हें वाणी न हो, परन्तु जिनका परोपकार हुआ, उनको वाणी न हो तो वे परोपकार में निमित्त नहीं कहते जाते। '**जिन उक्तं**' जो वीतरागपर्याय जिन्हें प्रगट हुई, उन्होंने कहा हुआ, उनकी वाणी में आया हुआ। यह भी व्यवहार है। '**उक्तं**'—कहा। वाणी कहीं आत्मा की नहीं, परन्तु कथन की शैली (क्या करे?) '**जिन उक्तं**'। समझ में आया? पण्डितजी! वीतराग है, वे वाणी बोलते हैं? वाणी उनकी है ही नहीं, वाणी उनकी है ही नहीं। वाणी जड़ की है। आत्मा अपना वीतराग विज्ञानघन पर्याय में अनुभव करता है परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध करके वाणी निकलती है। अपनी जड़शक्ति की पर्याय से, उसमें भगवान का योग और ज्ञान निमित्त है। तो वह निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध से कहते हुए कहते हैं कि '**जिन उक्तं**' निश्चय कहो या जिन से वाणी निकली है, वह तो निश्चय में आता नहीं। समझ में आया? तो व्यवहार भी सिद्ध किया। समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा। तो कहा वह निमित्त से व्यवहार आया। व्यवहार आ गया।

व्यवहार है अवश्य, परन्तु वह वास्तव में अन्तर दृष्टि प्रयोजन के ऊपर (है तो) उसका आश्रय लेने में अप्रयोजनभूत है। यह अभी दूसरी गाथा में कहेंगे—२६ में कहेंगे।

जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथन किया हुआ... 'सुद्ध संमत्तं' कैसा है समकित? **निर्दोष शुद्ध सम्यग्दर्शन...** शुद्ध समकित क्यों कहा? कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, उस राग को व्यवहार समकित कहते हैं, परन्तु वह अशुद्ध समकित है। समझ में आया? सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र, वे परद्रव्य हैं तो उनकी श्रद्धा और नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा होती है, वह विकल्प है, वह राग है तो राग को समकित कहना, वह अशुद्ध है, वह अशुद्ध समकित है। तो कहते हैं कि मैं तो शुद्ध समकित कहूँगा। भगवान ने कहा वैसा शुद्ध समकित कहूँगा। पण्डितजी! शुद्ध अर्थात् निश्चय। अपना चैतन्य प्रभु पूर्णानन्द है, उसके अवलम्बन से जो ... अनुभूति में प्रतीति होती है, उसे निश्चय शुद्ध समकित कहा जाता है। समझ में आया? साथ में व्यवहार होता है, परन्तु वह व्यवहार जाननेयोग्य चीज़ हो गयी, वह आदरनेयोग्य नहीं, आदरयोग्य नहीं। समझ में आया?

'जिन उक्तं सुद्ध संमत्तं' इतने शब्दों में (ऐसा कहा कि) शुद्ध समकित को भगवान ने कहा, वैसा कहूँगा। मेरा आत्मा और सबका आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध पूर्णानन्द चैतन्यप्रकाश पुंज है, उसके अन्दर आत्मा का अभिप्राय और परिणाम अभिमुख—स्वभाव सन्मुख होकर, ध्रुव स्वभाव सन्मुख होकर, चैतन्य एकरूप ज्ञायकस्वभाव सन्मुख होकर जो अपने में निश्चय शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह सर्वज्ञ ने कहा, उसे मैं कहता हूँ। सेठी! शुद्ध समकित कहने में तो शुद्ध की अपेक्षा से दूसरा विकल्प है, यह सिद्ध हुआ। उसे अशुद्ध समकित कहो या व्यवहार समकित कहो। वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं, यह इसमें आ गया। शोभालालजी! यह सब विचार करना पड़ेगा। मात्र पैसा... पैसा... पैसा... करते हैं न! तम्बाकू और पैसा, दो।

मुमुक्षु : यह तो कारणकार्य का सम्बन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारणकार्य का दूसरा सम्बन्ध है। वहाँ भी कारणकार्य है, यहाँ भी कारणकार्य है, हों! एक जगह लिखा है। कहाँ लिखा है खबर है? कारणकार्य। दूसरे में लिया है? कारणकार्य। पृष्ठ ४१। देखो, भाई! पृष्ठ ४१। उसमें से निकालो।

देखो, पृष्ठ ४१ गाथा... देखो भाई ८०वीं गाथा में कहा है। ज्ञानसमुच्चयसार की ८० गाथा। ८०, देखो। निकाली ? ८०।

कारणं कार्ज सिद्धं च, जं कारणं कार्ज उद्यमं।
स कारणं कार्ज सिद्धं च, कारणं कार्जं सदा बुधैः ॥८०॥

क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : यह तो उपादान....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उपादान आ गया मूल तो। ... लेना है न। यहाँ जो शुद्ध कहा है तो शुद्ध समकित का कारण भी शुद्ध ही है। समझ में आया ? शुद्ध का कारण भी शुद्ध और शुद्ध का कार्य भी शुद्ध। जरा सूक्ष्म बात है। थोड़ी सूक्ष्म पड़ेगी, हों ! परन्तु सुननी पड़ेगी। तुम तारणस्वामी समाज है हमारा, हम समैया है, ऐसा कहते हैं। तो समझना तो पड़ेगा या नहीं ? विचार करना कि क्या कहते हैं।

देखो, **कारण से ही कार्य की सिद्धि होती है... 'जं कारणं कार्ज उद्यमं' कारण वही है जिससे कार्य के सिद्ध करने का पुरुषार्थ किया जा सके...** निमित्त कारण उसे कहते हैं कि जो शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्ध आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान का पुरुषार्थ किया जाये। वह पुरुषार्थ कैसे करे ? त्रिकाल शुद्ध है, उस ओर का पुरुषार्थ किया जाये। समझ में आया ? यह कारण भी शुद्ध है और कार्य भी शुद्ध है। वर्तमान यहाँ कहा न ? **'सुद्ध संमत्तं',** तो शुद्ध समकित का कारण, वह अशुद्ध समकित जो है व्यवहार होता है, परन्तु वास्तव में कारण नहीं। भाई ! दो कहा। समझ में आया ? यह तो कोई-कोई बोल लिख लिये थे। अभी थोड़ा पढ़ा है। इसका अभ्यास तो है नहीं। एक बार बहुत वर्ष पहले सब देखा था। तो क्या कहते हैं, देखो !

कारण वही है जिससे कार्य के सिद्ध करने का पुरुषार्थ किया जा सके... व्यवहार समकित का पुरुषार्थ करने से कोई निश्चय समकित होता नहीं। समझ में आया ? व्यवहार का विकल्प जो है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, वह विकल्प का पुरुषार्थ करने से निश्चय कार्य का शुद्ध का पुरुषार्थ होता नहीं। अपने स्वभाव सन्मुख शुद्ध चैतन्य का पुरुषार्थ कारण शुद्ध को बनाकर जो पुरुषार्थ करता है

तो शुद्ध कारण और शुद्ध सम्यग्दर्शन उसका कार्य। कारणपरमात्मा अपना त्रिकाल स्वभाव जो है, उसका पुरुषार्थ अन्तर (में) करने से कारण भी शुद्ध और उसका सम्यग्दर्शन कार्य भी शुद्ध।

यहाँ कहा न '**सुद्धं संमत्तं**' तो उसमें व्यवहार समकित कारण है और निश्चय समकित कार्य है, ऐसा व्यवहारनय से कथन किया जाता है। परन्तु व्यवहार अभूतार्थ है, वह सत्यार्थ नहीं। सत्यार्थ तो यह है कि निश्चय '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**'। अपना स्वभाव भूतार्थ जो शुद्ध है, उस ओर का पुरुषार्थ करने से अपने शुद्ध सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। ऐसा '**जिन उक्तं**' ऐसा जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा कहते हैं। देखो, ... का शब्द फिर लेंगे। यहाँ आया न कारण?

यहाँ मोक्ष साधन में... देखो, **कारण और कार्य दोनों शुद्ध हैं...** ८० गाथा। ८० में देखो। '**स कारणं कार्जं सिद्धं च**' है? कारण भी शुद्ध है और कार्य भी शुद्ध है। अभी बड़ी गड़बड़ चलती है। समझ में आया? तो कहते हैं कि शुद्ध सम्यग्दर्शन आत्मा की पर्याय प्रगट हो, उसमें कारण पुरुषार्थ भी शुद्ध है और सम्यग्दर्शन उसका कार्य भी शुद्ध है अथवा त्रिकाल द्रव्य भी शुद्ध है और पर्याय भी शुद्ध है। यह तो (टेप में) उतरता है, यह वहाँ बराबर सुनना। '**स कारणं कार्जं सुद्धं च**' तो कोई कहे, समझ में आया? भाई! व्यवहार सम्यक् हो तो उससे निश्चय प्राप्त होगा, यह व्यवहारनय का अभूतार्थ कथन है, असत्यार्थ कथन है, सत्यार्थ नहीं। वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं। यह बड़ी गड़बड़ अभी चलती है।

तो कहते हैं, '**कारणं कार्जं सदा बुधैः**' देखो! **बुद्धिमानों को सदा उसी शुद्ध कारण को करते रहना चाहिए।** '**बुधैः**' (बुद्धिमानों को) सदा कारण-कार्य शुद्ध का समझना चाहिए। देखो! सम्यग्ज्ञानी को, बुद्धिवन्त को, सम्यक् समझणवाले को कारण और कार्य सम्यग्दर्शन में मोक्षमार्ग, निश्चय मोक्षमार्ग जो है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह शुद्ध है। तो उसका पुरुषार्थ भी अन्तर सन्मुख का शुद्ध है अथवा उसका कारण भी त्रिकाल शुद्ध है। ऐसा बुद्धिमान सम्यग्ज्ञानियों को समझना चाहिए। पण्डितजी! परन्तु पण्डितजी को खबर नहीं, फिर क्या करे अन्दर? उलहाना देना चाहिए। सेठ को देते हैं और दोनों को देते हैं। तुमको देना। तुम प्रमुख मुख्य हो। समझ में आया?

ओहो! '**जिन उक्तं**' त्रिलोकनाथ भगवान ने कारण और कार्य शुद्ध कहे हैं। समझ में आया? यदि कारण अशुद्ध है और कार्य शुद्ध है, ऐसा कहा गया हो, शास्त्र में आया हो तो वह व्यवहारनय का कथन है। '**ववहारोऽभूदत्थो**' यह व्यवहार का कथन असत्यार्थ है। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहा है। परन्तु उससे सम्यक् निश्चय होता है, ऐसा है नहीं। यह ज्ञानसमुच्चयसार में से निकालकर कहते हैं, हों! समझ में आया?

मुमुक्षु : तो ही वह ज्ञान का सार कहलाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो ज्ञान का सार। समयसार कहो, समुच्चयसार कहो। समुच्चय अर्थात् ज्ञान में जो सम्यक्ता है, उसका सार क्या है, यह कहा है।

बुद्धिमानों को सदा उसी शुद्ध कारण को करते रहना चाहिए। और किसी जगह इसमें फिर ऐसा लिखा है कि व्यवहार पहला साधन हो, फिर निश्चय होता है। परन्तु ऐसी बात तो यहाँ कहनी ही नहीं। समझ में आया? यह पण्डित का कथन अन्दर अर्थ में... बात तो जैसी है, वैसी लिखना चाहिए। जहाँ व्यवहार से आया हो... व्यवहार अन्दर आता है, क्या कहा, देखो! यह शब्द का आता है कि भगवान की वाणी शब्द है, शब्द से ज्ञान होता है, ऐसा पाठ में आता है। समझ में आया? भगवान की वाणी शब्द है। किसी जगह आता है। अभी ख्याल में नहीं। देखो न यहाँ हो तो। ममलपाहुड़ में है न? क्या है? ममल १५२ पृष्ठ। उसमें गाथा कौन सी है, देखो! १५२ पृष्ठ है। ११ वीं गाथा है। ममलपाहुड़ दूसरा भाग। यह फूलना है न, फूलना? कौन सा? सुद्धो... ७० में है। उसकी गाथा है। देखो, ध्रुव-ध्रुव। यह गाथा ११वीं। क्या शब्द पड़ा है? देखो, ... शब्द यह पड़ा है भाई! यह दूसरे में है। ध्रुव शब्द कहा है, परन्तु कहना है ध्रुव का वाच्य। समझ में आया? ममलपाहुड़ दूसरा भाग। यह ध्रुव... छन्द, इसका ११वाँ श्लोक। यह बाद में देख लेना। यहाँ तो सब देख लिया है। यह आ गया है।

यहाँ क्या कहते हैं, देखो! **यहाँ ध्रुव शब्द का प्रकाश हुआ है।** पाठ में ध्रुव शब्द पड़ा है। यह निमित्त से कथन कहा है। परन्तु वास्तव में ध्रुव शब्द का वाच्य ध्रुव आत्मा का प्रकाश हुआ है। समझ में आया? ध्रुव शब्द का प्रकाश तो वीतराग की वाणी हुई। वाणी में ध्रुव शब्द (आया)। उसमें आया ध्रुव। चैतन्य भगवान ज्ञायक त्रिकाल नित्यानन्द

है। तो ध्रुव शब्द का प्रकाश हुआ, ऐसा कहा। इसका अर्थ कि वाणी का प्रकाश हुआ। वाणी में यह आया, परन्तु वाणी में क्या आया? कि ध्रुव शुद्ध आत्मा जो चैतन्यमूर्ति ज्ञायक है, उसके सन्मुख होकर प्रकाश करो। समझ में आया?

.... **समता भाव में आत्मा के शुद्ध भाव का आनन्द हो रहा है।** ऐसा ध्रुव आत्मा भगवान की वाणी में ध्रुव आया। तो उससे यहाँ वाणी से समझा, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, यह व्यवहारनय से। यह पाठ में बहुत आया है। व्यवहार इसमें आता तो है, परन्तु लोग समझते नहीं। व्यवहार से-शब्द से ज्ञान होता है... शब्द से ज्ञान होता है। तब शब्द तो पर चीज़ है। समझ में आया? यह तो लिखा है, भाई! उपादान-निमित्त। लिख लेना थोड़े-थोड़े बोल यहाँ से जाकर। शब्द तो निमित्त हैं। वीतराग की वाणी होती है तो भी निमित्त है, पर है। तो उससे ज्ञान होता है, ऐसा पाठ में आता है। तो उसका अर्थ निमित्त है। अपने से जब सम्यग्ज्ञान ध्रुव का हुआ तो वीतरागी वाणी को निमित्त कहा जाता है। शब्द से ज्ञान हो, तब तो सर्वज्ञ की वाणी समवसरण में बहुत लोग सुनते हैं, सबको होना चाहिए। परन्तु ऐसा है नहीं।

यह ध्रुव ज्ञान का उदय हुआ है। देखो, **शुद्ध भाव में रमण करना, वही ध्रुव आत्मा का दर्शन है।** ... अपना ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान पुण्य-पाप के राग से रहित, निमित्त से रहित, अपनी वर्तमान पर्याय सन्मुख, अभिमुख आत्मा को करना और उसमें रमना, उसे ध्रुव का प्रकाश होता है, उसमें आत्मा का प्रकाश होता है, उसमें आत्मा का अनुभव मोक्षमार्ग होता है। अन्य से मोक्षमार्ग होता नहीं। समझ में आया? यह ध्रुव शब्द से कहा है। कहो, यह कारणकार्य की बात आ गयी।

अब कहते हैं कि अरे! **शुद्ध सम्यग्दर्शन भव्य जीवों के द्वारा साधने योग्य है...** २५वीं गाथा। **'सार्धं भव्यलोकयं'** पात्र जीव भव्य है। यह क्यों लिया? कि अभव्य लायक नहीं। यह भी साथ में लिया। अभव्य जीव सिद्ध किये, अभव्य है। **भव्य जीवों के द्वारा साधने योग्य है...** लायक प्राणी, योग्य प्राणी, अपने आत्मा की प्रकाशशक्ति को प्रगट करने का अभिलाषी प्राणी द्वारा साधनेयोग्य है। **सम्यग्दर्शन भव्य जीवों के द्वारा साधने योग्य है...** अभव्य जीव साधनेयोग्य है नहीं। समझ में आया?

'तस्याति गुणनिरूपं च' उसी सम्यग्ज्ञानी के अन्तरंग में गुणों के धारी आत्मा

का स्वभाव झलकता है... 'ति गुणनिरूपं' गुण का पुंज ज्ञान आत्मा है, उसकी अस्ति झलकती है। सम्यग्ज्ञान में, सम्यग्दर्शन में गुण का पुंज आत्मा झलकता है अथवा अपने ज्ञान में ज्ञेय होता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म! सेठी! अपने ज्ञान की पर्याय को अन्तर्मुख करने से सम्यग्ज्ञान का पुंज जो अनन्तगुण का रूप है, वह ज्ञान की पर्याय में झलकता है अर्थात् प्रतीति में आता है और अनुभव में आता है। कहो, समझ में आया?

'बुधै जनै सुध सार्धं' लो! **'बुधै जनै सुध सार्धं' बुद्धिमान सम्यग्ज्ञानी महात्माओं के द्वारा ही शुद्ध स्वभाव जो साधनेयोग्य है, वह साधन किया जाता है।** धर्मात्मा से तो शुद्ध का साधन किया जाता है। अशुद्ध का साधन नहीं किया जाता। अशुद्ध अन्दर राग आता है। साधन में भी कहा कि साधन शुद्ध का करना है, अशुद्ध का साधन नहीं। समझ में आया? विकल्प आता है। पहले सुनने में, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करने में, नौ तत्त्व, छह द्रव्य क्या है, इसके ज्ञान में शुभराग का विकल्प आता है, परन्तु वह वास्तव में साधनेयोग्य नहीं। क्या साधनेयोग्य है? **'बुधै जनै सुध सार्धं'** उसे तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान की निर्मल पर्याय साधनेयोग्य है। राग और विकल्प, वह साधनेयोग्य नहीं। निश्चय से बात की है न तो उसमें यह व्यवहार लोप हो जाता है, इसका अर्थ? व्यवहार है अवश्य, परन्तु साधनेयोग्य नहीं और उस पर रुचि करनेयोग्य नहीं। आरोप दे सकते हैं कि यहाँ तो व्यवहार की बात... परन्तु उसमें आ गया। **'बुधै जनै'** साधन साध्य करना तो व्यवहार साधन विकल्प आता है, परन्तु उसका लक्ष्य छोड़ देना, रुचि छोड़ देना। अपने शुद्ध स्वरूप का साधन करना। यह ज्ञानी का कर्तव्य है। अज्ञानी का कर्तव्य रागादि के साधन से मेरा कल्याण हो जायेगा, ऐसा अज्ञानी मानता है। कहो, समझ में आया? यह २५ गाथा हुई। २६ (गाथा)।

तं समत्तं उक्तं सुद्धं, केरि संके न रुवं।
तं संमत्तं तिस्टियत्वं, कथ्यवासं वसंतं॥
उत्पन्नं कोपि स्थानं, श्रेष्ठ प्रौढ मानं प्रमानं।
तं संमत्तं कस्य क्रान्तं, कस्य दिस्टि प्रयोजनम्॥२६॥

देखो, कहते हैं... समझ में आया? यह आगे लेंगे। पृष्ठ १९१ है, भाई! ३५० गाथा

है। पृष्ठ १९१। जड़ा? १९१। ३५० गाथा है, देखो!

अस्तेयं पद रहियं, जिन उक्तं च लोपनं जाने।
अनेय व्रतधारी, अस्तेय ससहाव रहिएन॥३५०॥

देखो यहाँ भी '**जिन उक्तं**' (कहा है)। ३५० गाथा है। क्या कहते हैं? **आगम के पदों का और का और अर्थ करके जिन आगम के कथन को छिपाना चोरी जानो...** समझ में आया? आगम का कथन क्या है? परमार्थ क्या है? ऐसे कथन को छिपाकर, देखो, '**अस्तेयं पद रहियं, जिन उक्तं च लोपनं जाने।**' सर्वज्ञ परमात्मा ने शुद्धभाव का जो कथन किया है, उसका अर्थ दूसरा करके लोप करते हैं, गोप करते हैं **और का और अर्थ करके जिन आगम के कथन को छिपाना चोरी जानो तथा आत्मस्वभाव में रमण न करके आत्मज्ञान रहित अनेक व्रतों को पालना भी चोरी है।** क्या कहा? देखो, पाठ में है या नहीं? '**अनेय व्रतधारी, अस्तेय ससहाव रहिएन**' जो कोई प्राणी अपना सम्यग्दर्शन-ज्ञान क्या चीज़ है, उसे प्राप्त किये बिना, आत्मज्ञान प्राप्त किये बिना उन अनेक व्रतों को पालना, वह भी चोर है। ...भाई! समझ में आया? समझ में आया? नहीं आया। समझ में आया? ओहोहो!

देखो, पण्डितजी! कहते हैं कि तेरा शुद्ध स्वभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान तो किया नहीं, आत्मज्ञान किया नहीं और राग से धर्म मानकर व्रत, दया, दान, व्रतादि पालता है, तो वह तो चोर है। भगवान के सन्तों ने और भगवान के भक्त सम्यग्दृष्टियों ने अपने आत्मज्ञानपूर्वक पश्चात् स्वरूप की स्थिरता का व्रत और व्यवहार विकल्प के व्रत उसमें आये। परन्तु तुझे तो आत्मज्ञान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी तुझे पहिचान नहीं। हम व्रतधारी हैं, हम प्रतिमाधारी हैं। चोर है, ऐसा कहते हैं। सेठ! क्या हुआ? देखो, '**ससहाव रहिएन**' पाठ है या नहीं? '**ससहाव रहिएन**' अन्तिम शब्द है न? भाई! '**ससहाव रहिएन**' '**अस्तेय**' वह चोर है। अपना शुद्ध स्वभाव ज्ञायक चिदानन्दमूर्ति की ओर स्वसन्मुख होकर प्रतीति-ज्ञान किया नहीं, अनुभव किया नहीं। हम व्रत पालन करते हैं, हम तप करते हैं, हम दया पालते हैं, हम दान करते हैं, दुनिया को उपदेश करें तो बहुतों को लाभ होगा। चोर है। जो महासन्तों ने आत्मज्ञानपूर्वक व्रत

का पालन किया, तू आत्मज्ञान-ध्यान बिना करता है तो तू बड़ा चोर—गुनहगार है। सेठ! कठिन तो बहुत है।

मुमुक्षु : अभी समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया? देखो, लिखा तो है तुमने। यह पुस्तक तो तुमने प्रकाशित की है दूसरों को देने के लिये। समझ में आया? परन्तु इसमें ख्याल तो आवे कि क्या है? चोर है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया या नहीं? यह लिखा है इसमें, हों! .... चोर है, आहाहा! अरे! वहाँ तो लिखा है... पृष्ठ ४४ है, भाई! ४४ पृष्ठ है न! यह तो १६वाँ है। ४४ पृष्ठ। निगोद गच्छई। देखो, ४४ (पृष्ठ) और ८४ गाथा है। ८४ गाथा तुम्हारी। अकेली ८४।

मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं, असत्य सहित भावना।
अनृतं अचेत दिस्टंते, मिथ्यातं, निगोयं पतं॥८४॥

देखो, ८४ है। है? निकली? '**मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं**' अरे! यह **मिथ्यात्व कर्म के उदय से श्रद्धान...** ऐसा नहीं लेना। मिथ्यात्व कर्म के उदय से नहीं लेना। '**मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं**' इतना लो, भाई! मिथ्या अभिप्राय से मिथ्यात्वरूप से देखता है, ऐसा लेना। उसमें लिखा है कि **मिथ्यात्व कर्म के उदय से...** सब कर्म को घुसा देते हैं अन्दर में सर्वत्र। हमारे पण्डितजी भी एक बार कहते थे। ज्ञानावरणीय के कारण से उसे ज्ञान नहीं। कहा, ऐसा नहीं, नहीं। पण्डितजी! कहा था न? उसमें लिखा है कि हों! '**मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं**' मिथ्या अभिप्राय से मिथ्यात्व देखता है, ऐसी बात है। कर्म-कर्म क्या करता है? कर्म तो जड़ है, परद्रव्य है। परद्रव्य क्या अपने को मिथ्यादृष्टि करा सकता है? तो '**मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं**' मिथ्याभाव से वस्तु को मिथ्या-विपरीत श्रद्धान करता है। बिल्कुल मिथ्यात्व होता है।

'**असत्य सहित भावना**' वस्तु की खबर नहीं तो भावना जैसी मानी, वैसी करता है। राग की, पुण्य की, निमित्त की, असत्य पदार्थ से लाभ की भावना रहती है। '**अनृतं अचेत दिस्टंते**' **वहाँ सब झूठ ही झूठ व अज्ञान ही अज्ञान दिखलाई पड़ता है...** देखो '**अनृतं अचेत दिस्टंते**' वहाँ तो अमृत ज्ञान के भान बिना सब झूठा-झूठा देखने को मिलता है। मिथ्या अभिप्राय और मिथ्या ज्ञान है तो मिथ्याज्ञान से जो देखे, वह सब

खोटा ही दिखता है उसे। यह ८४ गाथा है न। अचेत है, सचेत नहीं—आत्मा के भान बिना। अचेत ही दिखता है, सब जड़ ही दिखता है। राग, पुण्य, विकल्प ऐसा ही उसे दिखता है। अपना आत्मा सचेत ज्ञानमूर्ति है, यह उसे दिखता नहीं। समझ में आया? **सब झूठ ही झूठ व अज्ञान ही अज्ञान...** अचेत अर्थात् अज्ञान। उसमें राग, पुण्य, पाप का विकल्प है, वह वास्तव में अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ? उसमें ज्ञान की जागृति का अभाव है। शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, वह राग है और राग को शास्त्र में अचेत कहा है। क्यों? कि उसमें ज्ञान की जागृति का अभाव है। तो अज्ञानी राग को ही देखता है, पुण्य को ही देखता है, पुण्य से लाभ होता है, ऐसा देखता है। समझ में आया? तो कहते हैं **व अज्ञान ही अज्ञान दिखलाई पड़ता है...** जहाँ देखो वहाँ अज्ञान। विपरीत अर्थ का ही उसे प्रतिभास होता है।

उसका फल क्या है? **'मिथ्यातं, निगोयं पतं' ऐसे मिथ्यात्व के फल से यह जीव निगोद में जाकर बिल्कुल अज्ञानी ऐकेन्द्रिय हो जाता है।** शोभालालजी! निगोद। यह सब पद्धति कुन्दकुन्दाचार्य की ली है। कुन्दकुन्दाचार्य में ऐसा आया है न! दर्शनपाहुड में आया है न, कि एक भी वस्त्र का धागा रखकर मैं मुनि हूँ, ऐसा मानता है, मुनि मनाता है और दूसरे की मान्यता को सम्मत करता है, वह निगोदं गच्छई। क्योंकि मुनिपने की जो वास्तविक स्थिति संवर-निर्जरा की क्या दशा होती है, उसके आस्रव के विकल्प की मर्यादा कितनी और संयोग में कितने निमित्त हट जाते हैं और कितने रहते हैं, यह किसी तत्त्व की उसे खबर नहीं। तो ऐसे मुनि माननेवाला, वस्त्र का एक धागा रहे और मुनि है, ऐसा माने, मनावे, माननेवाले को सम्मत हो, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में पुकार करते हैं (कि) निगोदं गच्छई। चला जायेगा, एक शरीर में अनन्त आत्मा है, वहाँ चला जायेगा। यहाँ कहते हैं कि **'निगोयं पतं'** निगोद में जायेगा। वाणी तो जरा कठिन पड़े जगत को। कहो, समझ में आया? आहाहा! लो! समझ में आया? क्या कहा? २५ चलती है। २५ पूरी हुई। २६वीं, २६वीं।

तं समत्तं उक्तं सुद्धं, केरि संके न रुवं।
तं संमत्तं तिस्टियत्वं, कथ्यवासं वसंतं॥

उत्पन्नं कोपि स्थानं, श्रेष्ठ प्रौढ मानं प्रमानं।
तं संमत्तं कस्य क्रान्तं, कस्य दिस्टि प्रयोजनम्॥२६॥

इस दृष्टि का प्रयोजन क्या है, वह बताते हैं। **वही सम्यग्दर्शन शुद्ध कहा गया है...** अपने स्वरूप की शुद्धि त्रिकाली द्रव्य पड़ा है, उसकी अन्दर निर्विकल्प पर्याय से शुद्ध श्रद्धा प्रगट करना, ऐसे सम्यग्दर्शन को शुद्ध कहा है। वहाँ किसी प्रकार की शंका का रूप नहीं है। अकेला नि:शंक... नि:शंक... नि:शंक... मैं परमात्मा हूँ। समझ में आया? किसी प्रकार की शंका का रूप ही नहीं दिखता। अकेला आत्मरूप परमात्मा शुद्ध अभेद अखण्ड है, उसमें सम्यग्दृष्टि को किसी प्रकार की शंका का रूप नहीं दिखता। कोई शंका नहीं होती। कैसा होगा? ऐसा परमात्मा? मैं इतना परमात्मा हूँ? अरे भाई! क्या उस अण्डे में मोर नहीं? अण्डा इतना है या नहीं? वह मोर का अण्डा। अण्डा कहते हैं न? उसमें साढ़े तीन हाथ का मोर है या नहीं? कहाँ से निकलता है? उसमें है, वह निकलता है या बाहर से कहीं से आता है? समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी शक्ति में परमात्मा की शक्ति अन्दर पड़ी है। उसे अन्तर्मुख होकर पर्याय में एन्लार्ज करना है। पर्याय में परमात्मा। तो अपना स्वरूप ही परमात्मा है, ऐसा कहते हैं, देखो! उसमें इसे शंका नहीं। मैं ही परमात्मा हूँ। परमस्वरूपधारी आत्मा पूर्णानन्द अनन्त चतुष्टय को धरनेवाला। मुझमें अनन्त ज्ञान भरा है, अनन्त दर्शन है, अनन्त आनन्द है, अनन्त बल का धनी मैं ही हूँ। उसमें समकिती को कोई शंका नहीं पड़ती। अभी यह चौथे गुणस्थान की बात चलती है। शोभालालजी! यह तो अभी पाँचवाँ और छठवाँ आ गया।

'तं संमत्तं तिस्टियत्वं' उसी सम्यक्त्व में जमे रहना चाहिए... ऐसा अपनी दृष्टि में परमात्मस्वरूप जो अन्दर में प्रतीत हुआ, उसमें स्थिर होकर रहना चाहिए, उसमें रहना चाहिए। विकल्प आवे तो भी उसका आदर करना नहीं। अपने स्वरूप में स्थिर होकर रहना, उसका नाम शुद्ध सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया? **'कथ्यवासं वसंतं'** क्या कहते हैं? **किसी भी स्थान पर रहो...** कोई शुद्ध सम्यग्दर्शन (प्राप्त करके) सातवें नरक में भी पड़ा हो? समझ में आया? .... होता है। ऐसा नहीं कि भगवान के नजदीक

में बैठा हो तो होता है या मनुष्य में ही होता है। सातवें नरक में भी होता है। भगवान के समवसरण में बैठा हो और होता है। समवसरण में बैठा हो और मिथ्यात्व ... बाहर की बात क्या करे? समझ में आया?

'कथ्यवासं वसंतं' किसी भी स्थान पर रहो, किसी भी स्थान पर यह सम्यक्त्व पैदा हो सकता है... 'उत्पन्नं कोपि स्थानं' शब्द पड़ा है। किसी भी स्थान में प्रगट होता है। कोई स्थान उसे विघ्न नहीं करता। यह तो आया न शक्ति, नहीं? असंकोचविकासशक्ति। कोई क्षेत्र-काल उसे विघ्न नहीं कर सकता। कोई क्षेत्र या काल बाहर में कोई अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करने में किसी का विघ्न है ही नहीं। अपना स्वरूप में ही इतना सामर्थ्य है। **किसी भी स्थान पर यह सम्यक्त्व पैदा हो सकता है...**

'श्रेष्ठ प्रौढ मानं प्रमानं' कैसा है शुद्ध सम्यग्दर्शन? **यह सम्यक्त्व ही श्रेष्ठ है, दृढ़ है...** प्रौढ़-प्रौढ़ होता है न यह? बड़ी उम्र हो जाये फिर। प्रौढ़ विवेकी। प्रौढ़ विवेक, वह महान विवेक। प्रौढ़ विवेक महान, ऐसा। प्रौढ़ अर्थात् महान। जिसका स्वरूप दृढ़ है। **व प्रमाणरूप है...** वह प्रमाणरूप सम्यग्दर्शन है, यथार्थरूप है। अपने शुद्ध स्वभाव की दृष्टि करना, विकल्प और संयोग की रुचि हटाकर, वही सम्यग्दर्शन प्रमाणरूप है। व्यवहार सम्यग्दर्शन प्रमाणरूप नहीं, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! वह प्रमाणरूप नहीं। होता है, जाननेयोग्य है, परन्तु प्रमाणरूप तो अपना शुद्ध स्वभाव भगवान, उसके ज्ञानप्रकाश में घुसकर अनुभूति में प्रतीति होना, वही सम्यग्दर्शन प्रमाणभूत है। व्यवहार समकित, व्यवहार समकित देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, समकित है। है ही नहीं कभी। कौन कहता है? वह प्रमाण ही नहीं। समझ में आया? यह स्वाध्याय करना चाहिए। चिमनभाई! स्वाध्याय न करे, बहियाँ जाँचे नामा की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो जाँचे कि क्या है? क्या लिखा है? कि पिताजी ने बहियों में कितना उत्तराधिकार दिया है। पिताजी गुजर जाये तो खोजता है या नहीं? पच्चीस लाख छोड़कर गये है। बराबर। पाँच लाख इसके, पाँच लाख इसके। जाँच करता है या नहीं? तो सन्त, धर्मात्मा क्या-क्या उत्तराधिकार रखकर गये हैं?

मुमुक्षु : यह जाँच नहीं की।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं की। समझ में आया?

तो कहते हैं, **दृढ है व प्रमाणरूप है।** यह सम्यग्दर्शन। निश्चय सम्यग्दर्शन, वही प्रमाणभूत है। आहाहा! जिसे यहाँ शुद्ध कहा है। और **'तं संमत्तं कस्य क्रान्तं' यह सम्यक्त्व किसी जीव के ही प्रकाश होता है...** समझ में आया? महान प्रयत्नवन्त प्राणी शुद्ध स्वभाव सन्मुख होता है, उसे **'क्रान्तं'** अर्थात् सम्यग्दर्शन का प्रकाश होता है। अब एक अन्तिम शब्द है बड़ा। **'कस्य दिस्टि प्रयोजनम्' कोई ही जीव की दृष्टि अपने अर्थ पर जाती है।** प्रयोजन के ऊपर। वास्तव में तो यहाँ प्रयोजन सिद्ध करना है। यह ११वीं गाथा में कहा न कि व्यवहार अभूतार्थ है। तो निश्चय-व्यवहार का विषय तो है। निश्चयनय का विषय है और व्यवहारनय, दोनों का विषय है। प्रयोजन सिद्ध करना हो तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि करने से प्रयोजन सिद्ध होता है। क्या कहा, समझ में आया? यह निश्चय और यह व्यवहार है। यह निश्चय और व्यवहार, ऐसा जानना नहीं, प्रयोजन सिद्ध करना है। तो व्यवहार की दृष्टि हटाकर **'प्रयोजनम्'** देखो, है न शब्द? **'कस्य दिस्टि'** किसी प्राणी की दृष्टि प्रयोजनभूत तत्त्व एकाकार भूतार्थ भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण सत् परमेश्वर है, उसके ऊपर दृष्टि किसी सम्यग्दृष्टि जीव की जाती है। अज्ञानी अपना प्रयोजन क्या है, वह समझता नहीं। वह तो राग करना, पुण्य करना, दया पालना, भक्ति करना, व्रत करना, यह हमारा प्रयोजन है। वह तो पुण्यबन्ध है। प्रयोजन कहाँ से आया तेरा? वह तो अनन्त बार किया है और अनन्त बार चार गति खुल्ली पड़ी है। रतनलालजी! समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी थोड़ा-थोड़ा ख्याल में तो आता है या नहीं कि ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं।

कहते हैं, ओहो! **'कस्य'** कोई जीव दो नय का ज्ञान करके खपे, इससे कोई जीव की प्रयोजन के ऊपर दृष्टि जाती है। प्रयोजन व्यवहार का नहीं। प्रयोजन निश्चय अर्थात् स्व द्रव्य-गुण-पर्याय निश्चय है। उसका भी नहीं। प्रयोजन त्रिकाल द्रव्य सामान्य है, वह मुख्य है, उसकी प्रयोजन के ऊपर दृष्टि कभी किसी प्राणी की जाती है, उसे सम्यग्दर्शन

होता है। समझ में आया? यह दो गाथा हुई। हुई न? २५ और २६ दो हुई। २७वीं।

तं समत्तं सुद्धं बुद्धं, तिहुवन गुरुवं, अप्प परमअप्प तुल्यं।

देखो, यह शब्द तो भाई! गाथा में तारणस्वामी बहुत डालते हैं। '**अप्प परमअप्प**' आत्मा परमात्मा... आत्मा परमात्मा... बहुत गाथाओं में (आता है)। ममलपाहुड़ में, उसमें बहुत जगह डालते हैं। यह कहते हैं कि .... पामर है? नहीं प्रभु! तू पामर नहीं, हों! तू तो अपना परमात्मा प्रगट कर, ऐसी तुझमें सामर्थ्य है। तू स्वभाव से परमात्मा ही है। अभी कहा न?

अव्वावाह अनंतं अगुरुलघु, सुयं सहज नंद स्वरूपं।
रूपातीतं व्यक्त रूपं विमल, गुण निहि न्यान रूपं स्वरूपं।
तं संमत्तं तिस्टियत्वं ति अर्थ समयं, संपूर्न सास्वतं पदं॥२७॥

देखो .... भाषा में किया है।

रूपातींत व्यक्त रूपं विमल, गुण निहि न्यान रूपं स्वरूपं।
तं संमत्तं तिस्टियत्वं ति अर्थ समयं, संपूर्न सास्वतं पदं॥२७॥

ठीक परन्तु आ गये। सब पण्डितजी आ गये। एक साथ सबको खबर तो पड़े कि इसका अर्थ क्या होता है?

'तं समत्तं' वह सम्यग्दर्शन निश्चय से... यहाँ तो शुद्ध की बात चलती है न? निश्चय सम्यग्दर्शन कहो या शुद्ध सम्यग्दर्शन कहो, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? तो यहाँ शुद्ध कहा है और यह ३३ पृष्ठ पर भाई, निश्चय कहा है। शुद्ध सम्यग्दर्शन, वह निश्चय कहा। वहाँ भी शुद्ध सम्यग्दर्शन को निश्चय कहा है। सब जगह शुद्ध लिया है। ५९ गाथा है। ५९। ६० में एक कम।

सुधं च सर्व सुद्धं च, सर्वन्यं सास्वतं पदं।
सुधात्मा सुद्ध ध्यानस्य, सुधं संमिक्दर्सनं॥५९॥

यहाँ अर्थ में यह शुद्ध कहो या निश्चय कहो। लिखा है अन्दर। परन्तु उस शुद्ध का अर्थ ही निश्चय है। निश्चय कहो या शुद्ध कहो, व्यवहार कहो या अशुद्ध कहो। क्या कहते हैं, देखो। **शुद्ध सर्व पदार्थों में शुद्ध एक... 'सर्वन्यं सास्वतं पदं'** सब पद में

सर्वज्ञ स्वरूप अविनाशी पद है। ऐसा शुद्ध सर्वज्ञपद अपने में है। समझ में आया? यह सर्वज्ञ परमात्मा हुए, उनकी श्रद्धा करना, वह तो एक विकल्प है। यहाँ शुद्ध सम्यग्दर्शन में अपना सर्वज्ञस्वरूप अविनाशी पद है **वही शुद्ध ध्यान का विषयभूत ध्येय शुद्धात्मा है।** देखो, '**सुद्ध ध्यानस्य सुधात्मा**' अपना सर्वज्ञपद अन्तर में है। सर्वज्ञपद अन्दर में है? वह तो आ गया अपने ४७ शक्ति में। सर्वज्ञशक्ति है अपना आत्मा। सर्वज्ञगुण है, सर्वज्ञस्वभाव है, सर्वज्ञ तत्त्व है। ऐसा अपना सर्वज्ञ शुद्ध पद, वही शुद्ध ध्यान के विषयभूत ध्येय है। अपनी वर्तमान पर्याय ध्यान, उसका ध्येय, वह सर्वज्ञस्वभाव अपना निजस्वरूप है। उसका ध्येय राग, पुण्य, व्यवहार निमित्त नहीं। गजब निश्चय की बात लोगों को ऐसी कठिन पड़ती है। परन्तु निश्चय का अर्थ ही सत्यार्थ है। व्यवहार का अर्थ अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ है। है। व्यवहारनय का विषय नहीं है, ऐसा नहीं; व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु वह व्यवहार, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, दान, दया, व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार चारित्र। यह दो प्रकार का चारित्र। समझ में आया? तो यह चारित्र व्यवहार जो है, वह विकल्प है। वह हो, परन्तु प्रयोजनभूत होकर उसके आश्रय से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? लो, शुद्ध विषयभूत है। **शुद्धात्मा का ध्यान ही शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन है।** यह शुद्ध आत्मा का ध्यान, वह शुद्ध सम्यग्दर्शन है।

यहाँ अब कहते हैं कि **वह सम्यग्दर्शन निश्चय से शुद्ध, बुद्ध स्वरूप है...** २७ गाथा का अर्थ। **शुद्ध, बुद्ध स्वरूप है... 'तिहुवन गुरुवं' तीन लोक में श्रेष्ठ है...** तीन लोक में सम्यग्दर्शन अपना परमात्मस्वभाव, उसके अनुभव में प्रतीति होना, वह तीन लोक में श्रेष्ठ है। '**अप्प परमअप्प तुल्यं**' देखो! **जहाँ अपने आत्मा को परमात्मा के बराबर...** परमात्मा की बराबर शक्ति में, स्वभाव में, गुण में, सामर्थ्य में मेरा आत्मा ही परमात्मा है। परम-आत्म अर्थात् परमस्वरूप। परमस्वरूप ऐसा मेरा आत्मा बराबर है। उसमें अन्तर नहीं। **बाधा रहित...** बाधा नहीं। अपना परमात्मस्वरूप अव्याबाध है। कोई बाधा है नहीं। तीन काल में बाधा ध्रुव स्वभाव ज्ञायक में बाधा आती ही नहीं। **अनन्त...** है। उसकी शक्ति अनन्त है। अन्तर में सर्वज्ञपद जो शुद्ध सम्यग्दर्शन का ध्येय है, वह अनन्त है। अन्तरस्वरूप अनन्त है।

'अगुरुलघु,' अगुरुलघुमय आप ही अर्थात् बड़े छोटे की कल्पनारहित... अपना स्वरूप छोटा-बड़ा नहीं। वह तो जैसा है, वैसा है। त्रिकाल सहजात्मस्वरूप परमानन्दमूर्ति एकरूप है। वह निश्चय सम्यग्दर्शन का ध्येय है, वह उसका लक्ष्य है, प्रयोजन वह है। समझ में आया? **'सहज नंद स्वरूपं' स्वाभाविक आनन्दस्वरूपी...** कैसा है आत्मा? स्वाभाविक आनन्दस्वरूप ही आत्मा है। उसमें सहज आनन्द है। सहजानन्द, नित्यानन्द, शाश्वत् आनन्द। आत्मद्रव्य में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, वह सहजानन्दस्वरूप ही आत्मा है। उसका सम्यग्दर्शन में ध्येय करना चाहिए। अभी ऐसी बात हो गयी है कि शास्त्र के स्वाध्याय की बात घट गयी। व्रत, नियम, तप और कष्ट में उसमें लगा दिया। बस! उसमें लगा दिया। और वाँचन और श्रवण हो तो भी कहनेवाला व्यवहार को कहनेवाला बाहर की क्रिया, वह वाँचे तो ऐसा वह निकालता है—ऐसा अर्थ करता है। आगम का जो परमार्थ अर्थ है, ऐसा नहीं निकालकर दूसरा अर्थ करे, वह वीतराग का चोर है, गुनहगार है। चौरासी लाख की जेल में जायेगा। समझ में आया?

अगुरुलघुमय आप ही... जैसा है, वैसा भगवान आत्मा। **'सहज नंद स्वरूपं'** अब देखो, अस्ति-नास्ति दो करते हैं। कैसा है भगवान आत्मा, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय? **'रूपातीत' पौद्गलिकरूप से रहित...** रूपातीत है। पुद्गल का, राग का रूप जिसमें है ही नहीं। नास्ति से बात की है। पुद्गल राग, पुण्य, विकल्प, निमित्त कोई उसमें है ही नहीं। तो है कैसा? वह तो पुद्गलातीत कहा। पुद्गल से रूपी से अतीत कहा। वह है कैसा? वह तो अतीत तो नास्ति से कहा। अस्ति से क्या है? ओहो! **'व्यक्त रूपं'** परन्तु उसका स्वभाव तो व्यक्त त्रिकाल ऐसा का ऐसा पड़ा है, व्यक्तरूप ही है। **तथा अनुभव में प्रगट रूप...** अपने सम्यग्ज्ञान में त्रिकाल द्रव्य जैसा है, वैसा प्रगट अनुभव में प्रतीति होती है। समझ में आया? यह तुमको याद इसके लिये किया था। थोड़ा याद करके, ध्यान, विचार करो, मनन करो और थोड़ी बात चलाओ। पहले याद किया था सेठ को। यह बुद्धिवाले हैं जरा तो इन्हें यह विशेष ख्याल आवे। ऐसा का ऐसा कहे और अपनी दृष्टि से अर्थ करे तो उसमें तत्त्व का लोप हो जाता है। समझ में आया?

अनुभव में प्रगट व्यक्त है। क्या कहते हैं? रूपातीत है, परन्तु अपने ज्ञान के प्रकाश में वह प्रगट है। अप्रगट वस्तु नहीं, व्यक्तरूप है। प्रगट अर्थात् द्रव्य तो ऐसा का

ऐसा पड़ा है। '**विमल, गुण निहि।**' '**विमल**' अर्थात् **निर्मल गुणों की निधि...** है। भगवान आत्मा जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो आत्माभिमुख परिणाम सम्यग्दर्शन का, वह आत्मा अभिमुख। परिणाम सम्यग्दर्शन अभिमुख। किसके सामने? आत्मा के। वह आत्मा कैसा है? कि **निर्मल गुणों की निधि...** है। समझ में आया? निर्मल गुण की निधि भण्डार भगवान है। परन्तु उसका ज्ञान करे नहीं, महिमा लावे नहीं। महिमा लावे को क्या कहते हैं? महिमा लाता नहीं। महिमा आती नहीं उसे। क्या चीज़ है? तो महिमा आये बना उस ओर परिणाम झुके कहाँ से? यह तो राग की महिमा, पुण्य की महिमा, निमित्त की महिमा, संयोग की महिमा, उसमें झुका हुआ है तो अनादि का झुका हुआ है। उसमें तेरा भला क्या हुआ? दाळिया समझते हो? वह चना नहीं होता चना? शुकरवारिया। खबर नहीं होगी इसे। चना खाते हैं। शुक्रवार को चना खाते हैं या नहीं? तो उसमें हमारे कहते थे एक बनिया व्यापारी कि दाळिया हुए? चना हुए? (अर्थात्) कुछ मिला या नहीं? ऐसा। लाभ हुआ या नहीं? वह चने में मिठास होती है न? तो कुछ मिठास हुई या नहीं?

कच्चा चना है न, उसमें स्वाद भरा हुआ है। कच्चे चने में भी स्वाद पड़ा है। तो अग्नि के निमित्त से सेंकने की पर्याय होती है तो स्वाद पड़ा है, वह प्रगट होता है। समझ में आया? तो प्रगट होने से पहले कचास है, तुराश है, बोबे तो चना उगता है। बोने से उगता है, खाने में तुरा लगता है। समझ में आया? और स्वाद आता नहीं। परन्तु एक बार सेंक डाले तो अन्दर में स्वाद शक्तिरूप पड़ा है, वह बाहर आता है। कचास का नाश होता है, बोने से उगता नहीं और स्वाद की मिठास आती है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्दरस पड़ा है, सर्वज्ञपद के साथ। परन्तु पर्याय में अभिमुख दृष्टि स्वभाव-सन्मुख नहीं की, राग, पुण्य और निमित्त की दृष्टि से उसमें अज्ञान का स्वाद आता है। अपना स्वाद नहीं। अज्ञान का स्वाद, राग-द्वेष का स्वाद, विकार का स्वाद। एक बार सम्यक् अभिप्राय से आत्मा को सेके अर्थात् .... ऐसी दृष्टि हो तो अन्दर में जो आनन्द है, वह पर्याय में प्रगट आनन्द का अनुभव होने लगता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात, भाई! इसमें क्या करना, ऐसा तो कुछ आता नहीं। यह करना नहीं आता? सम्यक् अभिप्राय करना। उद्यम करना, यह

तो पहले आ गया। उसमें आया था कारण-कार्य में। कारण-कार्य में, भाई! समझ में आया?

व्यक्त **निर्मल गुणों की निधि...** भगवान आत्मा। देखो, निर्मल गुण की निधि कहो, निर्मल शक्ति का भण्डार कहो। अपने दोपहर में शक्ति चलती है न? ४७ शक्ति चलती है, वह सब गुण हैं। वह अनन्त शक्ति का भण्डार आत्मा है। अनन्त गुण का भण्डार कहो या अनन्त शक्ति का भण्डार कहो। और '**न्यान रूपं स्वरूपं**' स्वरूप क्या है? '**न्यान रूपं स्वरूपं**' रागरूप या पुण्यरूप या व्यवहाररूप या शरीररूप या कर्मरूप उसका स्वरूप है ही नहीं। **ज्ञानाकार स्वभावमय अनुभव किया जाता है...** अथवा ज्ञानरूप ही उसका स्वरूप है। उसका अनुभव करने से सम्यग्ज्ञान का स्वाद और सम्यग्ज्ञान का अनुभव होता है।

'**तं संमत्तं तिस्टियत्वं**' क्या कहते हैं? **उसी सम्यक्त्व भाव में ठहरना चाहिए...** ऐसे समकित भाव में आत्मा ध्रुवसन्मुख परिणाम को ले जाकर वहाँ अन्दर दृष्टि बराबर रखकर स्थिर होना चाहिए। कैसा है आत्मा? स्वभाव-सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। '**ति अर्थ समयं**' तीन रत्न के साथ उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। द्रव्यस्वभाव सन्मुख शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान हुआ, तो शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान के साथ स्वरूपाचरण अनन्तानुबन्धी का अभाव और जितने प्रमाण में स्थिरता, उतना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायसहित सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय आत्मा, वह अभेद आत्मा हुआ। शुद्ध स्वभाव के सन्मुख दर्शन किये, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र से आत्मा अभेद हुआ।

'**संपूर्न सास्वतं पदं**' **पूर्ण और अविनाशी पद में विराजित झलकता है।** भगवान आत्मा ऐसा सम्यग्ज्ञान में झलकता है। शुद्ध अभेदरूप त्रिकाल आनन्द ज्ञानमय, सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में, ऐसा झलकता है, ऐसी पर्याय को शुद्ध सम्यग्दर्शन कहते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक - २६-०९-१९६२
गाथा-२८, ३०, १११, १२४-१२५, १६८, १७५,
प्रवचन-२

..... तारणस्वामी का बनाया हुआ है। उसमें सम्यग्दर्शन का क्या स्वरूप है, उसका पहले कथन करते हैं। सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र (से) पहले सम्यग्दर्शन क्या है? धर्म की शुरुआत सम्यग्दर्शन से होती है तो सम्यग्दर्शन क्या है? लोग मानते हैं कि यह नौ तत्त्व और छह द्रव्य अथवा देव-गुरु-शास्त्र को मानना, वह सम्यग्दर्शन है। वह तो व्यवहार सम्यग्दर्शन उपचार से, बन्ध का कारण है, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन उपचार से कहते हैं। यथार्थ सम्यग्दर्शन अपना शुद्ध परमात्मस्वरूप, उसकी अन्तर में, राग पुण्य-पाप होने पर भी उसकी रुचि छोड़कर शुद्ध आत्मानन्द की अन्तर दृष्टि और अनुभव, श्रद्धा करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? यह पहले कहते हैं, आगे है। पृष्ठ १९९। पृष्ठ है पहले। ९९ पृष्ठ देखो पहले। ९९ है न उसमें? तुम्हारे ९९ नहीं। गाथा १७५ है। ज्ञानसमुच्चयसार गाथा १७५। क्या कहते हैं, देखो।

प्रथमं उवएस संमत्तं, सुध सार्धं सदा बुधैः।
दर्सनं न्यान मयं सुधं, संमत्तं सास्वतं धुवं॥१७५॥

कहते हैं कि **बुद्धिमानों को सदा प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश करना चाहिए...** समझ में आया? पहली यह बात देखो। अभी उल्टी गंगा चली है। राग करो, पुण्य करो, व्रत करो, नियम करो, तप करो। यह तो सब शुभराग की क्रिया है। इसका उपदेश पहले नहीं होना चाहिए। पहले कहा न? '**प्रथमं उवएस संमत्तं, सुध सार्धं सदा बुधैः**' बुद्धिमानों को, ज्ञानियों को, आत्मार्थी को, मोक्षाभिलाषी को **सदा प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश करना चाहिए...** लो, यह बात बदल गयी है। सेठ! तुमने भी दरकार नहीं की अभी तक।

मुमुक्षु : सुनी ही नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनी नहीं। बात तो सच्ची है।

पहले सम्यग्दर्शन क्या है? जो अपूर्व अनन्त काल में पहली भूमिका अविरत सम्यग्दर्शन चौथा गुणस्थान है, तो वह क्या है, उसका पहले उपदेश और उसकी पहले

श्रद्धा करनी चाहिए। .... देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, भक्ति, पूजा, व्रत शुभभाव आता है, परन्तु वह मोक्षमार्ग का कारण नहीं है। समझ में आया? और मोक्ष का यथार्थ कारण नहीं है। देखो, इसमें अभी झगड़े चलते हैं। बहुत झगड़ा चलता है कि व्यवहार मोक्षमार्ग है, व्यवहार में मार्ग पड़ा है। अब सुन तो सही। व्यवहारमार्ग तो मार्ग उपचार से, अन्यथा कथन से कहा गया है। .... **आप से आप ही यहाँ निजतत्त्व का अनुभव है।** उसे सम्यग्दर्शन, अविरत सम्यग्दर्शन, श्रावक, मुनिपना होने के पहले की बात है। शोभालालजी! यह तो श्रावक हो गया जहाँ हो वहाँ।

मुमुक्षु : यह तो सम्प्रदाय में ऐसा ही चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदाय में चले परन्तु वस्तु में ऐसा कहाँ है? थैली में अन्दर चिरायता भरा हो और ऊपर लिख दे शक्कर। तो क्या चिरायत मीठा हो जाता है? कोथली, थैली-थैली। थैली में भरा हो चिरायता, ऊपर लिखे शक्कर। चालीस रुपये मण शक्कर। चालीस रुपये की सेर शक्कर। तो क्या चिरायता मीठा हो जाता है? इसी प्रकार श्रावक नाम धरावे और मुनि नाम धरावे, परन्तु अपनी अन्तर स्वभाव शक्ति, शुद्ध चैतन्य अपने से अनुभव में आनेवाली चीज़ की दृष्टि हुई नहीं तो उसे श्रावक और मुनि नहीं कहा जाता। कदाचित् बाह्य व्रत पाले, पंच महाव्रत, बारह अणुव्रत, सब मिथ्या-मिथ्या है। बिना एक के शून्य जैसे मिथ्या है, वैसे सम्यग्दर्शन बिना वह व्रत और तप सब रण में शोर मचाने की बात है। रण में पोक समझते हो? अरण्य रुदन, अरण्य रुदन। अरण्य में रुदन करे, उसे कोई सुननेवाला नहीं है। इसी प्रकार तेरी आत्मश्रद्धा, आत्मज्ञान क्या है, उसकी प्राप्ति बिना व्रत, तप अरण्य में रुदन है। कड़क है, सेठ!

'संमत्तं स्थान सुधं' ओहो! आत्मा शुद्ध परमात्मा, उसकी प्रतीति, वही शुद्ध स्थान है। जहाँ बैठना चाहिए, वहाँ ही निवास करना चाहिए। अन्तर स्वरूप की दृष्टि करके वहाँ रहना चाहिए। रागादि अस्थिरता हो भले। वह तो मुनि को भी होती है न! परन्तु दृष्टि के विषय में वहाँ स्थिर होना चाहिए। वही तेरा बैठने का स्थान है। दुकान का धाम वहाँ है। दुकान की गद्दी पर बैठते हैं न? थड़ो कहते हैं? क्या कहते हैं? गद्दी। हाँ गद्दी। तो तेरी गद्दी वहाँ है, ऐसा कहते हैं। तेरी गद्दी शुद्ध स्वभाव का सम्यग्दर्शन

करना, वह तेरी गद्दी है। उस गद्दी पर बैठकर तेरे केवलज्ञान का व्यापार वहाँ होगा। समझ में आया? राग की गद्दी पर बैठने से, पुण्य की गद्दी पर बैठने से तुझे सम्यग्दर्शन भी नहीं होगा तो केवलज्ञान का व्यापार तो कहाँ से होगा? आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन ही शुद्ध स्थान है जहाँ बैठना चाहिए। यही लोक की निधि रहती है। 'निवसंति भुवने' जगत की परमार्थ निधि तो आत्मा में रहती है। जगत की चौदह ब्रह्माण्ड की सम्यक् निधि भगवान आत्म पदार्थ में है। उसकी प्रतीति करने से निधि वहाँ रहती है। समझ में आया? **'पंचदीप्ति परस्थितिं' पाँचों परमेष्ठियों में विराजता है।** सम्यग्दर्शन पाँचों ही परमेष्ठी में रहता है। ऐसा एक अर्थ किया है। वरना तो वास्तव में तो दूसरा अर्थ ऐसा होता है। **'पंचदीप्ति परस्थितिं'** जहाँ भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध का सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वहाँ ही पंचदीप्ति अर्थात् पंचम केवलज्ञान की परिस्थिति प्रगट होती है। केवलज्ञान का व्यापार वहाँ होता है। समझ में आया? गजब बातें, भाई! पंचदीप्ति प्रकाश है न प्रकाश? पंचम केवलज्ञान का प्रकाश उसमें है और पाँचों ही परमेष्ठी की दशा, दशा प्रगट करने का भी व्यापार अन्तर सम्यग्दर्शन स्वभावसन्मुख हुआ, उसमें व्यापार होता है। राग में, पुण्य में, विकल्प में, शरीर में पंच परमेष्ठी को पाने का व्यापार नहीं है। समझ में आया?

'संमत्तं ऊर्ध ऊर्धं' यह सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ में श्रेष्ठ है। मुख्य है। ज्ञान में, चारित्र में, तप में भी सबमें सम्यग्दर्शन मुख्य है। श्रेष्ठ में श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना उसका ज्ञान मिथ्या, उसका तप मिथ्या, उसका क्रियाकाण्ड चारित्र मिथ्या है। कहते हैं न पहले चारित्र पालन करो, चारित्र पालन करो, पश्चात् सम्यग्दर्शन हो जायेगा। धूल में भी नहीं होगा। सम्यग्दर्शन बिना तेरे व्रत-तप कहाँ से आये? फिर उपदेश देना, वह तो बराबर है। समझ में आया? वरना तो कहते हैं, देखो आगे है। देखो, यह आ गया न पृष्ठ ९५ लिखा है इसमें। पृष्ठ ९५ है। अविरत सम्यग्दृष्टि का ही उपदेश सच्चा है, ऐसा कहते हैं, भाई! ९५ है? हाँ, देखो। १६८ गाथा है। १६८। क्या कहते हैं?

अविरतं सुद्ध दिस्टी, च उपादेय गुन संजुत्तं।
मतिन्यानं च, संपूर्नं, उवएसं भव्यलोकयं॥१६८॥

अविरत सम्यग्दृष्टि भी ग्रहण करने योग्य गुणों का धारी होता है... अविरत अभी चौथे गुणस्थान में गृहस्थाश्रम में हो, चक्रवर्ती पद में हो, राजपद में हो। छियानवें हजार स्त्रियाँ चक्रवर्ती तीर्थंकर को होती हैं। सुना है या नहीं? शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती हैं। छियानवें हजार स्त्रियाँ हैं, परन्तु उस गृहस्थाश्रम में अविरत सम्यग्दर्शन लेकर तो स्वर्ग में से आये हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि लेकर स्वर्ग में से आये हैं। तो कहते हैं कि **सम्यग्दृष्टि भी ग्रहण करने योग्य गुणों का धारी होता है...** सम्यग्दृष्टि तो अन्तर शुद्ध आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसे उपादेय मानता है। पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, विकल्प को उपादेय मानता नहीं। उपादेय समझते हो? आदरणीय। अंगीकार करनेयोग्य सम्यग्दृष्टि चौथेवाला भी मानता नहीं। और **उसको यथार्थ मतिज्ञान होता है...** देखो! चौथे गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि को मतिज्ञान और श्रुतज्ञान यथार्थ होता है।

मुमुक्षु : दोनों के लिये सम्पूर्ण शब्द प्रयोग किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सम्पूर्ण बराबर है न। मतिज्ञान सम्पूर्ण। वह सम्पूर्ण ही है। सम्यग्ज्ञान यथार्थ हुआ, वह सम्पूर्ण ही है। सम्पूर्ण केवलज्ञान की प्राप्ति उससे होती है, वह मतिज्ञान सम्पूर्ण साधन है।

'उवएसं भव्वलोकयं' उसका उपदेश भी भव्य जीवों को यथार्थ होता है। देखो, **'उवएसं भव्वलोकयं'** भव्य लोक को उपदेश सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाले का यथार्थ होता है। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंग धारण करे, अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, नौ पूर्व पढ़े, ग्यारह अंग पढ़े, उसका उपदेश यथार्थ नहीं। त्यागी हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, हजारों रानियों का त्याग किया हो। सम्यग्दर्शन का भान नहीं, आत्मज्ञान क्या है, उसकी खबर नहीं। उसका उपदेश (यथार्थ नहीं)। सम्यग्दृष्टि हजारों रानियों में पड़ा हो, विषयभोग की वासना में पड़ा हो, तथापि अन्तर में अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थान प्रगट हुआ है तो उसका उपदेश यथार्थ निकलता है। एक भी अक्षर का विरोध उसमें होता नहीं। समझ में आया? सेठ! यह चौथे गुणस्थान में उपदेश यथार्थ निकलता है, कहते हैं। देखो, पहले पाँचवाँ (गुणस्थान) श्रावक नहीं होता। छठवें गुणस्थान में मुनि का तो भव्यलोक के लिये सच्चा उपदेश निकलता है। समझ में आया? पीछे भी है न?

उवएसं च जिनं उक्तं, सुद्ध तत्त्व समं धुवं।
मिथ्या माया न दिस्टंते, उवएसं सास्वतं पदं॥१६९॥

सम्यग्दृष्टि जिनेन्द्र भगवान ने जैसा कहा है, वैसा यथार्थ उपदेश देता है... देखो, है? १६९। पीछे है? कितना भरा है! एक-एक लाईन को समझे तब न! विचार करते नहीं। समझ में आया? **सम्यग्दृष्टि जैनेन्द्र...** देखो, पाठ है न, '**जिनं उक्तं**' वीतराग जिनेन्द्र त्रिलोकनाथ परमात्मा देवाधिदेव ने जो उपदेश कहा, जैसा कहा वैसा यथार्थ उपदेश देता है। गृहस्थाश्रम में भले हो, स्त्री-कुटुम्ब में हो, धन्धा-पानी में हो। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दृष्टि आत्मा के स्वभाव का भान हुआ, जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि में जैसा यथार्थ उपदेश आता है, ऐसा ही वह कहता है। उसमें रंचमात्र भी उपदेश में अन्तर होता नहीं। यहाँ तो जरा बाह्य त्याग हो न। बस, वह साधन। भले मिथ्यादृष्टि हो। राग को धर्म मानता हो, राग को—पुण्य को (धर्म मानता हो)... वह अन्दर है। वह पुण्य का समझे न? कुछ है अवश्य। पुण्य का योग... पुण्य का योग... है। भाई! पृष्ठ ६७ में है कुछ। पृष्ठ ६७। पृष्ठ ६७ है देखो। १२४ गाथा। १२४।

लोभं पुन्यार्थं जेन, परिनामं तिस्टते सदा।
अनंतानुलोभ सद्भावं, तिक्तते सुध दिस्टितं॥१२४॥

देखो, क्या कहते हैं? '**जेन पुन्यार्थं लोभं परिनामं**' **जिसके भीतर पुण्य की प्राप्ति के लिये लोभ भाव सदा रहता है, उसके अनन्तानुबन्धी लोभ का प्रकाश है...** समझ में आया? चन्दुभाई! क्या कहा समझ में आया? पर्याय में राग है दया, दान, विकल्प हो, शुभभाव हो, परन्तु उसका लोभ—उससे मुझे लाभ होगा, ऐसा लोभ रहता है तो वह अनन्त संसार का वर्धक अनन्तानुबन्धी लोभ गिनने में आया है। चिल्लाहट मचा जाये दूसरे लोग तो। अरर! समझ में आया? देखो, '**लोभं पुन्यार्थं जेन, परिनामं तिस्टते सदा**' सदा ही राग की रुचि, पुण्य की रुचि, शुभ की रुचि, वह मुझे लाभदायक होगा, उससे मुझे लाभ होगा, उससे मुझे धर्म होगा। करते रहो भाई शुभराग कषाय मन्द, एकबार बेड़ा पार हो जायेगा। कहते हैं कि ऐसा कहनेवाला अनन्तानुबन्धी लोभी है। समझ में आया? अनन्त अनुबन्ध। अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व, उसके साथ अनुबन्ध

करनेवाली कषाय उसके पास पड़ी है। समझ में आया? आहाहा! बात तो बहुत की है ज्ञानसमुच्चयसार में भी। परन्तु वाँचते नहीं, विचारते नहीं और समय मिलता नहीं। कमाने का समय मिलता है। भाई! उलाहना तो सुनना पड़े या नहीं? सेठ! उलाहना तो सहना पड़े या नहीं? सबको धन्धे का समय मिलता है, परनतु सच्ची समझ करने का समय नहीं मिलता। तो कहते हैं कि समझ में आया? क्या कहा? क्या कहाँ इसमें? ...

अनन्तानुबन्धी लोभ का प्रकाश है, इसलिए सम्यग्दृष्टि पुण्य का लोभ भी छोड़ देता है। पुण्य परिणाम होता है, परन्तु उसका लोभ, उससे लाभ, यह दृष्टि छोड़ देता है। कहो, बराबर है? पण्डितजी! कैसा अभी तक उपदेश दिया? उपदेश तो पहले क्षुल्लक थे तो दिया तो होगा या नहीं? क्या कहते हैं? तुम राग करो, कषाय करो, उसमें से कुछ लाभ होगा। देखो, पण्डित कहते हैं कि हमने ऐसा दिया, तो सेठ क्या करे? खबर नहीं होती। इस चीज़ की खबर नहीं। सम्यग्दृष्टि ऐसा लोभ भी छोड़ देता है। अरे! यह तो कहते हैं विशेष १२५ (में) भाई!

लोभं स्त्रुत तपं कृत्वा, व्रत क्रिया अनेकधा।
न्यान हीनो अनन्तानं, तिक्कते सुध दिस्टितं॥१२५॥

अनन्तानुबन्धी लोभसहित... अज्ञानी राग से .... **शास्त्र अनेक प्रकार पढ़े, अनेक तरह के तप तपे व अनेक तरह के व्रत पाले तो भी आत्मज्ञानरहित है, अतएव सम्यग्दृष्टि उसे त्याग देता है।** ऐसा कोई भी त्यागी हो, परन्तु सम्यग्दर्शन का भान नहीं, राग से धर्म मनावे, छोड़ दो, उसका आदर न करो। त्यागी हो तो भी उसका आदर न करे। उसके पास अनन्तानुबन्धी लोभ है। राग से लाभ बतलाता है। कषाय से लाभ? वीतरागमार्ग किसे कहते हैं? वीतरागमार्ग में वीतरागभाव से लाभ होगा या राग से लाभ होगा? होता है, पुण्य आता तो है। पंच महाव्रत का आता है, श्रवण का आता है, गणधर को आता है, मुनि को आता है, भक्ति का आता है, पूजा का आता है। दान, दया का आता है परन्तु उसकी ऐसी रुचि करना कि उससे मुझे धर्म होगा, तो कहते हैं कि ऐसे माननेवाले को '**तिक्कते**' सम्यग्दृष्टि उसका आदर नहीं करता। छोड़ देता है, तेरी दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया?

देखो, तप तपे और **सम्यग्दृष्टि उसे त्याग देता है।** अनन्तानुबन्धी लोभ की व्याख्या है। समझ में आया? पश्चात् भी कहा न?

लोभं स्त्रुत तपं कृत्वा, व्रत क्रिया अनेकधा।
न्यान हीनो अनन्तानं, तिक्तते सुध दिस्टितं॥१२५॥

लोभ कषाय अनेक तरह के भेदरूप अशुभ कार्यों का मूल शास्त्र में कहा गया है, इसलिए शुद्ध साधन करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी लोभ का विश्वास छोड़ देते हैं। राग का विश्वास छोड़ देते हैं, अनन्तानुबन्धी का लोभ है। सम्यग्दृष्टि उसे छोड़ देता है। वरना आगम का द्रोही होता है। समझ में आया? देखो, पृष्ठ ६०। यह आगम में प्रवेश करना। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का विषय है न, इसलिए उसका कहा देखो। क्या कहते हैं, देखो १११ गाथा है। १११।

समय सुद्धं जिनं उक्तं, ति अर्थ तीर्थंकरं कृतं।
समयं प्रवेस जेनापि, ते समयं सार्धं धुवं॥१११॥

१११। क्या कहते हैं देखो! यहाँ सम्यग्दृष्टि अपनी निधि में क्या जानता है? और किसका उसमें प्रवेश है? कि **शुद्ध या निर्दोष आगम के वक्ता श्री जिनेन्द्र हैं...** शुद्ध आगम और ध्रुव सत्य की बात करनेवाले त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र वीतराग एक ही हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे कोई सत्य के वक्ता नहीं हैं। **'ति अर्थ तीर्थंकरं कृतं' संसार से तारनेवाले रत्नत्रयमयी धर्म का कथन तीर्थंकरों ने किया है। 'ति अर्थ तीर्थंकरं कृतं'** यह तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने तीर्थ अर्थात् तिरने का उपाय बताया है। इसके अतिरिक्त दूसरे किसी ने बताया नहीं। कहो, यह तारणस्वामी कहते हैं कि तीर्थंकरों ने कहा है। अब इसके साथ दूसरे को मिलाना? समझ में आया? शोभालालजी! यह तुम्हारे सेठ के पुस्तक में भी दूसरे की बात घुसा दी है। खबर नहीं, क्या करे? खोटा रुपया भी चला देते हैं सेठ। सच्चा सेठ हो तो खोटा रुपया चलावे? जड़ दे, चलावे नहीं। कहते हैं न! तीर्थंकरों ने सच्चा उपदेश त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेवाधिदेव वीतराग, जिन्होंने राग से लाभ नहीं, ऐसा उपदेश कहा है। उन्होंने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागीदशा का उपदेश किया है।

जो कोई इस जिन आगम में प्रवेश करता है... देखो, **'जेनापि समयं प्रवेस'** ऐसे जिनागम में प्रवेश करता है, अभ्यास करता है तो उसमें वीतरागता झलकती है। देखो, पश्चात् आता है न। **'ते धुवं समयं सार्धं' उसी ने ही निश्चय आत्मा का साधन किया है।** क्योंकि आगम जो सर्वज्ञ का आगम है, उसमें रागरहित शुद्ध आत्मा का साधन करने से सम्यग्दर्शन होता है। इस प्रकार आगम में प्रवेश करने से ऐसा निकलता है। आगम में से कोई ऐसा निकाले कि राग से, पुण्य से, निमित्त से लाभ होता है तो वह आगम नहीं, परन्तु कुआगम है। समझ में आया? साध्य ध्रुव है न? इसके बाद भी है, भाई! जरा देखो। ११२। इससे विरुद्ध है, देखो।

धुव समयं च जानति, अनेयं राग बन्धनं।
दुर्बुद्धि विषय होंति, समय मिथ्या च उच्यते॥११२॥

'धुव समयं च जानति,' जिसमें निश्चय शुद्ध आत्मा का ज्ञान न हो... अकेला आत्मा भगवान पवित्र, पुण्य-पाप और निमित्त से रहित की श्रद्धा-ज्ञान का जिसमें उपदेश न हो और **अनेक राग भावों में बाँधनेवाली बातें हो...** देखो, पुण्य और राग करो... राग करो... कषाय मन्द करो, ऐसी बाँधने की जिसमें बात हो, **जिसमें मिथ्या बुद्धि से लिखे गये विषय हों...** राग से लाभ मानने का विषय जिसमें लिखा हो, वह आगम नहीं है। वह आगम नहीं, वह तो कुआगम है। जिसमें पुण्य-पाप के परिणाम से लाभ मनाया हो तो वह कुआगम है। तो आगम-कुआगम का भी इसे विवेक करना चाहिए। तो **'समय मिथ्या च उच्यते' उसको मिथ्या आगम कहते हैं।** ऐसा उपदेश करनेवाले को मिथ्या कहते हैं।

यहाँ अपने यह चलता है। समझ में आया? क्या कहा? क्या आया? **'ऊर्ध ऊर्ध'** ऊर्ध्वगामी कहा न? २७ हो गयी न? २८ चलती है। देखो, ऊर्ध्वगामी स्वभाव। क्या कहा? **जहाँ अनन्त स्वभाव-आत्मा का स्वभाव झलक जाता है, निर्मल गुणों की खान है, आपसे आप ही जहाँ निज तत्त्व का अनुभव है...** उसमें से यह शब्द निकाला है। क्या कहते हैं? जिस आगम में ऐसा लिखा हो कि विकल्प और आस्रव से लाभ होता है, उसका अभ्यास करना, वह मिथ्या शास्त्र का अभ्यास है। देखो! **'स्वयमेव सुयं**

तत्त्वं' जिसका सहजानन्द प्रभु अपना स्वभाव अपने स्वभाव के साधन से ही प्राप्त होता है। विभाव का बिल्कुल उसमें आश्रय और आधार है ही नहीं। ऐसा आगम का उपदेश जिसमें लिखा हो, उसे आगम कहते हैं। और राग से लाभ मानने का लिखा हो, वह आगम नहीं, वह कुआगम है। समझ में आया? कितना स्पष्ट किया है कि किसे आगम कहना और किसे कुआगम कहना। समझ में आया?

और '**पंचदीप्ति परस्थितं**' '**ऊर्ध ऊर्धं,**' **श्रेष्ठ में श्रेष्ठ है।** सम्यग्दर्शन तो श्रेष्ठ में श्रेष्ठ वस्तु है। उससे तो आगे चलते-चलते **यही कमल के पत्ते पर जल बूँद के समान है।** पानी का बिन्दु। राग से, पर से स्पर्शरहित चीज़ है। स्पर्शे नहीं। यह पानी की बूँद, पानी की बूँद है न वह? कमल को स्पर्शती नहीं। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन अन्दर में व्यवहाररत्नत्रय के राग को स्पर्शता नहीं। समझ में आया? पहले तो बात समझना कठिन पड़ती है। अभ्यास नहीं, सुने नहीं। 'मूल मार्ग सुन लो जिनवर का रे।' यह श्रीमद् कहते हैं। 'मूल मार्ग सुन लो जिनवर का रे।' वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा तो वीतराग थे। तो वीतराग का मार्ग तो वीतरागभाव से शुरु होता है न? या राग से शुरु होता है? राग से शुरु हो, वह वीतरागमार्ग है ही नहीं। पहले सम्यग्दर्शन से (शुरु होता है)।

तो कहते हैं कि **यही कमल के पत्ते पर जल बूँद के समान है। आकाश में गमन स्वभाव है अर्थात् आकाश तुल्य निर्मल भाव में परिणमनस्वभाव है।** सम्यग्दर्शन। आकाश में जैसे रंग, राग नहीं, वैसे अपने शुद्ध स्वभाव त्रिकाल की दृष्टि में भी राग का रंग—चित्राम नहीं है। आकाश में चित्राम कहते हैं न? दीवार पर चित्राम करते हैं। आकाश में होता है? नहीं होता। इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध निर्विकल्प आनन्द की प्रतीति, सम्यग्दर्शन, उसमें भी राग का रंग चढ़ता नहीं। वह रागरहित वीतरागदृष्टि है। सम्यग्दर्शन वीतरागदृष्टि है। चौथे गुणस्थान में। समझ में आया? कैसी दृष्टि? वीतरागदृष्टि। वीतराग विज्ञानघन आत्मा है, ऐसी दृष्टि है। आकाश में जैसे निर्मलता है, चित्राम नहीं, वैसे ही भगवान सम्यग्दर्शन पर्याय में राग है ही नहीं, राग भिन्न है, उसे ज्ञान जानता है। अपने सम्यग्दर्शन के साथ राग का सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? लो, यह गाथा हुई, इसका अर्थ हुआ।

अब २९ गाथा।

तं संमत्तं कलस ससिनं, सयल गुणनिहि भवन विंद प्रविंदि।
संमत्तं क्रांति क्रान्त्यं, त्रिभुवन निलयं जोतिरूपस्य क्रांति॥
तं संमत्तं तिस्टिनत्वं, परम पयं धुवं सुद्ध बुद्धं चतुस्टं।
जोयंतो जोग जुत्तं, समयं धुव पदं तत्त्व विंदं संविंदिं॥२९॥

समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो, क्या कहते हैं यहाँ? ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामीकृत। उसमें सम्यग्दर्शन का विषय चलता है और सम्यग्दर्शन का माहात्म्य क्या? स्वरूप क्या? निधि दृष्टि में पड़ी है, यह उसकी बात चलती है। **सम्यग्दर्शन... 'संमत्तं कलस ससिनं,' चन्द्रमा के बिम्ब के समान प्रकाशित है... 'ससिनं'** चन्द्रमा का बिम्ब है। वैसे सम्यग्दर्शन, राग और विकल्प होने पर भी उनसे पृथक् होकर अपने स्वभाव की प्रतीति ज्ञान का अनुभव, वह चन्द्रमा के कलश समान है। और चन्द्रमा जैसे अखण्ड दिखता है, वैसे सम्यग्दर्शन का विषय भी अखण्ड आत्मा है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का विषय अखण्ड आत्मा है। कलश (अर्थात्) वह तो कहा न! बिम्ब समान। बिम्ब। **'ससिनं'** चन्द्रमा बिम्ब। कलश अर्थात् बिम्ब, बिम्ब कहा है। दिखाव है न कलश जैसा, कलश जैसा बिम्ब समान। **'संमत्तं'** चन्द्रमा अर्थात् **'ससिनं' 'कलस'** अर्थात् बिम्ब। कलश जैसा दिखता है न ऐसे? जैसे कलश दिखता है, वैसा बिम्ब दिखता है। क्या कहा?

भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप परमानन्द की मूर्ति अनादि-अनन्त ध्रुव पड़ा है ज्ञायकभाव, उसकी अन्दर सम्यग्दर्शन—प्रतीति हुई तो वह चन्द्रमा के बिम्ब समान है। निर्मल प्रकाशमय है। उसमें मलिनता है नहीं। और **'सयल गुणनिहि'** बहुत बार आता है यह तो। **सर्व गुणों की खान है।** आत्मा भी सर्व गुणों की खान और सम्यग्दर्शन की प्रतीति में सर्व गुण की खान। उसमें से सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र शुक्लध्यान होकर केवलज्ञान होता है। मिथ्यादृष्टि बाह्य त्याग आदि करे, परन्तु उसमें कुछ लाभ होता नहीं। समझ में आया?

और **'भवन विंद प्रविंदि' 'भवन विंद प्रविंदि' तीन भुवन के वृन्द अर्थात्**

प्राणियों से वन्दनीक है। वृन्द है न? '**भवन विंद**' तीन लोक के वृन्द अर्थात् प्राणियों से '**प्रविंदि**' वन्दनीक है। सम्यग्दर्शन चाण्डाल को भी होता है। चाण्डाल-चाण्डाल। आता है न रत्नकरण्डश्रावकाचार में? तो कहते हैं कि ऊपर से शरीर मलिन हो, काला हो, चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुआ हो, जैसे अग्नि राख से दबी हुई हो। दबी हुई कहते हैं न? दबी हुई हो। राख में अग्नि दबी हुई हो, वैसा चाण्डाल का शरीर दिखता है। काला ऐसा। परन्तु अन्दर चैतन्य के प्रकाश का सम्यग्दर्शन यदि हुआ हो तो अग्नि राख से दबी हुई जैसी है। और उसे देव कहा गया है, रत्नकरण्डश्रावकाचार में। सम्यग्दृष्टि चाण्डाल हो तो भी देव तुल्य है, जिसका देव भी आदर करते हैं। समझ में आया? और मिथ्यादृष्टि ने हजारों रानियों का त्याग (किया हो) और पंच महाव्रत पालता हो और अट्ठाईस मूलगुण भी पालता हो, नौ वाड से ब्रह्मचर्य पालता हो, परन्तु राग और देह की क्रिया मुझसे होती है और मुझे लाभदायक है, ऐसे मिथ्यादृष्टि का सब त्याग रण में शोर मचाने जैसा है। समझ में आया? पोक अर्थात् अरण्यरुदन है। पोक हमारे यह रोवे, उसे पोक कहते हैं।

क्या कहते हैं? ओहो! **तीन भुवन के प्राणियों से वन्दनीक है। 'संमत्तं क्रांति क्रान्त्यं,' सम्यग्दर्शन की कान्ति या शोभा से तीन जगत का घर प्रकाशित है...** यह सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसने आत्मा की क्रान्ति की। समझ में आया? क्रान्ति हुई। क्या धूल क्रान्ति? बाहर में क्रान्ति होती है? अपना स्वरूप शुद्ध राग से रहित, उसकी प्रतीति और ज्ञान को क्रान्ति कहते हैं। क्रान्ति की। यह लोग कहते हैं न, इसने क्रान्ति की। धूल में भी नहीं करता, सुन तो सही। सम्यग्दर्शन की क्रान्ति, वही प्रकाशित घर यथार्थ है। और **शोभा से तीन जगत का घर प्रकाशित है अर्थात् सम्यग्दर्शन की शोभा जगतव्यापी है...** चौदह ब्रह्माण्ड में सम्यग्दर्शन की महिमा है। शूरवीर तो सम्यग्दृष्टि, पण्डित तो सम्यग्दृष्टि, सबमें विवेकी तो सम्यग्दृष्टि, जगत के चक्षु यथार्थ भानवाला तो सम्यग्दृष्टि। समझ में आया? अभी तो सम्यग्दर्शन की महिमा।

ओहो! **सम्यग्दर्शन की शोभा जगतव्यापी है...** चौदह ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। ऊर्ध्व, मध्य और अधो—नरक में भी सम्यग्दर्शन है, तो वहाँ से देखो तीर्थंकरगोत्र बाँधकर वहाँ रहे हैं। श्रेणिक राजा वहाँ हैं। श्रेणिक राजा चौरासी हजार वर्ष की स्थिति

में पहले नरक में गये हैं। अभी चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में वहाँ हैं। वहाँ से निकलकर... वहाँ भी समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। वहाँ चौथा गुणस्थान है। समय-समय में... (वहाँ से) निकलकर देवाधिदेव आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। श्रेणिक राजा पहले नरक से निकलकर। समझ में आया?

तो कहते हैं, **सम्यग्दर्शन की शोभा जगतव्यापी है...** और **'जोति रूपस्य क्रांति' यह सम्यग्दर्शन परम ज्योतिमय आत्मा की क्रान्ति है...** देखो! आत्मा की क्रान्ति है। कोई पुण्य किया और पुण्य से फल मिला, कोई स्वर्ग मिला, वह कहीं आत्मा की क्रान्ति नहीं। कोई बड़ा पुण्य बाँधा। समझ में आया? स्वर्ग का पुण्य बँधा। एक-एक... यशकीर्ति ऐसी सातावेदनीय बाँधी। वह आत्मा की क्रान्ति नहीं। उसमें आत्मा की तो हीनता है। आत्मा की क्रान्ति (अर्थात्) भगवान आत्मा शुद्धता का अन्तर श्रद्धा से अभ्यास कर। सम्यग्दर्शन की क्रान्ति की, उसने सब क्रान्ति की। समझ में आया? और **'तं संमत्तं तिस्टिनत्वं' इस सम्यग्दर्शन का अनुभव करना योग्य है।** अर्थात् देखनेयोग्य अर्थात् अनुभव करना। यह सम्यग्दर्शन का ही अनुभव करनेयोग्य है।

'परम पयं धुवं' यह अविनाशी उत्तम पद है... उससे अविनाशी उत्तम पद प्राप्त होता है तो सम्यग्दर्शन को ही अविनाशी पद कहने में आता है। मिथ्या अभिप्राय राग-द्वेष सब नाशवान है। अविनाशी स्वभाव की दृष्टि हुई तो वह दृष्टि अविनाशी पद को देनेवाली है। **'सुद्ध बुद्धं चतुस्टं' जहाँ शुद्ध बुद्ध चार चतुष्टय आकर विराजते हैं...** क्या कहते हैं? आत्मा... दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। सम्यग्दर्शन की भूमिका में आगे बढ़कर उसमें अनन्त चतुष्टय (प्राप्त करेगा)। ऐसी निधि-निधान सम्यग्दर्शन के वर्णन में इतने गीत गाये हैं। अध्यात्म की वाणी में तो बारम्बार यह कथन चलता है। उसमें पुरुक्तिदोष है नहीं। यह एक बात तो बारम्बार लेते हैं। दूसरे ग्रन्थ में भी ली है, परन्तु बात थोड़ी है। समझ में आया? परन्तु बारम्बार... भावना का ग्रन्थ है न, तो बारम्बार घोंटते हैं। वहाँ समाधिशतक बारम्बार यह एक का एक भाव करके सम्यक् भावना करते हैं। जैसे राग की, पुण्य की और विकार की अनन्त काल से बारम्बार भावना की मिथ्याज्ञान में, तो उससे रहित आत्मा की बारम्बार अन्तर भावना करना। समझ में आया? आहार लेते हैं।

हमेशा आहार दाल-भात-रोटी... दाल-भात-रोटी... कभी उकताहट आयी? क्योंकि वह पोषण की चीज़ है। हमेशा देखो तो रोटी-दाल-भात-सब्जी, रोटी-दाल-भात-सब्जी। कभी ऐसा हो कि आज पकवान करो या ढोकला। ढोकला को क्या कहते हैं तुम्हारे? कुछ होगा तुम्हारे। यहाँ ढोकला होते हैं चावल के। किसी समय होते हैं। वरना रोटी, दाल, भात और सब्जी। इसी प्रकार आत्मा का आहार स्वाध्याय करके आत्मा के अनुभव की दृष्टि बारम्बार करना, वह आत्मा का आहार है। समझ में आया? नया-नया बनता है न तुम्हारे? लड्डू बनावे और ऐसे बनावे और धूल बनावे। वह सब—धूल ही है न! दूसरा क्या है? दूधपाक बनावे। विष्टा है विष्टा। आठ घण्टे में विष्टा होगी। क्या है उसमें? वर्तमान में भी क्या है? वह दूधपाक और गुलाबजामुन, है न गुलाबजामुन है न। मुँह में डाले तो पाँच मिनिट में तो रस हो जाता है। उसका रस ऐसा कि मुख देखे दर्पण में तो कुत्ते की ऐंठ है। नीचे उतारे। क्या खाया? अरे! गुलाबजामुन खाये। मावा के होते हैं न। गुलाबजामुन भी ... खबर है? पाँच सेकेण्ड में थूक हो गया। लार... लार... लार... हाथ में ले न पहले, फिर गले में उतारना। उसका आहार हमेशा करना। और आत्मा आनन्दमय, चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, राग से पृथक् होकर अपना बारम्बार श्रद्धा, ज्ञान का अभ्यास करना। वह अपनी निधि बारम्बार हमेशा का आहार है। समझ में आया? वह आहार छोड़कर दूसरा आहार लेते हैं, अनादि से पर का अभ्यास हो गया है।

यही अविनाशी उत्तम पद है, जहाँ शुद्ध बुद्ध चार चतुष्टय आकर विराजते हैं, सम्यग्दृष्टि ही अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य का स्वामी है... '**जोगजुत्तं जोयंतो**' '**जोगजुत्तं**' का वास्तविक अर्थ तो स्वभाव सन्मुख का जुड़ान करके। भले योगाभ्यास किया है, परन्तु योगाभ्यास का अर्थ यह योग। लोग कहते हैं योगाभ्यास, ऐसा नहीं। समझ में आया? नाडी करो और ऐसा करो और वैसा करो, कहते हैं न लोग? अन्दर में विचार करे... यह नहीं। '**जोगजुत्तं**' अपना जो पवित्र शुद्ध वीतरागघन ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, उसमें जुड़ान करना। जुड़ान को क्या कहते हैं? मिलान। उसके साथ जुड़ान करे। हमारी भाषा में जोडाण कहते हैं। हमारे जोडाण (शब्द है)। जोड़ देते हैं। अपनी वर्तमान पर्याय को त्रिकाल के साथ जोड़ देते हैं।

एकता। अनुसन्धान करे उसका नाम योगाभ्यास है। यह योगाभ्यास दुनिया करती है... ऐसा और वैसा, यह हमारे वैदराज ने बहुत किये हैं। ढोंग-ढोंग। ऐसा करना और वैसा करना। कुम्भक। ऐसे श्वास डालना (लेना)। रेचक—निकाल लेना। है न कुम्भक और रेचक ऐसा सब? वह तो जड़ की क्रिया है। तेरे योगाभ्यास में कहाँ वह तेरे शून्य हैं।

तेरा शुद्ध वीतरागी विज्ञानघन स्वभाव, उसमें '**जोगजुत्तं**' एकाग्र होकर युक्त होना, उस उपाय से सम्यग्दर्शन अनुभव में आता है। उस साधन से आत्मा का सम्यग्दर्शन ख्याल में आता है और प्रतीति होती है। उसका दूसरा कोई उपाय नहीं। ऐसी क्रिया करो और व्यवहार करो और निमित्त में जुड़ो। समझ में आया? सम्मेदशिखर जाओ, सम्यग्दर्शन हो जायेगा, समवसरण में जाओ सम्यग्दर्शन हो जायेगा। अपने अन्तर स्वभाव समुद्र में प्रवेश करने से सम्यग्दर्शन होगा। समझ में आया?

कहते हैं, '**समयं धुव पदं**' **वही आत्मा का निश्चय पद है...** समय अर्थात् आत्मा। वह समय अर्थात् आत्मा। देखो, समयसार आता है न? समयसार। समय अर्थात् आत्मा। ध्रुवपद वह आत्मा का निश्चय पद। '**तत्त्व विंदं संविंदि**' वह **तत्त्वज्ञानियों के द्वारा स्वयं अनुभवगम्य है।** स्व वेद्यं। स्व आत्मा से अनुभवगम्य है। '**स्वानुभूत्या चकासते**' '**नमः समयसाराय**' यह गाथा आयी थी न? समझ में आया? सर्व आगम है शास्त्र में। .... उसे मिलान कर कहा है। समझ में आया? उसमें अकेले तत्त्व का बारम्बार घोंटन किया है। तो कहते हैं कि तत्त्वज्ञानी अर्थात् सच्चे ज्ञानी के द्वारा वह स्वयं अनुभवगम्य है।

संमत्तं सुद्ध गुनं सार्धं, सुद्ध तत्त्व प्रकासकं।
सुधातमा सुध चिद्रूपं, सुधं संमिक्दर्सनं॥३०॥

क्या है सम्यग्दर्शन? अभी तो यह चौथे गुणस्थान की व्याख्या चलती है। **सम्यग्दर्शन...** शुद्धात्मा पदार्थ का गुण है। है गुण, गुण का अर्थ पर्याय। यह तो गुण कहा जाता है। सिद्ध के आठ गुण कहते हैं न? सिद्ध को आठ गुण प्रगट हुए। वह गुण नहीं प्रगटते, पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? गुण तो त्रिकाल रहते हैं। गुण प्रगट नहीं होते। अरे! क्या है? हमारे पण्डितजी कहते यह क्या है? गुण कभी किसी को प्रगट नहीं होते। गुण तो आत्मा में त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... निगोद में भी पड़े हैं और

सिद्ध में भी गुण तो पड़े हैं। यह सिद्ध हैं, वह गुण नहीं, सिद्ध वह पर्याय है। सिद्ध एक परिपूर्ण अवस्था है, गुण नहीं। तो पर्याय में जो अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि आठ गुण प्रगट हुए, वे गुण नहीं, पर्याय है परन्तु गुण के साथ एकाग्रता हुई तो उस पर्याय को गुण कहा जाता है। गुण नहीं। गुण कभी प्रगट नहीं होते। गुण को कभी आवरण नहीं होता। गुण में आवरण होता नहीं। गुण कभी प्रगट होते नहीं। पर्याय में आवरण होता है और पर्याय प्रगट होती है। खबर नहीं, सेठ! पर्याय क्या और गुण क्या? क्या समझ में आया?

जैसे सोना है या नहीं सोना? सुवर्ण—सोना। तो सोना को आवरण होगा? वह तो द्रव्य है। उसमें पीलापन, चिकनापन, वजन जो है, वह तो गुण है। वह तो सदा ही रहते हैं। उसमें कोई आवरण या प्रकाश होता नहीं। उसकी पर्याय कुण्डल, कड़ारूपी की प्रकाश पर्याय होती है। एक पर्याय जाती है और दूसरी पर्याय आती है। पर्याय अर्थात् अवस्था, अवस्था अर्थात् हालत। गुण और द्रव्य तो त्रिकाल है। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में द्रव्य और गुण तो अनादि-अनन्त एकरूप उसका है। संसारदशा एक आत्मा की विकारी पर्याय है, गुण नहीं।

मुमुक्षु : ज्ञान जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है। ज्ञान अल्पज्ञ में रहना, वह जानता है। पर्याय में अल्पज्ञ होना, वह ज्ञान का आवरण है। पर्याय में आवरण है, गुण में नहीं। गुण में कभी आवरण नहीं होता। ऐसी बात है। ओहोहो! गजब बात भाई! ज्ञान की वर्तमान पर्याय प्रगट दशा में अल्पता होती है और उसमें सर्वज्ञता होती है। गुण में नहीं, गुण तो त्रिकाल एकरूप रहता है। गुण तो ध्रुव है। देखो न, क्या कहा? आया न! कहाँ आया?

देखो! **सम्यग्दर्शन शुद्ध जीव पदार्थ का गुण है।** इसकी व्याख्या चलती है। गुण का अर्थ पर्याय। '**सार्धं**' पर्याय है। '**सुद्ध तत्त्व प्रकासकं**' देखो, **शुद्ध आत्मतत्त्व का प्रकाश है।** यह तो पर्याय है। त्रिकाल गुण तो त्रिकाल पड़े हैं—ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वह शक्ति तो त्रिकाल पड़ी है। जो दोपहर में चलता है वह। उसकी सम्यक् पर्याय प्रगट हो तो मोक्षमार्ग कहने में आती है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र वह पर्याय है, वह गुण नहीं। मोक्षमार्ग गुण नहीं, मोक्षमार्ग पर्याय / अवस्था है। संसार में भी एक

विकारी अवस्था है और सिद्ध भी एक अवस्था है, केवलज्ञान भी गुण नहीं। केवलज्ञान जो भगवान को प्रगट हुआ, वह गुण नहीं, पर्याय प्रगट हुई है। समझ में आया? कहो, अब पण्डित को, सेठ को खबर न हो तो फिर बाद के तुम्हारे समाज को क्या खबर होगी? तुम्हारे पुत्र-पुत्रियों को कहाँ से खबर होगी? सच्ची बात है। मूलं नास्ति कुतो शाखा। मूल में ही वस्तु नहीं, शाखा कहाँ से आवे?

यह मानो शुद्ध आत्मा है... यह तो पर्याय से अभेद किया, देखो! सम्यग्दर्शन शुद्ध आत्मा है, ऐसा अभेद करके आत्मा कह दिया। है तो पर्याय। उसे गुण भी कहा और आत्मा भी कहा। यह तो अभेद हुआ न? अपनी शुद्ध पर्याय प्रगट कर गुण के साथ अभेद हुई, इसलिए सम्यग्दर्शन को आत्मा भी कहा। **व चेतना स्वभाव है...** चेतना स्वभाव ही चेतन की ज्ञानचेतना हो गयी पर्याय में। **ऐसा यह शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शन है।** लो! यह शुद्ध कहो या निश्चय सम्यग्दर्शन (कहो), यह निश्चय सम्यग्दर्शन की व्याख्या हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक - २७-०९-१९६२
गाथा-३१, ३३, २६१, २६२, २६४,
प्रवचन-३

यह ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामी रचित। उसमें यहाँ सम्यग्दर्शन का अधिकार चलता है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान सम्यक् नहीं होता, चारित्र भी नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना सब व्रत, तप, क्रिया सब व्यर्थ है। उसमें पुण्य बँधे परन्तु जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। इसलिए सम्यग्दर्शन की आवश्यकता। यहाँ से चला है न अपने, २५वीं गाथा से चला है। सम्यग्दर्शन की आवश्यकता। यह तो पहले अपने कल आया था। प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश होना चाहिए। पहले में पहले सम्यग्दर्शन क्या है, उसे साधने का उपदेश पहले होना चाहिए। पश्चात् चारित्र, व्रत, तप, और ब्रह्मचर्य बाद में होता है। पहले जिसे सम्यग्दर्शन नहीं हुआ... ३० गाथा तो आ गयी। ३१वीं।

संमत्तं सार्धनं भव्यं सुद्ध तत्त्व समाचरेत्।
संमत्तं जस्य तिस्टंते, ति अर्थं न्यान संजुतं॥३१॥

क्या कहते हैं? अहो! **भव्य जीव ही सम्यग्दर्शन को सिद्ध करता है। 'संमत्तं सार्धनं भव्यं'** तीन न्याय पड़े हैं। एक तो भव्य सम्यग्दर्शन को साधता है। दूसरा, सम्यग्दर्शन अन्तर सन्मुख पुरुषार्थ से होता है। समझ में आया? कोई कहे कि गर्म गल जाये तो सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा नहीं है। यह बतलाने के लिये लिया है कि **'संमत्तं सार्धनं भव्यं'** भव्य अर्थात् लायक—योग्य प्राणी ही सम्यग्दर्शन को साधते हैं, साधता है। तो अन्तर स्वरूप का साधन करने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा का ऐसा पुरुषार्थ किये बिना होता है, (ऐसा नहीं) सेठी! भाई! काललब्धि पके तो होगा, कर्म कुछ हटे तो होगा, ऐसी बात नहीं है। जब-जब आत्मा पहला सम्यग्दृष्टि होता है तो निज शुद्ध एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण परमात्मा ज्ञान, आनन्द स्वरूप के अन्दर मन्दिर में प्रवेश करके भगवान आत्मा का दर्शन करता है, वह अपने पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शन होता है। शोभालालजी! समझ में आया?

मुमुक्षु : काललब्धि क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपना पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख होकर प्रतीति हुई, उस पर्याय को काललब्धि जानने के योग्य हुई। समझ में आया?

कहते हैं न, देखो! **'संमत्तं सार्धनं भव्यं'** काललब्धि का तो यहाँ नाम भी नहीं लिया कि काललब्धि होगी, तब होगा। वह आदरणीय है? यहाँ तो... समझ में आया? बहुत गड़बड़ है। वर्तमान में इतनी गड़बड़ हो गयी है कि लोगों को सत्य क्या है, (उसका पता लगे ऐसा नहीं)। तारणस्वामी ने तो निश्चय यथार्थ सत्य क्या है सम्यग्दर्शन का लक्षण, जानकर जिनागम और सर्वज्ञ ने कहा, वैसा कहा है। जैसे सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा, जैसे कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्त और आगम (कहता) है, तत्प्रमाण उसका निश्चय सम्यग्दर्शन का कथन है। उसमें रंचमात्र भी अन्तर नहीं। उसमें ऐसा हो जाये कि अरे! व्यवहार उड़ जाता है। अरे! व्यवहार कहाँ से आया? तेरा निश्चय चैतन्यमूर्ति प्रभु, पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग से रहित अन्तर प्रतीति अनुभव निश्चय हुए बिना देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के राग को व्यवहार समकित का आरोप आता है। यह निश्चय हो तो व्यवहार का आरोप आता है। निश्चय न हो तो व्यवहार का आरोप भी उसमें नहीं आता। समझ में आया? यह सब समझना पड़ेगा, शोभालालजी! अभी तक बहुत समय निकाल दिया दोनों भाईयों ने। यहाँ आये हो, उसे कहा जाये न हमारे। न आये उसे कहा जाये? कितनी बात है, देखो! एक शब्द इतना पड़ा है कि **'संमत्तं सार्धनं भव्यं'** इसमें बहुत गड़बड़ चलती है कि सम्यग्दर्शन तो ऐसे ही पुरुषार्थ बिना हो जायेगा। व्रत, नियम, क्रिया, यह पुरुषार्थ से करो, परन्तु सम्यग्दर्शन तो ऐसे ही हो जायेगा। ऐसा बड़े-बड़े आचार्य नामधारी भी ऐसा कहते हैं। ऐसा पुस्तक में लिखा है। सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तुमको खबर नहीं तो क्या? ऊपर कहे वह सच्चा। है या नहीं? सेठी! तुमको खबर नहीं हो तो ऊपर (प्रवचनकार) कहे... यह तो भाई अपने से बड़े हैं, निवृत्त होकर बैठे हैं, ब्रह्मचर्य पालते हैं, त्यागी हैं तो कुछ सच्चा कहेंगे। उसे शास्त्र का अभ्यास है तो सच्चा तो कहे न! ऐसी बात नहीं है। यदि कोई ऐसी प्ररूपणा करे कि व्यवहार क्रिया, दया, दान, राग करते-करते सम्यग्दर्शन होगा, वह कुगुरु है।

वह कुआगम का उपदेश देनेवाले हैं। उसे व्यवहार और निश्चय क्या है, इन दोनों की खबर नहीं। समझ में आया? ...भाई! जरा सूक्ष्म बात है।

'**संमत्तं सार्धनं भव्यं**' एक तो भव्य और '**सार्धनं**' जो शब्द लिया है, वह अन्तर में राग और पुण्य की रुचि छोड़कर, व्यवहार जो दया, दान, व्रत, भक्ति, विकल्प है शुभराग, उसकी रुचि छोड़कर, उससे हटकर अपने ज्ञानप्रकाश में साधन करके एकाग्र होता है पुरुषार्थ से, तो उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। समझ में आया? यह पैसे मिल गये। भाई पूछते थे सवेरे कि यह पैसे किस प्रकार मिलते हैं? कि पैसे मिलते हैं पुण्य से। परन्तु महाराज! बोझा लगता है। बोझा लगता है, नया पाप किया पैसा पैदा करने में। पाप का नया लोन लिया। पैसा पैदा करने का भाव है न, वह पाप है। परन्तु मिला है, वह पूर्व का पुण्य था, इससे मिला है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन पुण्य से मिले, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया? यह पण्डित लोग भी तुम्हारे हैं, वह भी बराबर समझते नहीं हैं। अच्छी बात है या नहीं? तो प्ररूपणा क्या करे? तो तुमको बुलाया। सेठ को कहा कि भाई! यह बुद्धिवाले हैं, थोड़ा पकड़ सके या क्या है? जैनदर्शन की जिनागम की सर्वज्ञ की पद्धति, रीति क्या है, यह सुने नहीं, विचारे नहीं तो सच्ची प्ररूपणा या कथन कैसे कर सके? उल्टा ही करे।

तो कहते हैं '**संमत्तं**' **भव्य जीव ही सम्यग्दर्शन को सिद्ध...** अर्थात् प्रगट कर सकता है। साधन से सिद्ध कर सकते हैं। समझ में आया? और '**सुद्ध तत्त्व समाचरेत्**' कहते हैं, **उस सम्यक्त्वी को शुद्ध आत्मिक तत्त्व का आचरण (अनुभव) करनायोग्य है।** आचरण कहो या अनुभव कहो। आचरण समझते हो? सम्यग्दर्शन। आचरण दो प्रकार के हैं। इसमें है, भाई! देखो अपने है न शीलपाहुड में। शीलपाहुड में सम्यक्त्व आचरण और चारित्र आचरण (दो हैं)। बालचन्दभाई! ऐसा यहाँ है, देखो! यह पृष्ठ १४३। २६२ गाथा तुम्हारे। ज्ञानसमुच्चयसार पृष्ठ १४३। देखो, शीलपाहुड में कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने कहा है कि एक सम्यग्दर्शन का आचरण होता है और एक चारित्र का आचरण होता है। आचरण दो प्रकार के (होते हैं)। जड़ के आचरण की बात यहाँ नहीं है। जड़ की क्रिया, शरीर की क्रिया शरीर से होती है, अपने से नहीं। और अपने में अन्दर दया, दान भाव पुण्यादि व्रत का आता है, वह राग का आचरण है, मलिन

परिणाम शुभ पुण्यबन्ध का आचरण है। सम्यक् आचरण के दो प्रकार हैं। एक सम्यग्दर्शन का आचरण, एक सम्यक्चारित्र का आचरण। समझ में आया? सेठ! २६२ गाथा है।

न्यानं दंसन च सम्मं, सम भावना हवदि चारित्तं।
चरनंपि सुध चरनं, दुविहि चरनं मुनेयव्वा॥२६२॥

सेठ! है इसमें? '**दुविहि चरनं मुनेयव्वा**' अभी इसमें से भाई कोई ऐसा निकाले कि '**दुविहि चरनं**' तो व्यवहार-निश्चय है, कोई ऐसा निकाले। तो पीछे स्पष्ट है २६३ में। पहले २६२ सुनो। पश्चात् २६३ में स्पष्ट है। '**दुविहि**' कोई निश्चय-व्यवहार निकाले तो ऐसी बात यहाँ नहीं है, यहाँ दूसरी बात है। क्या कहते हैं, देखो!

'**न्यानं दंसन सम्मं,**' **सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक काल होते हैं।** अपना शुद्ध स्वरूप प्रकाशपुंज ज्ञानानन्द आनन्दकन्द प्रभु, उसके अन्तर में राग और निमित्त की रुचि छोड़कर अन्तर शुद्ध स्वभाव के अनुभव की प्रतीति होती है, उसके साथ दर्शन और ज्ञान दोनों उत्पन्न होते हैं। सम्यग्दर्शन के साथ। दीपक का प्रकाश हुआ तो वह दीपक और प्रकाश दोनों साथ में हैं। साथ में है या नहीं? या पहले प्रकाश और बाद में दीपक तथा पहले दीपक और बाद में प्रकाश? दीवो कहते हैं? क्या कहते हैं? दीपक-दीपक। दीपक, वह कारण और प्रकाश कार्य, परन्तु दोनों साथ में हैं। दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है, परन्तु दीपक और प्रकाश एकसाथ में होते हैं। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन कारण है, सम्यग्ज्ञान कार्य है। परन्तु एक समय में साथ में होते हैं। सेठी! क्या कहते हैं, देखो! **सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान... 'सम्मं'** देखो '**सम्मं**' शब्द पड़ा है न? '**सम्मं**' **एक साथ होते हैं।** पहले सम्यग्दर्शन होता है और पश्चात् सम्यग्ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। तो कहते हैं कि एक समकाल में होते हैं।

'**सम भावना चारित्तं हवदि**' **समभाव का होना चारित्र है।** समता (अर्थात्) पुण्य-पाप का विकल्प, पंच महाव्रत का राग, बारह व्रत के राग से रहित (सम परिणाम)। राग है, वह चारित्र नहीं। आहाहा! समझ में आया? बारह व्रत का विकल्प उठता है श्रावक को, सच्चे मुनि को अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उठता है, पंच महाव्रत का, वह राग है। वह वास्तविक चारित्र नहीं। वह पुण्यबन्ध का कारण है। वास्तविक,

सत्य चारित्र दो प्रकार का है। क्या? देखो! **समभाव का होना चारित्र है। वह चारित्र भी शुद्धात्मा में रमणरूप है।** शुद्ध भगवान आत्मा चिदानन्द, सच्चिदानन्द प्रभु, परमात्म वीतरागविज्ञानघन में रमण करना, वह चारित्र का स्वरूप है। कोई देह की क्रिया या पंच महाव्रत पालने का विकल्प, वह चारित्र है नहीं।

वह चारित्र भी शुद्धात्मा में रमणरूप है। उस चारित्र को दो प्रकार जानना चाहिए। उस चारित्र को भी भगवान ने, यहाँ तारणस्वामी ने चारित्र के दो प्रकार कहे हैं। क्या? देखो, **एक सम्यक्त्वचरण दूसरा संयमचरण।** सेठी! एक सम्यग्दर्शन का चारित्र। यह और क्या? अष्टपाहुड में बहुत आ गया है। यह तो आगम से यहाँ लिखा है। यह कुन्दकुन्दाचार्य शीलपाहुड में इस चारित्र के दो प्रकार लेकर बहुत लिया है। सम्यग्दर्शन चरण चारित्र और चारित्र-चारित्र, संयम चारित्र। राग और पुण्य नहीं। अन्तर में आत्मा आनन्द, उस चारित्र के दो प्रकार—एक सम्यक्त्वचरण, दूसरा संयमचरण। इसका अर्थ किया।

अब यह २६३ में इसका स्पष्टीकरण करते हैं। कोई ऐसा माने कि '**दुविहि चरनं मुनेयव्वा**' तो वहाँ दो प्रकार के अर्थात् एक व्यवहारचारित्र पंच महाव्रतादि और एक निश्चय स्वरूप की स्थिरता, ऐसा यहाँ कहा होगा, दूसरी जगह ऐसा कहा जाता है, परन्तु यहाँ ऐसा नहीं। यहाँ तो ऐसा कहा जाता है... यह ज्ञानसमुच्चयसार है तो ज्ञान में सम्यग्दर्शन प्रतीति ज्ञानमय मैं आत्मा हूँ। अकेला ज्ञानपुंज, ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ऐसा अन्तर में ज्ञान में एकाकार होकर सम्यक् प्रतीति करना, वह भी ज्ञान का सम्यग्दर्शन का आचरण है। और विशेष फिर स्वरूप में स्थिरता करना, वह चारित्र का आचरण है। दोनों निर्दोष और वीतरागी चारित्र है। उसमें राग के अंश की मिलावट नहीं। समझ में आया?

देखो, २६३ (गाथा)।

सम्मत्त चरन पढमं, संजम चरनं पि होइ दुतियं च।
सम्मत्त चरन सुधं, पच्छादो संजमं चरनं॥२६३॥

स्पष्टीकरण किया। '**सम्मत्त चरन पढमं**' सम्यक् आचरण पहले प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन के आचरण बिना तुझे चारित्र आचरण कभी होता नहीं। तेरे सब तप और

फप सब बिना एक के शून्य हैं। बिन्दी-बिन्दी शून्य कोरे कागज में। कोरा कागज समझते हो? कागज होता है कोरा, उसमें शून्य लिखे करोड़, अरब। एकड़ा नहीं। अंक नहीं, सब शून्य है। इसी प्रकार पहले '**पढमं सम्मत्त चरन**' पण्डितजी! क्या कहते हैं? पहले सम्यग्दर्शन आचरण आना चाहिए। पहले व्रत और तप, ऐसी क्रियाकाण्ड की दया, दान या वह आचरण पहले नहीं, पहले नहीं। और पश्चात् भी आते हैं, वह शुभराग है। अन्तर के चारित्र की निर्विकल्पता का संयम आचरण भिन्न प्रकार का है। क्या कहते हैं?

पहला सम्यक्त्वाचरण है। पहला, हों! पहला भी अपने कहा था कल कि पहले समकित का उपदेश करना। सम्यग्दर्शन का उपदेश करना, यह कल आया था। आया था न पहले? कल आया था न यह? क्या? उपदेश प्रथम। पृष्ठ ९९ में आया था। ९९ में आ गया पहले। कल आया था। '**प्रथमं उवएस संमत्तं,**' देखो, इसमें भी यह आया। १७५ गाथा। कल आया था।

प्रथमं उवएस संमत्तं, सुध सार्धं सदा बुधैः।
दर्सनं न्यान मयं सुधं, संमत्तं सास्वतं धुवं॥१७५॥

बुद्धिमानों को... 'बुधैः'—बुद्धिमान ज्ञानी को **सदा प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश करना चाहिए।** पहले तो सम्यग्दर्शन का उपदेश करना चाहिए। यह पहले व्रत करो और तप करो और ऐसा करो और वैसा करो। रत्नकरण्डश्रावकाचार में भी लोग कहते हैं न, देखो! उसमें बारह व्रत (लिखे हैं)। परन्तु पहले सम्यग्दर्शन लिखा है उसमें। सम्यग्दर्शन के आचरण बिना तेरे व्रत, रत्नकरण्डश्रावकाचार के बारह व्रत कहाँ से आये तुझे? रत्न कहाँ से आये? सम्यग्दर्शन रत्न बिना सम्यक्चारित्र रत्न आ गया? समझ में आया? आया था न? कल आया था यह। वह सब इसमें उतर गया है (रिकार्डिंग हो गयी है)। मुख्य गाथायें अच्छी-अच्छी लेते हैं। सार-सार लेते हैं न! सेठ की भावना है।

यह सम्यग्दर्शन आत्मा का शुद्ध स्वभाव है... सम्यग्दर्शन कोई दूसरी चीज़ नहीं है। अपने परमानन्द शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प विकार-विकल्प से रहित, राग से रहित, उसकी अन्तर में प्रतीति, श्रद्धा-अनुभव में ज्ञान करके प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन

शुद्ध आत्मा का स्वभाव है। **दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी निश्चल आत्मा का गुण सम्यग्दर्शन है।** देखो, **दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी...** आत्मा ऐसा लिया। क्या कहते हैं? '**दर्सनं न्यान मयं सुधं, संमत्तं सास्वतं धुवं।**' आत्मा कैसा है? वह तो ज्ञान और दर्शन अविनाशी विशुद्ध दर्शन-ज्ञान (स्वरूप है)। आता है न भाई पंचास्तिकाय में पीछे? कि विशुद्ध दर्शन ज्ञानमय आत्मा है। विशुद्ध दृष्टा-ज्ञानमय आत्मा है। समझ में आया? त्रिकाल विशुद्ध दर्शन और ज्ञानमय आत्मा है। उसकी अन्तर में प्रतीति करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? उसमें ऐसा नहीं कहा कि राग की प्रतीति नहीं करना। यह तो नास्ति से आ जाता है। क्या कहा, देखो! **दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी निश्चल आत्मा का गुण सम्यग्दर्शन है।** तो क्या कहा उसमें? अस्ति से बात ली है। अस्ति से लिया है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा अविनाशी शुद्ध स्वभावमय है। उसकी अन्तर में ज्ञान-अनुभव करके प्रतीति करना, वह आत्मा का स्वभाव है। तो उसमें ऐसा तो नहीं आया तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। ऐई! पण्डितजी! यह तत्त्वार्थश्रद्धान है न उमास्वामी का (सूत्र)? सात तत्त्व की श्रद्धा सम्यग्दर्शन। यहाँ तो आत्मा की श्रद्धा सम्यग्दर्शन कहा। तो क्या तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन झूठ है?

मुमुक्षु : उसमें भी यही कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भी यही कहा है और इसमें भी यही कहा है। यहाँ अस्ति से कहा है। अस्ति क्या? कि मैं विशुद्ध चैतन्य दर्शन-ज्ञानमय हूँ, ऐसी प्रतीति और भान हुआ तो जितने रागादि आस्रव, बन्ध का विकल्प रह जाता है, वह मुझमें नहीं, ऐसी उसमें श्रद्धा आ जाती है। समझ में आया? यहाँ तो अकेला कहा। तो कोई इसमें से दोष भी निकाले कि तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन कहा है शास्त्र में। तो ऐसा सम्यग्दर्शन का लक्षण कैसे बाँधा? सुन तो सही अब! यह तो आचार्यों ने सबमें ऐसा ही बाँधा है। समझ में आया? छठवीं गाथा में समयसार में (कहा कि),

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥(समयसार)

यह छठवीं गाथा है। अकेला ज्ञायकभाव पूर्ण स्वरूप दर्शन-ज्ञानमय अखण्ड

प्रभु, उसमें प्रमत्त-अप्रमत्त की दशा है, उसमें उसकी नास्ति है। भाई! वह प्रमत्त भाव विकल्प आदि यहाँ लेना है न! आस्रव-बन्ध। आस्रव-बन्ध की पर्याय उत्पन्न होती है, उसकी स्वभाव में नास्ति है। अकेला ज्ञायकभाव है, ऐसी प्रतीति जहाँ हुई तो आस्रव और बन्धभाव मुझमें नहीं, ऐसी प्रतीति उसमें आ गयी। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन कहो या आत्मा की यह श्रद्धा कहो, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? क्या है?

अविनाशी निश्चल आत्मा... दर्शन-ज्ञानमय भगवान आत्मा की श्रद्धा। भाई! शास्त्र में तो आता है न अजीव की श्रद्धा, पुण्य-पाप की श्रद्धा, आस्रव की श्रद्धा, बन्ध की श्रद्धा। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष—सात आते हैं। इसमें तो एक आया। प्रभु! यहाँ अस्ति से आया है। और तत्त्वार्थश्रद्धान में अस्ति-नास्ति दोनों से आया है। समझ में आया? लोगों को तत्त्व का क्या स्वभाव है, उसका बोध नहीं, समझ नहीं, सुनने को मिलता नहीं। अकेले क्रियाकाण्ड व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है। यह व्यवहार से होता है, ऐसा किसे घुस गया है? कि जिसे बाह्य निमित्त से अपनी पर्याय होती है, उसे व्यवहार से शुद्ध पर्याय होती है, ऐसा घुस गया है। दोनों एक ही बात है। समझ में आया?

यह देखो, उसमें आस्रव-बन्ध के परिणाम हैं सही विकल्प, परन्तु उससे यहाँ सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं। तो विकल्प निमित्त भी हुए, अपने में निमित्त हुए, ऐसा नहीं। यह तो अपनी श्रद्धा दर्शन-ज्ञानमयी (स्वरूप है), ऐसी प्रतीति की तो वर्तमान आस्रव के विकल्प को निमित्त कहा जाता है। वह भी निमित्त-उपादान की बात है। शोभालालजी! बड़ा झगड़ा उपादान-निमित्त का। नहीं, निमित्त बलवान है... निमित्त बलवान है। भगवान! ऐसा कहाँ से आया तुझे? निमित्त बलवान की श्रद्धावाला पर से अपनी पर्याय होती है, ऐसी मान्यतावाला मिथ्यादृष्टि है और व्यवहार बलवान है, ऐसा कोई कहे... समझ में आया? कषाय की मन्दता से क्रिया बलवान है तो निश्चय होगा। दोनों मिथ्यादृष्टि मूढ़ निमित्त से लाभ माननेवाला या व्यवहार से लाभ माननेवाला, दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म परन्तु, भाई! मूल तत्त्व वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा ने क्या कहा और वही बात सन्तों ने कही है। परन्तु लोगों को ख्याल में नहीं आती। व्यवहार की दृष्टि और निमित्त की दृष्टि, संयोग की दृष्टि, ऐई! एकान्त हो

गया, एकान्त हो गया। सुन तो सही! यह सम्यक् एकान्त है। सम्यक् एकान्त अर्थात् सम्यग्दर्शन का सम्यक् एकान्त है। कहा न उसमें? **दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी निश्चल आत्मा का गुण सम्यग्दर्शन है।** कहो, समझ में आया?

अब यहाँ अपने क्या आया? आचरण आया न? क्या आया? १४३। १४३ पृष्ठ पर चलता था। '**सम्मत्त चरन पढमं**' २६३ गाथा। २६२ पहली। देखो, आयी देखो! अब २६३। '**सम्मत्त चरन पढमं**' प्रथम उपदेश और प्रथम भाव सम्यक् चरण का पहले प्रगट होता है। पहले चारित्र प्रगट नहीं होता। संयम चारित्र पहले प्रगट नहीं होता। पहले '**सम्मत्त चरन पढमं**' देखो, समकित का भी आचरण कहा जाता है। दर्शनाचार नहीं? ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार। यह तो अभी पाँच आचार में तो व्यवहारवाला विकल्प भी लिया है। यहाँ वह नहीं। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन में नि:शंक, नि:कांक्ष आदि है व्यवहार, वह उसका व्यवहार आचरण है, वह यहाँ नहीं लिया।

यहाँ तो पहला सम्यक् आचरण है, वह अन्दर निर्विकल्प आत्मा की श्रद्धा में विशेष एकाग्र होकर अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर स्वरूपाचरण हुआ, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन का आचरण गिनने में आया है। बात में इतना अन्तर! भाई! यह समकित आचरण दो प्रकार का है। प्रवचनसार में लिया है। समकित आचरण, ज्ञान आचरण। वह विकल्प से लिया है, व्यवहार से लिया है और निश्चय आचरण अपना चैतन्यप्रभु ज्ञानप्रकाशमय... यह ज्ञानसमुच्चयसार है न? ज्ञान का समुच्चय सार। समुच्चय अर्थात् उसमें क्या कहना है? ज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा। आत्मा ज्ञान का पिण्ड, पुंज है, उसका सार, उसमें प्रथम सम्यग्दर्शन का आचरण प्रगट होना चाहिए। उसके बिना तेरा एक कदम भी धर्म में चलेगा नहीं। समझ में आया?

और '**संजम चरनं पि होइ दुतियं च**' देखो, है? **दूसरा संयमाचरण है...** देखो, '**दुतियं च संजम चरनं पि होइ**' **दूसरा संयमाचरण है...** पहले सम्यग्दर्शन का आचरण प्रगट हुआ। अपना स्वरूप परमानन्द... ज्ञान-ज्ञानसमुच्चयसार है न? तो समयसार कहो या ज्ञानसमुच्चयसार कहो। अकेले ज्ञानस्वरूप का सार। मैं अकेले ज्ञान का प्रकाशपुंज

हूँ, उसमें एकाकार होकर प्रतीति सम्यग्दर्शन की (हुई) अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर जो आचरण हुआ, वह सम्यग्दर्शन का आचरण चारित्र कहा जाता है। कहो, पण्डितजी! यह पढ़ा भी नहीं होगा तुमने कभी। यह हाँ करते हैं। पढ़ा हो तो भी यह समझ में आये, ऐसी बात नहीं।

मुमुक्षु : ऐसी बुद्धि नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं स्वीकार करते हैं कि ऐसा हमने पढ़ा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **दूसरा संयमाचरण है सम्यग्दर्शनाचार शुद्धात्मा में रमणरूप है...** सम्यग्दर्शन आचार। देखो, है न? '**सम्मत्त चरन सुधं,**' तीसरा पद। इसका स्पष्टीकरण करते हैं। '**सम्मत्त चरन पढमं, संजम चरनं पि होइ दुतियं च**' इतना स्पष्टीकरण किया, भाई! अब कहते हैं '**सम्मत्त चरन पढमं,**' अर्थात् क्या? कि '**सम्मत्त चरन सुधं,**' वापस कोई समकित-आचरण में निःशंक, निःकांक्षित आदि आठ आचार जो व्यवहार है, वे कोई ले लेवे, ऐसा यहाँ नहीं। समझ में आया? निःशंक, निःकांक्षित आदि आठ आचार है न समकित के? तो एक निश्चय आचार है और एक व्यवहार है। तो यहाँ निश्चय आचार की बात चलती है। समझ में आया या नहीं?

देव-गुरु-शास्त्र में शंका न करना, यह व्यवहार निःशंकता पुण्यबन्ध का कारण है। निःकांक्ष है (अर्थात्) अन्यमत की इच्छा न करना, वह पुण्यविकल्प पुण्यबन्ध का कारण है। यहाँ यह बात नहीं। यह आठ आचार जो व्यवहार के हैं, उनकी यहाँ बात नहीं लेना है। यहाँ तो निश्चय की बात सिद्ध करनी है। लोग कहते हैं न कि तारणस्वामी ने अकेला निश्चय-निश्चय कहा है, व्यवहार का लोप किया है। परन्तु व्यवहार के लोप हुए बिना निश्चय होता नहीं, सुन तो सही! समझ में आया? इन्द्रचन्द्रजी! बड़ी गड़बड़ करते हैं, बड़ी गड़बड़। यहाँ के नाम से बाहर बड़ी गड़बड़ चली है। वहाँ आगे तो निश्चय की बात है। निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार अर्थात् उपचार-आरोपित एक बात बीच में आती है। व्यवहार समकित का विकल्प, व्यवहार ज्ञान का शास्त्र पढ़ने के काल में... अभ्यास का विकल्प आता है। व्यवहारचारित्र, पंच महाव्रत का, श्रावक को बारह

व्रत का विकल्प आता है, परन्तु वे तीनों और वीर्याचार में भी परसन्मुख में राग की मन्दता में वीर्य की स्फुरणा होना और तपाचार जरा शुभभाव की क्रिया में (जुड़ना होता है), यह पाँचों आते हैं परन्तु है वह शुभराग। व्यवहार पंच आचार है शुभराग, पुण्यबन्ध का कारण है। वह वास्तव में समकित का आचरण नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पहले जो हमने समकित का आचरण कहा, वह क्या चीज़ है? कि '**सम्मत्त चरन सुधं,**' यह शब्द लिया। इसके लिये शुद्ध लिया है। **सम्यग्दर्शनाचार शुद्धात्मा में रमण रूप है...** वह आठ आचार समकित का व्यवहार, वह नहीं। समझ में आया? शब्द शब्द में शुद्धता भरी है, परन्तु उस शुद्धता का क्या अर्थ है, यह समझे नहीं तो गड़बड़ करते हैं। तो पहले स्पष्टीकरण करना पड़ा इसमें कि '**सम्मत्त चरन सुधं,**' सम्यग्दर्शन का आचरण, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र पढ़ना, ऐसा करना, वह भी एक समकित का आचरण है, ऐसा कोई कहे तो ऐसा नहीं है। वह निश्चय समकित का आचरण नहीं है। ...भाई! लो, यही सब दिक्कत करते हैं कि तुम तो व्यवहार को उड़ा देते हो। यह उड़ गया व्यवहार। देखो, क्या है व्यवहार? व्यवहार व्यवहार के घर में है। निश्चय घर में व्यवहार कैसा और व्यवहार घर में निश्चय कैसा? दोनों भिन्न वस्तु है। है, नहीं—ऐसा नहीं।

परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि '**सम्मत्त चरन सुधं, पच्छादो संजमं चरनं**' देखो, '**पच्छादो**' शब्द पड़ा है। **स्वरूपाचरण चारित्र के पीछे इन्द्रिय व मन के निरोध से संयमाचरण होता है।** पहले इन्द्रिय-मन का निरोध करे और आचरण हो जाये और सम्यग्दर्शन न हो, ऐसा तीन काल में भी होता नहीं। भाई! गाथा जरा देख-देखकर रखी थी। यहाँ आवे न थोड़ा तो हमारे ले जाना है थोड़ा। अभी चौथा कल ले जाना है। कल चौथा (प्रवचन) चलेगा। समझ में आया? आहाहा! '**पच्छादो संजमं**' **स्वरूपाचरण चारित्र के पीछे इन्द्रिय व मन के निरोध से संयमाचरण होता है।**

देखो, अब २६४। उसी और उसी में।

सम्मत्त चरन चरियं, दंसन न्यानेन सुध भावं च।
कम्ममल पयडिमुक्कं, अचिरेन लहंति निव्वानं॥२६४॥

क्या कहते हैं ? **सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानसहित शुद्धभावों के साथ जब सम्यक्त्वाचरण का अभ्यास किया जाता है,...** वह क्या चीज़ है ? कि '**सम्मत्त चरन सुधं**' यह शब्द लिया। इसके लिये शुद्ध लिया है कि सम्यग्दर्शन शुद्धात्मा में रमणरूप है। वह आठ आचार समकित का व्यवहार, वह नहीं। समझ में आया ? शब्द-शब्द में शुद्धता भरी है, परन्तु उस शुद्धता का क्या अर्थ है, यह समझे नहीं तो गड़बड़ करे। तो पहले स्पष्टीकरण करना पड़ा इन्हें कि '**सम्मत्त चरन सुधं**' यही सम्यग्दर्शन का आचरण, यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र वाँचना, ऐसा करना, वह भी एक समकित का आचरण है, ऐसा कोई कहे तो ऐसा नहीं है। वह निश्चय समकित का आचरण नहीं है। छगनभाई ! लो, यही सब विवाद करे न कि तुम तो व्यवहार को उड़ा देते हो। यह उड़ गया व्यवहार। देखो, क्या है व्यवहार ? व्यवहार व्यवहार के घर में है। निश्चय-घर में व्यवहार कैसा और व्यवहार-घर में निश्चय कैसा ? दोनों चीज़ भिन्न है। है, नहीं—ऐसा नहीं। परन्तु यहाँ तो कहते हैं '**सम्मत्त चरन सुधं**' '**पच्छादो संजमं चरनं**' देखो ! '**पच्छादो**' शब्द पड़ा है। **स्वरूपाचरण चारित्र के पीछे इन्द्रिय व मन के निरोध से संयमाचरण होता है।** पहले इन्द्रिय-मन का निरोध कर दे और आचरण हो जाये और सम्यग्दर्शन न हो, ऐसा तीन काल में होता नहीं। आज भाई गाथा जरा देख-देखकर रखी थी। यहाँ आवे न थोड़ा तो हमारे ले जाना है थोड़ा। अभी चौथा कल ले जाना है। कल चौथा चलेगा। समझ में आया ? आहाहा ! '**पच्छादो**' **स्वरूपाचरण चारित्र के पीछे इन्द्रिय व मन के निरोध से संयमाचरण होता है।**

देखो, अब २६४। उसमें नहीं।

सम्मत्त चरन चरियं, दंसन न्यानेन सुध भावं च।
कम्ममल पयडिमुक्कं, अचिरेन लहंति निव्वानं ॥२६४॥

क्या कहते हैं ? **सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानसहित शुद्ध भावों के साथ जब सम्यक्त्वाचरण का अभ्यास किया जाता है,...** देखो, '**सम्मत्त चरन चरियं**' सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अन्तर की दृष्टि से अन्तर का ज्ञान और **शुद्ध भावों के साथ...** यह शुद्ध चारित्र के साथ **सम्यक्त्वाचरण का अभ्यास किया जाता है,...** यह सम्यक् आचरण

परमात्मा अपना आत्मा, उसमें किया जाता है। परन्तु कैसा? शुद्ध अभ्यास किया जाता है। है न? शुद्ध शब्द पड़ा है। पहले शुद्ध आ गया है। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित शुद्धभावों के साथ। तब **'कम्ममल पयडि मुक्कं' कर्म प्रकृतियों का मल छूटता जाता है।** ऐसा सम्यक् आचरण... यह शैली भाई ली है न। समकित से आठ कर्म का नाश होता है। यह अष्टपाहुड़ में आया है, अष्टपाहुड़ में आया है। एक समकित के अन्दर पूर्ण परमात्मा की प्रतीति का घोलन करते-करते समकित के आचरण से, सम्यक्त्व से आठ कर्म का नाश हो जाता है, उसमें चारित्र आ जाता है। समझ में आया? यह सब शैली ली है।

सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान सहित शुद्ध भावों के साथ जब सम्यक्त्वाचरण का अभ्यास किया जाता है,... है न? **'दंसन न्यानेन सुध भावं च सम्मत्त चरन चरियं' 'सम्मत्त चरन चरियं'** उसका अन्तर में अभ्यास। **'कम्ममल पयडि मुक्कं' कर्म प्रकृतियों का मल छूटता जाता है। 'मुक्कं'** छूट जाता है, छोड़ना पड़ता नहीं। मैं आठ कर्म का नाश करूँ, ऐसी चीज़ है ही नहीं। परन्तु अपने शुद्ध स्वरूप के आचरण में रमता है तो आठ कर्म छूट जाते हैं। समझ में आया? देखो, तो कहते हैं कि **'कम्ममल पयडि मुक्कं' कर्म प्रकृतियों का मल छूटता जाता है।**

'अचिरेन लहंति निव्वानं' देखो, यह शब्द आया। **और यह जीव शीघ्र ही... 'अचिरेन'** अर्थात् शीघ्र। **'अचिरेन'** अर्थात् अल्प काल में **'लहंति निव्वानं' शीघ्र ही निर्वाण का लाभ प्राप्त करता है।** अल्प काल में मोक्ष की प्राप्ति का लाभ करता है। परन्तु यह शुद्ध आचरण करता है, उसे स्थिरता—चारित्र बीच में आता है और वह अल्प काल में निर्वाण को पाता है। निश्चित निर्वाण को पाता है। उसे केवलज्ञान होकर मुक्ति हो जायेगी। परन्तु यह शुद्ध आचरण करे तो। बीच में अशुद्ध विकल्प आता है और उसे ले लेवे और उसकी मदद लेकर निर्वाण होता है, ऐसा तीन काल में नहीं हो सकता। समझ में आया? लो, यह तीन गाथा बीच में आ गयी।

यहाँ अपने चलती है न ३१वीं? ३१वीं चलती है। यह **'सुद्ध तत्त्व समाचरेत्'** उसमें से आया। धर्मात्माओं को प्रथम सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ करना चाहिए। उसकी पहिचान करके, उसका ज्ञान करके, उसका बोध करके, उसके गुरुगम से यथार्थ

सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी पहिचान करके उसका प्रयत्न करना चाहिए। **'सुद्ध तत्त्व समाचरेत्' उस सम्यक्त्वी को शुद्ध आत्मिक तत्त्व का अनुभव करना योग्य है।** जो ऊपर कहा वह। यह तीन गाथा में कहा न। शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान ज्ञाता-दृष्टा वीतराग विज्ञानघन में आचरणमयी—यह आचरण करना। **शुद्ध आत्मिक तत्त्व का अनुभव करना योग्य है।**

'जस्य ति अर्थं न्यान संजुतं संमत्तं तिस्टंते' उसे **'ति अर्थं'** सम्यग्दर्शन-ज्ञान तीन पदार्थ साथ में होते हैं। समझ में आया? **उसी के रत्नत्रयमयी व ज्ञानसहित सम्यक्त्व तिष्ठता है।** ऐसा सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ करने से सम्यग्ज्ञान भी आ गया और स्वरूपाचरण आदि चारित्र भी साथ में आ गया। **'ति अर्थं न्यान संजुतं' सम्यक्त्व तिष्ठता है।** अपने सम्यग्दर्शन में तीनों भाव आ जाते हैं। निर्मल, शुद्ध। विकल्प और व्यवहार की यहाँ बात की ही नहीं। विमलचन्दजी! यह लोग कहते हैं न व्यवहार से निश्चय होता है। अब सुन तो सही! व्यवहार से क्या निश्चय होगा? व्यवहार है, चीज़ है अवश्य, जाननेयोग्य है, परन्तु आदरनेयोग्य नहीं। वह बन्ध का कारण है, आदरनेयोग्य नहीं। होता है। व्यवहारनय से कहा भी जाता है कि यह व्यवहारनय से शुभ का प्रवर्तन करता है, परन्तु आदरणीय मानकर स्वभाव का लाभ हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता।

३२। ३२वीं गाथा।

संमत्तं उत्पादते भावं, देव गुरु धर्म सुद्धंयं।
विन्यानं जेवि जानंते, समत्तं तस्य उच्यते॥३२॥

देखो! **'संमत्तं देव गुरु धर्म सुद्धंयं भावं उत्पादते'** क्या कहते हैं जरा? कोई कहता है कि हमारे तो अकेले देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करना। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करना बाहर पर। तेरी सम्यक्श्रद्धा में देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा आ जाती है। समझ में आया? देखो! **'देव-गुरु-धर्म संमत्तं देव गुरु धर्म सुद्धंयं भावं उत्पादते'** उसमें यह आ जाता है। **सम्यग्दर्शन शुद्ध देव गुरु धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कर देता है।** ऐसा कहा है। सम्यग्दर्शन शुद्ध देव-गुरु-धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कर देता है। परन्तु यहाँ परद्रव्य की श्रद्धा नहीं। अपना आत्मा ही देव पूर्ण है, अपना आत्मा ही अपना गुरु है और अपनी अहिंसक

राग और पुण्यरहित अपना स्वभाव, वही अपना धर्म है। समझ में आया? 'अहिंसा परमो धर्म' क्या? यह पर की दया पालने का भाव, वह अहिंसा नहीं। पर की दया पालने का भाव आता है, परन्तु उससे पर की दया पलती है, ऐसा नहीं। यह तो उसका आयुष्य हो तो बच जाये और आयुष्य न हो तो मर जाये। तेरा अधिकार है नहीं। समझ में आया? दूसरे को मैं बचाऊँ, यह तेरा अधिकार है? उसका आयुष्य हो तो बचेगा, और आयुष्य न हो तो मर जाये। कोई किसी को मार सकता है या तू किसी को बचा सकता है, ऐसा नहीं है। भाव आवे कि दूसरे न मर जायें, दुःख न हो, परन्तु वह भाव पुण्य है, पुण्य है। निश्चय में तो वह राग भी हिंसा है। अपने स्वरूप की हिंसा है। तो कहते हैं कि देव-गुरु-धर्म में सम्यग्दर्शन श्रद्धा उत्पन्न करता है।

यह आनन्दघनजी ने कहा है न भाई! 'देव गुरु धर्म की शुद्धि कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो।' क्योंकि देव-गुरु-धर्म ने तो शुद्ध सम्यग्दर्शन की बात और सम्यक् आचरण की बात की है। तो तुझे शुद्ध सम्यग्दर्शन बिना सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा कहाँ से आयेगी? हमारे देव सच्चे हैं, गुरु सच्चे हैं। परन्तु 'देव गुरु धर्म की शुद्धि कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो।' मैं ही आत्मा राग और पुण्य से रहित पर के अवलम्बन-आश्रय से रहित हूँ। ऐसी निज ज्ञान-श्रद्धा हुए बिना देव-गुरु-शास्त्र की इसे सच्ची श्रद्धा नहीं होती। समझ में आया? उसमें भी है न एक जगह है। ऐसा तो लिया है, देखो १४२ में लिया है। १४३ में आया था न वह? गुरुप्रसाद शब्द तो व्यवहार से आता है। यह तो व्यवहार डालना है न। १४२ आया न! १४३ में आया था न। देखो, १४२। २६१ गाथा। २६१।

न्यानं जिनेहि भनियं, रुवातीतं च वित्त लोयस्य।
न्यानं तिलोय सारं, नायव्वो गुरुपसाएन॥२६१॥

देखो, व्यवहार तो डाला है इसमें।

मुमुक्षु : यथार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यथार्थ व्यवहार।

देखो, '**नायव्वो गुरुपसाएन**' है? क्या कहते हैं देखो, '**न्यानं जिनेहि भनियं**'

ज्ञान का स्वभाव ही श्री जिनेन्द्र ने कहा है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ देवाधिदेव तीर्थंकर प्रभु ने ज्ञानस्वरूप स्वभाव क्या है, वह त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा है। है न पाठ में? '**जिनेहि भनियं**' '**जिनेहि भनियं**' पीछे। देव और गुरु दोनों डालना है न! देव भी डाले, गुरु भी डालना है। '**रुवातीतं च विक्त लोयस्य**' **वह अमूर्तिक है तथापि उनमें सब लोक प्रगट हैं।** क्या कहते हैं? दो बात। '**रुवातीत**' और '**विक्त लोयस्य**' दो अर्थ लिये। एक तो कैसा है भगवान अपना ज्ञानपुंज प्रभु जिनेन्द्र ने कहा ऐसा? कि उसमें रूप नहीं, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, विकल्प नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं, कोई है ही नहीं। ऐसे आत्मा का ज्ञान, वह रूपातीत है। है कैसा? यह तो नास्ति से पहले कहा। '**रुवातीतं**' भाई पहले कहीं आया था। '**विक्त लोयस्य**' परन्तु पूरे जगत को प्रगट करे, ऐसी आत्मा में सामर्थ्य है। अपने ज्ञान का भान होने से लोक क्या? छह द्रव्य क्या है, उसके ज्ञान में सब यथार्थ आ जाता है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को, केवलज्ञानी को लोकालोक का ज्ञान प्रत्यक्ष हो जाता है, परन्तु सम्यग्दृष्टि को श्रुतज्ञान में परोक्ष में सर्व द्रव्य क्या है, यह बात आ जाती है। सम्यग्दर्शन में, श्रुतज्ञान में। केवलज्ञान में तो लोकालोक प्रत्यक्ष होता है, परन्तु सम्यक् श्रुतज्ञान जहाँ भावश्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन के साथ हुआ तो कहते हैं कि देखो! **वह अमूर्तिक आत्मा है, तथापि उनमें सब लोक प्रगट हैं।** मूर्त और अमूर्त जगत की सर्व वस्तु अपने दर्शन के साथ ज्ञान हुआ उस ज्ञान में ख्याल में आती है कि जगत ऐसा है, मैं ऐसा हूँ। समझ में आया?

'**न्यानं तिलोय सारं**' **यह ज्ञान तीन लोक में सार है।** यह समुच्चयसार नाम है न। ज्ञानपुंज प्रभु आत्मा तीन लोक का सार है। चौदह पूर्व का सार यह आत्मा है। '**गुरुपसाएन नायव्वो**' लो! परन्तु **यह ज्ञान का स्वरूप श्री गुरु के प्रसाद से जाननेयोग्य है।** तेरी कल्पना करेगा तो समझेगा नहीं। यह व्यवहार आ गया। '**गुरुपसाएन**' गुरु तो पर है। देशनालब्धि उनके पास से मिलना चाहिए। सम्यग्ज्ञानी के पास से, गुरु के उपदेश से सम्यक् क्या चीज़, यह पहले मिलना चाहिए। अज्ञानी से सुनने से सम्यग्दर्शन की देशना हो, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया? कोई कहता है न कि भाई! अज्ञानी हो, परन्तु अपने को वह सच्चा उपदेश दे तो अपने को लाभ हो जायेगा। बिल्कुल झूठ है। सम्यग्ज्ञानी की देशना निमित्तरूप होती है, यह बतलाने के लिये '**गुरुपसाएन**' कहा है।

व्यवहार तो लिया, निमित्त तो लिया। '**गुरुपसाएन**' तो क्या गुरु प्रसाद से ज्ञान मिलता है? ज्ञान तो अपने प्रसाद से मिलता है। परन्तु गुरु ने कृपा करके शुद्ध उपदेश दिया। समझ में आया? यह समयसार में भी कुन्दकुन्दाचार्य पाँचवीं गाथा में कहते हैं कि हमारे गुरु ने हमको कृपा करके शुद्ध आत्मा का उपदेश दिया। अब वह तो स्वयं स्वतन्त्र है। परन्तु विनय से बहुमान करते हुए अपना भान हुआ तो कौन गुरु निमित्त थे (यह कहते हैं)। हमारे गुरु ने... कुन्दकुन्दाचार्य जैसे ऐसा कहते हैं। पाँचवीं गाथा में।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥ (समयसार)

यह पाँचवीं गाथा है। इसकी टीका में आचार्य कहते हैं। अहो! हमको सर्वज्ञ परम्परा से मिला। हमारे गुरु ने हमारे ऊपर अनुग्रह किया। क्या दूसरा कोई पदार्थ किसी के ऊपर अनुग्रह कर सकता है? अमरचन्दजी! यह टीका में आता है। यह निमित्त की बात है। जब हमारी पात्रता हुई, हमारी योग्यता हुई तो गुरु ने हमारे ऊपर कृपा की, ऐसा कहा जाता है। वरना तो समवसरण में अनन्त बार गया, अनन्त बार जैन साधु द्रव्यलिंगी हुआ, भावलिंगी सन्त के निकट। समझ में आया? भावलिंगी सन्त थे आत्मज्ञानी छठवें गुणस्थान में झूलनेवाले, छठवें-सातवें में, उनके निकट भी द्रव्यलिंगी साधु अनन्त बार हुआ है। और समवसरण में भी द्रव्यलिंग धारण करके अनन्त बार गया है। अपने चिदानन्दस्वरूप की उपादान की अपनी तैयारी बिना दूसरा निमित्त क्या करे? परन्तु जब अपनी तैयारी हो तो सच्चा निमित्त मिले बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? अपनी पात्रता अपने को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की होनेयोग्य हो तो सच्चे गुरु मिले बिना रहते नहीं। यह कहते हैं, देखो! है? क्या है? २६१।

'**नायव्वो गुरुपसाएन**' कहते हैं **यह ज्ञान का स्वरूप श्री गुरु के प्रसाद से जानने योग्य है।** समझ में आया? देखो, अन्दर में भी लिखा है थोड़ा। **यह आत्मज्ञान श्री गुरु आत्मज्ञानी की संगति से शीघ्र व ठीक-ठीक मिलता है।** वापस यह तो गड़बड़ भी करते हैं कहीं। और कोई मिथ्यादृष्टि की देशना भी लागू पड़े। अन्तिम उसके भावार्थ में है। २६१ का भावार्थ है। **यह आत्मज्ञान श्री गुरु आत्मज्ञानी की संगति से शीघ्र व**

ठीक-ठीक मिलता है। ऐसा। ठीक-ठीक मिलता है। कहो, समझ में आया? यह भी उसमें कर दे किसी का कुछ। मूल चीज़ क्या है? जब अपने दर्शन-ज्ञान की पात्रता हुई तो आचार्य कहते हैं... समझ में आया? तारणस्वामी कहते हैं, आचार्य भी ऐसा कहते थे कुन्दकुन्दाचार्य। हमारी पात्रता, ऐसा नहीं कहा, ऐसा नहीं कहा, हमारे ऊपर गुरु ने कृपा की। ओहो! समझ में आया? है न यह समयसार में है। है? पाँचवीं गाथा में है। देखो!

हमारे परम सर्वज्ञ परमगुरु **निर्मलविज्ञानघन जो आत्मा में अन्तर्निमग्न...** थे और फिर **अपरगुरु-गणधरादिक से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त उन्होंने प्रसादरूप दिया है...** प्रसाद शब्द से यहाँ '**गुरुपसाएन**' शब्द पड़ा है न? यहाँ पड़ा है न? यह शब्द वहाँ पड़ा है, टीका में पड़ा है। **उन्होंने प्रसादरूप दिया है...** भगवान गुरु ने हमको क्या प्रसादी दी? कि **शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश,...** (दिया)। यह टीका है। संस्कृत शब्द है। हमारे गुरु ने हमारे ऊपर कृपा की। क्या किया? कि हमको अनुग्रह (करके) पात्रता देखकर हमारे ऊपर कृपा की। क्या कहा? तू शुद्ध आत्मा परमानन्द मूर्ति है। संसार-फंसार तेरे स्वभाव में है ही नहीं। पुण्यबन्ध का कारण जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे, ऐसा भाव भी तेरे स्वभाव में है नहीं। ऐसे चैतन्य की प्रतीति, अनुभव करो और स्थिर होओ, ऐसा हमारे गुरु ने हमारे ऊपर कृपा करके ऐसा उपदेश दिया। समझ में आया? यह शब्द यहाँ पड़ा है। '**गुरुपसाएन**' उसमें टीका में पड़ा है। अमृतचन्द्राचार्य ने प्रसादेन कहा है। उसमें भी है, देखो न! यह अपने उसके पहले ही आ गया भाई यह। २६३। यह अपने वह आया था न? बस, एक गाथा रही उसमें कि '**दर्सनं न्यान मयं सुधं, संमत्तं**' यह वहाँ से शुरु किया था अपने। वहाँ से शुरु किया मैं कि गुरुप्रसाद से जानना। परन्तु क्या जानना? कि समकित का आचरण और चारित्र आचरण। पश्चात् गाथा ली है। पहली यह गाथा ली और पश्चात् यह गाथा ली। अपने पहले वंच गयी है। कहो, समझ में आया? ओहोहो! कितनी गाथा चलती है? ३१। ३१ चलती है न? अब ३२।

सम्यग्दर्शन शुद्ध देव-गुरु-धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कर देता है। अकेले बाह्य देव-गुरु-शास्त्र से अपने में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती, ऐसा कहते हैं। वहाँ गुरुप्रसाद से लेना, ऐसा व्यवहार से कहा। यहाँ कहा कि सम्यग्दर्शन प्रगट हो, तब सच्चे देव-गुरु-शास्त्र

की श्रद्धा तुझे होगी। '**जे विन्यानं वि जानंते तस्य समत्तं उच्यते' जो कोई भेदविज्ञान को समझता है।** क्या कहते हैं? जो कोई भेदविज्ञान को समझता है। '**विन्यानं वि जानंते**' विकल्प राग, दया, शरीर आदि से मेरी चीज़ भिन्न है। मेरा परमात्मा मुझमें परिपूर्ण स्वभाव से मैं भरपूर हूँ। मुझमें अपूर्णता नहीं, विकार नहीं, संयोग नहीं। ऐसा पर से भेदविज्ञान व्यवहार से भेदविज्ञान, देखो! व्यवहार का विकल्प आता है। उसमें गुरुप्रसाद कहा, परन्तु गुरुप्रसाद पर जब तक विकल्प था, गुरु ने मेहरबानी की, ऐसा विकल्प था उससे भिन्न पड़े, तब भेदविज्ञान होता है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि '**विन्यानं वि जानंते' जो कोई भेदविज्ञान को समझता है...** राग, निमित्त, संयोग, अशुद्धता से मेरी शुद्ध चीज़ अत्यन्त भिन्न है। अनादि ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु परमात्मा मैं ही पर से भिन्न हूँ, ऐसा भेदविज्ञान को समझता है, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया? अब देव-गुरु का विशेष कहेंगे ३३ में।

देव देवाधिदेवं च, देवं त्रिलोक वंदितं।
ति अर्थं समयं सुधं, सर्वन्यं पंच दीप्तयं॥३३॥

अब देव का स्वरूप कहते हैं। कैसे देव होना चाहिए? समझ में आया? सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताकर देव का स्वरूप बताते हैं। '**देव देवाधिदेवं च,' सच्चा देव देवों का देव अर्थात् इन्द्रादि देवों से पूजनीक है।** सौ इन्द्रों से पूजनीक। परमात्मा पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक स्व और पर सर्व को जानते हैं। ऐसे सर्वज्ञ होते हैं। सर्वज्ञ किसी चीज़ को करनेवाले, हरनेवाले, लूटनेवाले, रक्षण करनेवाले होते नहीं। सर्वज्ञ तो तीन काल को जाननेवाले होते हैं। किसी शिष्य को कुछ कर दे, कोई लाभ कर दे, ऐसा नहीं है। वह तो सर्वज्ञ तीन काल, तीन लोक अपने एक समय में (जाननेवाले हैं)। देखो, यह देव का स्वरूप।

मुमुक्षु : यह व्यवहार की बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, व्यवहार की बात आवे। दोनों की बात करते हैं न! यह व्यवहार है। ऐसे देव सम्यग्दर्शन की श्रद्धा में सच्चे देव की श्रद्धा आ जाती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी श्रद्धा न हो और सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा भी नहीं और

सम्यग्दर्शन होता है और ऐसे देव की श्रद्धा न हो, ऐसा भी नहीं है। अभी तो देव की खबर नहीं होती। अपने दर्शन की खबर नहीं होती। अभी तो विवाद।

क्या कहा? देखो, सर्वज्ञ बाद में लेंगे। **सच्चा देव देवों का देव अर्थात् इन्द्रादि देवों से पूजनीक है। तीन लोक के भक्तों द्वारा वन्दनीक है। 'त्रिलोक वंदितं देवं'** ठीक, यह तो बाहर की बात की। दो बातें तो बाहर की की हैं। कौन सी की? कि **इन्द्रादि देवों से पूजनीक है।** यह भी पुण्य की बात की और **तीन लोक के भक्तों द्वारा वन्दनीक है।** यह तो पर की बात से कहा। अब उसके अस्तित्व में क्या है? यह तो अतिशय की बात की। ... ज्ञान अतिशय की बात की। परन्तु है क्या अब वह?

तो कहते हैं कि **'ति अर्थं समयं सुधं'** देखो, **वह रत्नत्रयस्वरूप शुद्ध आत्मा है।** वह तो त्रिलोक से पूजनीक और सर्व से आदरणीय भक्तों से वन्दनीय, वह तो बाहर की बात की। परन्तु वह चीज़ सर्वज्ञ में क्या है? वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का पिण्ड, वह आत्मा है। समझ में आया? यह देव णमो अरिहंताणं का चलता है। उसकी खबर न हो कि अरिहन्त कौन? णमो अरिहंताणं। अब देखो चौथे पद में वास्तविक आता है।

वह रत्नत्रयस्वरूप शुद्ध आत्मा.... देवाधिदेव है। परन्तु हैं कैसे? **'सर्वन्यं पंच दीप्तयं' वह सर्वज्ञ है, पाँचवें केवलज्ञान की दीप्ति शोभित (सहित) है।** सर्वज्ञ हैं। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक अपने को ज्ञात होते हैं और जैसा सर्वज्ञ ने देखा, वैसा छहों द्रव्यों में ऐसा ही होता है। ऐसा नहीं... ऐसा नहीं... ऐसा नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ का निर्णय करने जाये तो तीन काल, तीन लोक को देखते हैं, तो जैसा ज्ञान ने देखा, वैसा पर में होगा। तो पुरुषार्थ में हमारा अधिकार कहाँ रहा? यह तो लोग गड़बड़ी करते हैं। समझ में आया? यह अभी वहाँ प्रश्न हुआ था। वहाँ भी यह हुआ था। सर्वज्ञ है या नहीं? कहा। सर्वज्ञ सर्वज्ञ की जाने। अरे! सर्वज्ञ सर्वज्ञ का जाने तो तेरे आत्मा में क्या आया? समझ में आया? परन्तु लोग न समझे। मूल चीज़ की खबर नहीं न! ऐसा का ऐसा करे। वह कहा था न? अभी किसी ने नहीं कहा था? मच्छर को हाथी बताया। यह भाई ने किसी ने दृष्टान्त नहीं दिया था?

मुमुक्षु : स्कूल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मैंने कहा था। परन्तु यहाँ दृष्टान्त दिया था न किसी ने?

मुमुक्षु : मोर का।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोर का? नहीं, दूसरा कुछ दिया था। दूसरा कोई दृष्टान्त दिया था। यह तो मच्छर का हमारा। यह तो यहाँ किसी ने दृष्टान्त दिया था। समाचारपत्र में कुछ आया था। जाने नहीं न कि यह कोई है, ऐसा मान ले। यह तो वहाँ स्कूल में उतरे थे। कैसा? कुवाडवा। वहाँ बालकों को समझाने के लिये एक मच्छर का चित्र चित्रित किया। तो मच्छर तो छोटा होता है न? बालक न समझे, इसलिए मच्छर का चित्र बड़ा लम्बा चार पैर करके बताया था। लम्बे पैर करके। शरीर छोटा। देखो, भाई! मच्छर इसे कहा जाता है। क्योंकि बालकों को उसके पैर में कहीं कहीं वांक है, कहाँ-कहाँ रोम है, यह दिखाने के लिये बड़े चार पैर चित्रित किये। उसे तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : उसका शरीर कितना लम्बा है...

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बा होता नहीं। यह तो बतलाने के लिये संक्षिप्त... मच्छर इतना यों ही होता है। उसमें गाँव में एक हाथी आया। तो बालक कहे, मास्टर साहेब! आपने जो चित्रित किया था, वह मच्छर आया। वह हम उतरे थे। वहाँ चित्र था। खबर नहीं कि मच्छर कौन और हाथी कौन? समझ में आया?

इसी प्रकर देव का सर्वज्ञ का क्या स्वरूप है? खबर नहीं। बस! वर्तमान में सब जानते हैं, सबसे अधिक हों, वे सर्वज्ञ। ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ वही कि **पाँचवें केवलज्ञान की दीप्ति सहित है।** केवलज्ञान जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक (में) हुआ, होता है, होगा, जिस द्रव्य की पर्याय भविष्य में होनेवाली है, वह आत्मा की या यह आत्मा इस भव में मोक्ष जानेवाला है, यह आत्मा इस भव में (सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा), यह सब भगवान के ज्ञान में झलका है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि वह सर्वज्ञ को जानने से क्या? अरे! सर्वज्ञ है, ऐसा तुझे निश्चय हो तो तुझे तेरे सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय होकर तुझे सम्यग्दर्शन हो जाये। उसमें पुरुषार्थ है। समझ में आया? सर्वज्ञ का निर्णय करने जाये तो फिर वह तो सोनगढ़ की बात सिद्ध हो जाती है। भाई! सोनगढ़ की कहाँ है? क्योंकि तीन काल, तीन लोक देखते हैं। तो

जहाँ जो पर्याय क्रमबद्ध... शोभालालजी! यह क्रमबद्ध होता है, वैसे होगा। क्योंकि भगवान ने देखा, वैसे एक के बाद एक पर्याय होगी। यह तो सोनगढ़ की बात है। सोनगढ़ की नहीं, आत्मा की बात है, सुन तो सही! समझ में आया? आहाहा! ... करते हैं।

देखो, क्या लिखा है? ३३ का अंक है देखो, ३३। दो तिगड़े हैं। ३३ गाथा है न? तो यहाँ सर्वज्ञ आये ३३ में। **वही सर्वज्ञ है, पाँचवें केवलज्ञान की दीप्ति...** ओहो! सर्वज्ञ परमात्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल, तीन लोक केवलज्ञान में देखते हैं कि ऐसा है। 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होशी वीरा, अनहोनी कबहु न होशे काहे होत अधीरा?' इसमें सम्यग्दर्शन आ गया। मैं ज्ञान हूँ, दृष्टा हूँ, आनन्द हूँ, मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। मैं सर्वज्ञ का निश्चय करनेवाला; मैं राग का करनेवाला नहीं, पर की अवस्था का कर्ता मैं नहीं। मैं तो सर्वज्ञ की प्रतीति करनेवाला, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ऐसा अपना पुरुषार्थ हुआ, यही मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ है। सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होगा। परन्तु यह सर्वज्ञ को तू मान तो सही कि सर्वज्ञ क्या है? माने बिना तुझे कहाँ से खबर पड़ी कि यह सर्वज्ञ है?

तो कहते हैं... समझ में आया? तारणस्वामी कहते हैं कि **वही सर्वज्ञ है, पाँचवें केवलज्ञान की दीप्ति सहित है।** उसे हम सर्वज्ञ कहते हैं। और ऐसी सर्वज्ञ की प्रतीति सम्यग्दृष्टि को ही होती है। मिथ्यादृष्टि को ऐसी प्रतीति नहीं होती।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक - २८-०९-१९६२
गाथा-३४ से ३६, ४४८, ५६५, ५६६, ८०७, ८०८, ८०९
प्रवचन-४

यह ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामी विरचित। इसमें सम्यग्दर्शन का अधिकार चलता है। सम्यग्दर्शन क्या है और उसका ध्येय क्या है ध्येय? अर्थात् कि सम्यग्दर्शन, वह तो अपनी सम्यक् श्रद्धा की एक निर्मल पर्याय है। सम्यग्दर्शन वह गुण नहीं। अपना आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो वस्तुपना, आत्मा वस्तु है, उसमें वस्तुपना अर्थात् अनन्त गुणनिधि, स्वभाव, उस स्वभाव का धारक आत्मा अकेला, पर संयोग की रुचि छोड़कर, शुभपरिणाम जो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग है, उसकी भी रुचि छोड़कर अन्तर स्वभाव सन्मुख में शुद्धता का भास होना, शुद्धता की प्रतीति होना, शुद्धता में आंशिक रमणता होना, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वरूपाचरणरूप धर्म है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! ३३ गाथा चली न! सम्यग्दर्शन का अधिकार चलता है। नौ गाथा चली। आज ३४वीं है।

उवं ऊर्ध सद्भावं, परमिस्टी च संजुतं।
सर्वन्यं सुध तत्त्वं च, विंदस्थाने नमस्कृतं॥३४॥

ॐकार मन्त्र पाँचों परमेष्ठी सहित है। ॐ शब्द जो है, उसमें अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पाँचों का वह ॐ शब्द वाचक है। वाचक अर्थात् बतलानेवाला। जैसे शक्कर शब्द है, वह शक्कर पदार्थ को बतलानेवाला है। शक्कर पदार्थ में शक्कर शब्द नहीं। शक्कर शब्द में शक्कर पदार्थ नहीं। परन्तु शक्कर ऐसा शब्द वह शक्कर की डली ऐसे पदार्थ को बतलाता है। बराबर है? इसी प्रकार ॐ शब्द। ॐ, वह अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। ॐ वचन है, वाक्य है, वाचक है। वह पंच परमेष्ठी आत्मस्वरूप है, उन्हें बताता है। समझ में आया? अरिहन्त कौन है? ३४ अतिशय पुण्यसहित (वे अरिहन्त नहीं)। अरिहन्त तो आत्मा की अन्दर पूर्ण पवित्र दशा है। कहते हैं, देखो। **ॐकार मन्त्र पाँचों परमेष्ठी सहित है।** यह शब्द आया। शब्द। है?

अब '**ऊर्ध सद्भावं**' यह भाव आया। वह वाचक आया, यह वाच्य आया। क्या

कहते हैं ? यह पाँचों ही परमेष्ठी ॐ शब्द में समाहित हो जाते हैं। ॐ के दो प्रकार हैं—एक अक्षररूप, एक स्वभावरूप। समझ में आया ? ॐ के दो प्रकार—एक अंक्षररूप, एक स्वभावरूप। तो ॐ अक्षर पंच परमेष्ठी को बतलानेवाला वाचक है और ॐ का भाव अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु की वीतरागी पूर्ण दशा, पाँचों ही पद की पूर्ण वीतरागी निर्विकल्पदशा। भले आचार्य उपाध्याय में थोड़ी हो, परन्तु वीतरागी विज्ञान और वीतरागी रमणतारूप दशा को पाँचों को बतलानेवाला ॐ शब्द है। समझ में आया ? ॐ, ॐ को बतलाता नहीं। वह तो ... है। परन्तु ॐ पाँच पद की पर्याय को बताता है।

तो कहते हैं कि **ॐकार मन्त्र पाँचों परमेष्ठी सहित है।** और **'ऊर्ध सद्भावं' उत्तम सत्यभाव को बतानेवाला है।** अकेले ॐ... ॐ... ॐ... करे उसमें कुछ नहीं होता। कुछ वळे नहीं, इसे क्या कहते हैं ? उसमें कुछ लाभ नहीं है। ॐ... ॐ... वह तो विकल्प है। ॐकार मन्त्र का शुभराग है। परन्तु ॐ का वाच्य स्वभाव भगवान अपना आत्मा पंच परमेष्ठी जो वीतरागी विज्ञानघनसहित है, ऐसा मेरा आत्मा भी पुण्य, पाप और शरीर आदि की क्रिया से रहित अकेला वीतराग विज्ञानघन से मैं भरपूर हूँ। ऐसा अपने आत्मा को, आत्मभाव को ॐ भाव कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : इतना अधिक कहाँ कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं, देखो। **उत्तम सत्यभाव को बतानेवाला है।** है इसमें या नहीं ? देखो, यह सब शब्द में से निकलता है।

ॐकार मन्त्र... पहले कहा न ? **'परमिस्टी च संजुतं' पाँचों परमेष्ठी....** अन्तर निर्मल पर्याय को बताता है। और उनके अतिशय और शरीर को बताता नहीं। अरिहन्त का शरीर परम औदारिक है, उसे नहीं बताता, वह तो जड़ है। सिद्ध का स्वरूप पूर्ण शुद्ध है, उसे बताता है। आचार्य के शरीर, वाणी, कर्म को वह नहीं बताता। अन्तर में वीतरागी विज्ञानघन शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, ज्ञान, रमणता हुई, उसे ॐ बताता है। समझ में आया ? ऐसे उपाध्याय। उपाध्याय। आत्मा बारह अंग तो भले पढ़े शास्त्रादि। वास्तविक

उपाध्याय तो उसे कहते हैं, ॐ बताता है। भगवान निर्मल परमानन्द की मूर्ति, उसमें उप अर्थात् समीप होकर ध्ययन अर्थात् ध्यान एकाग्रता हो, उसे वास्तव में उपाध्याय कहते हैं। समझ में आया? यह ॐ बताता है।

और साधु। साधु कोई अट्ठाईस मूलगुण पाले या नग्नदशा रहे, वह साधुपद नहीं। साधु अपने शुद्ध स्वभाव वस्तु है, उसमें लीन होते हैं। एकाकार निर्विकल्प सुधापान— अमृत आनन्द को पीना। अपने आत्मा में अमृत अतीन्द्रिय रस पड़ा है, उसे पीते हैं, आनन्द का अनुभव करते हैं, उसे साधु कहा जाता है। कहो, शोभालालजी! कभी सुना नहीं, समझे नहीं। जय भगवान! ॐ... ॐ करे और जाओ।

तो कहते हैं कि कैसा है भगवान? सत्य पदार्थ प्रभु आत्मा उत्पन्न भगवान वस्तु है वस्तु आत्मा। ऐसा कहते हैं। कहीं है एक जगह कहा है। ४४८ पृष्ठ है। लो! यही निकला। खोला वहाँ यह निकला। गाथा है ८०९ भाई! गाथा ८०९। क्या कहते हैं?

अस्ति चरन संजुत्तं, अस्ति सरुवेन सहाव निम्मलयं।
विगतं अविगत रुवं, चेयन संजुत्त निम्मलो सुधो॥८०९॥

छह गुण हैं न भाई! यह अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व। यह सामान्य छह गुण हैं। ये प्रत्येक पदार्थ में हैं। तो आत्मा में वस्तुत्वगुण का क्या स्वरूप है? समझ में आया? कहा न यहाँ? उत्तम सत्य भाव को बतलानेवाला है। उत्तम अन्दर स्वभाव है, उसे ॐ शब्द बतलानेवाला है। यदि जाने तो ॐ शब्द निमित्त कहा जाता है। वरना ॐ बतलानेवाला है या ॐ से ज्ञात हो जाये, ऐसा नहीं। तो कैसी वस्तु बताते हैं? कि वह जीव का वस्तुपना यह है। वस्तुपना। वस्तु आत्मा, वस्तुपना भाव। समझ में आया? आत्मा वस्तु है वस्तु। उसमें बसनेवाले गुण, इसलिए उसे वस्तु कहते हैं। यह वास्तु नहीं लेते? वास्तु नहीं कहते? नये मकान में प्रवेश करते हैं या नहीं? हमारे यहाँ उसे वास्तु कहते हैं। (गृह) प्रवेश। यहाँ वास्तु कहते हैं। वास्तु लो मकान में। तो वास्तु मकान है, उसमें वास्तु लेना है या मकान बिना अद्धर में कहीं आकाश में लेना है?

इसी प्रकार आत्मा अपनी वस्तु, अपने में वस्तुपनेसहित है। देखो, **जीव का**

वस्तुपना यह है कि यह लोक में बसता है... यह तो भाई ने लिया। '**भुवने**' देखो, '**वस्तुत्वं वसति भुवने**' वस्तु, ऐसा कहा। देखो, कितने ही कहते हैं या नहीं? सिद्ध अलोक में क्यों नहीं जाते? अरे! सुन तो सही। '**वस्तुत्वं वसति भुवने**' यह वस्तु ऐसी है कि लोक में बसती है। पहले बाहर की बात की। समझ में आया? यह कहते हैं या नहीं? सिद्ध क्यों नहीं जाते? धर्मास्तिकाय का अभाव है तो ऊपर नहीं जाते। सब झूठा है। वस्तु का वस्तुत्व लोक में रहने से वस्तुत्व है। लोक की चीज़ है तो लोक में ही रहती है। लोक्यंति इति लोकः। लोक में जिसे ज्ञान में आता है कि यह चीज़ है, उसे वस्तु कहते हैं। समझ में आया?

और अब भाव से लेते हैं। यह क्षेत्र से लिया। '**भुवने**' शब्द है न भाई! '**भुवने**' '**वस्तुत्वं वसति भुवने**' वस्तु उसे कहते हैं कि उसका वस्तुपना जगत में रहता है, बाह्य से। और '**वस्तुत्वं न्यान दंसन अनन्तो**' अब आया। भगवान आत्मा वस्तु है तो उसका वस्तुपना, भावपना क्या? **इसके भीतर अनन्त ज्ञान...** अपना आत्मा वस्तु है, उसमें अनन्त-अनन्त एक समय में बेहद ज्ञान (रहता है)। पूछते थे न सवेरे कि एक समय क्या? एक समय में अनन्तगुण साथ में रहते हैं, ऐसा कहते हैं न हर समय? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग का एक समय होता है सूक्ष्म। उसके दो भाग नहीं होते। उस काल के दो भाग नहीं होते। एक समय में भगवान आत्मा में अनन्त, दोपहर में जो शक्तियाँ चलती हैं, वह एक समय में अनन्त शक्तियाँ रहती हैं। समझ में आया? एक साथ अनन्त शक्तियाँ रहती है तो उसमें से थोड़ी बात करते हैं। उसका वस्तुपना अनन्त ज्ञान। बेहद अपरिमित शक्ति स्वभावरूप ज्ञान, वह वस्तु का वस्तुपना।

वस्तु का रागपना, पुण्यपना, विकार का व्यवहारपना, वह वस्तुपना नहीं। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, शुभाशुभभाव होते हैं, परन्तु वह शुभाशुभ वस्तु का वस्तुपना नहीं है। समझ में आया? वस्तु का वस्तुपना अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, ऐसे अनन्त आनन्द। यह बाद में लेंगे। ऐसे अनन्त वीर्य जिसमें बसता है। कहो, समझ में आया? वास्तु का समझे, इस वस्तु को नहीं। भाई! मकान बनाया दो लाख का। आज प्रवेश करना है। बुलाओ सगे-सम्बन्धियों को, परिवार को, गाँव के प्रमुख को बुलाओ। क्या है? वह तो धूल की बात है। धूल में प्रवेश किया। अपने आत्मा में तो प्रवेश किया नहीं।

वस्तु भगवान आत्मा में वस्तुपना बेहद चतुष्टय-चतुष्टय पड़े हैं। बेहद का अर्थ अपरिमित ज्ञान अन्तर में, अपरिमित दर्शन, अपरिमित आनन्द, अपरिमित वीर्य। समझ में आया? ऐसा-ऐसा अनन्त वस्तुपना अनन्त गुण पड़े हैं कि जिसमें बसे, उसे वस्तु कहते हैं। चन्दुभाई! कौन सी वस्तु? आत्मा की। आत्मा वस्तु है तो उस वस्तु में ऐसे अनन्त गुण बसते हैं। और उसमें बस्ती करना, रहना, अपनी श्रद्धा शुद्ध चैतन्यद्रव्य मैं हूँ, ऐसी श्रद्धा करके, स्व-संवेदनज्ञान से ज्ञान का वेदन करके, चारित्र स्वरूप में आनन्द का वेदन करके उसे द्रव्य-गुण में एकाकार होकर बसना, वह वस्तु में बसा है, रहा है—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? यह पुण्य और पाप विकल्प और शरीर में बसना, वह आत्मा का वस्तुपना है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! वस्तु अभी तो क्या है?

तो कहते हैं कि अनन्त चतुष्टय रहता है। देखो, पाठ है न। '**नंतानंत चतुस्टं**' अनन्त चतुष्टय भगवान आत्मा अन्तर में विराजमान अनन्त शक्तियाँ, अनन्त चतुष्टयसहित अनन्त शक्तियाँ हैं। '**वस्तुत्वं तिलोय निम्मलो सुधो**' **इसका वस्तुपना यह है कि तीन लोक में निर्मल शुद्ध पदार्थ है।** तीन लोक में अपना पवित्र स्वभाव वस्तु में रहता है। उसे वस्तुपना और उसे वस्तु कहते हैं। ऐसी वस्तु की जिसे अन्तर्दृष्टि होती है, उसे सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी वस्तु की दृष्टि बिना कभी पुण्य-पाप करो, दया, दान पाले, शरीर की क्रिया हो, उसमें सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? वह वस्तु का गुण लिया है न? **जीव में वस्तुत्व के रहने से ही वह संसार अवस्था से अशुद्ध कार्य को, मुक्तावस्था में शुद्ध आनन्द में मग्न रूप कार्य को करता है।** वस्तु का है न कार्य? तो संसार में अशुद्ध अवस्था, वह वास्तव में तो वस्तुत्वगुण का कार्य है ही नहीं। वास्तव में शुद्ध स्वभाव वस्तुत्व है, उसकी तो शुद्ध परिणति होना, वही उसकी परिणति है। विकार परिणति जो है, वह अज्ञानभाव से या वर्तमान पर्याय से हो, वह वास्तव में गुण की परिणति और गुण की पर्याय गिनने में आती ही नहीं। क्या विकार गुण की पर्याय है? गुण शुद्ध है। तो उसकी शुद्ध परिणति अन्दर में शुद्ध निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वही उसकी वास्तव में वस्तुपने की पर्याय है। कहो, सेठ! सेठी! क्या आया? वस्तु किसे कहते हैं? देखो, आया न!

मुमुक्षु : माल हो उसे वस्तु कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : माल को वस्तु कहते हैं। माल क्या है यहाँ? माल आत्मा है। क्या धूल माल है पैसा-बैसा? तम्बाकू और पैसा धूल माल है? धूल है धूल। धूल है, मिट्टी है, पुद्गल है, विष्टा का रूपान्तर है। विष्टा हो जाती है या नहीं? यह पुद्गल विष्टा हो जाती है। अच्छा-अच्छा भोजन करे परन्तु आठ घण्टे में विष्टा हो जाता है। क्या है? वह तो विष्टा की पर्याय है पुद्गल की, वह आत्मा नहीं।

भगवान आत्मा, कहते हैं कि **उत्तम सत्यभाव को बतानेवाला है।** अत्यन्त सत्य स्वभाव पड़ा है अन्दर में। अनन्त ज्ञानादि अनन्त शक्तियाँ वह ॐ शब्द बतलानेवाला है। यदि देखे तो बतलानेवाला है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? और **उसमें जो बिन्दु का स्थान है वह...** बिन्दु है न ॐ में बिन्दु, शून्य... शून्य। वह **नमस्कार के योग्य...** नमस्कार के योग्य सिद्धपद है। सिद्धपद जिसमें शून्य है। शून्य अर्थात् विकल्प और रागादि बिल्कुल नहीं। ३४वीं गाथा। समझ में आया? **'विंदस्थाने नमस्कृतं'** यह भगवान आत्मा सिद्ध समान शून्य है। शून्य का अर्थ? जिसमें विकार, शरीर का अभाव है और अकेले पूर्ण अनन्त गुण आदि का सद्भाव है। ऐसी शक्ति में दृष्टि करना, उसका ज्ञान करना, उसमें रमना, उसने पंच परमेष्ठी को पहिचाना। समझ में आया? उसने पंच परमेष्ठी को पहिचाना। उसने पंच परमेष्ठी की प्रतीति की। दूसरे पंच परमेष्ठी की प्रतीति की नहीं। यह पाँच परमेष्ठी हम मानते हैं, ऐसा नहीं। पंच परमेष्ठी तो अपना स्वरूप वीतराग निर्मल है, उसमें अन्तर दृष्टि करके प्रतीति, ज्ञान, रमणता करना, उसने पंच परमेष्ठी को पहिचाना। दूसरे पंच परमेष्ठी को पहिचानते नहीं। कहो, समझ में आया?

'सर्वन्यं सुध तत्त्वं च' कैसे हैं? यह भगवान सर्वज्ञ हैं। ॐ से वाचक अपना स्वरूप। सर्वज्ञ परमात्मा तो पर है, परन्तु अपना वाचक ॐ से सर्वज्ञ स्वभाव अपने में पड़ा है। सर्वज्ञ—एक समय में तीन काल, तीन लोक को राग के अवलम्बन बिना, निमित्त के आश्रय बिना अपने ज्ञान में जाननेवाला, ऐसा सर्वज्ञस्वभाव अपने में पड़ा है। ऐसा सर्वज्ञस्वभाव अरिहन्त-सिद्ध को प्रगट हो गया है। समझ में आया? तो ऐसे **सर्वज्ञ व शुद्ध परमात्मतत्त्व का प्रकाशक है।** सर्वज्ञ को भी ॐ प्रकाशित करता है और अपना

शुद्ध परमस्वरूप परमानन्द, उसे भी प्रकाशित करता है। दोनों को ॐ प्रकाशित करता है। **शुद्ध परमात्मतत्त्व का प्रकाशक है। वही देव को झलकानेवाला है।** सर्वज्ञ वीतराग मैं ही जिनेन्द्ररूप हूँ। मेरा ही स्वभाव समस्वभावी वीतराग विज्ञानघन है। वीतराग विज्ञानघन समस्वभावी मेरा है, ऐसी दृष्टि और ज्ञान में लेना, उसे ॐ बतलानेवाला है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बातें परन्तु यह। जाप करो भाई जाप। जाप करते हो या नहीं? अभी जाप करके आये या नहीं? किसका जाप? वह तो विकल्प है। शोभालालजी!

मुमुक्षु : कुछ न हो, उसकी अपेक्षा तो अच्छा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ न हो उसकी अपेक्षा अच्छा कहाँ है? वह तो शुभाशुभभाव तो अनन्त काल से चले आये हैं। उसमें कुछ नयी चीज़ नहीं है। अशुभभाव भी अनादि काल से चले आये हैं, शुभभाव भी अनन्त बार किये। नौवें ग्रैवेयक गया। जैन साधु दिगम्बर होकर, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये। आठ वर्ष में साधु हुआ, करोड़ पूर्व... साधुपद लिया। तो अनन्त बार प्रत्येक प्राणी ने लिया। तो ऐसे आठ वर्ष कम... करोड़ पूर्व-करोड़ पूर्व। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़ वर्ष चले जाते हैं। एक पूर्व में ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ वर्ष चले जाते हैं। ऐसे करोड़ पूर्व। इतनी बार दिगम्बर साधुपना अनन्त बार लिया। तो णमोकार कितने गिने होंगे? पण्डितजी! णमो अरिहंताणं। एक दिन का एक... यह तो साधु हुआ न द्रव्यलिंग? तो भी सवेरे-शाम प्रतिक्रमण करता है, सामायिक करता है। तो एक दिन में तो बहुत बार णमोकार गिनता है, बहुत बार ॐ जपता है एक दिन में। ऐसे-ऐसे ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व। ऐसे-ऐसे करोड़ पूर्व। कितने णमोकार गिने इसने?

मुमुक्षु : एक में भी माल नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक में भी माल नहीं। पुण्यबन्ध होता है। शुभराग से पुण्य बँधता है, वह आत्मा नहीं, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? जगत को भारी कठिन! होता है, निश्चय का अनुभव, सम्यक् आत्मा का भान हुआ। मैं निर्विकल्प शुद्ध हूँ, ऐसा अनुभव हुआ। पश्चात् ॐ आदि का स्मरण हो, वह विकल्प आता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। पुण्यबन्ध का कारण कहा जाता है, परन्तु वस्तु के भान बिना अकेले

ॐ... ॐ... जाप करे, उसमें उसका व्यवहार भी गिनने में नहीं आता। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। देखो! यह तारणस्वामी ऐसा कहते हैं। तुमको तो खबर भी नहीं। दरकार नहीं की न, भाई! वास्तव में तो इसने दरकार नहीं की। ऐसा अपना दोष लेना चाहिए न। अपनी तैयारी हो तो समझानेवाले मिले बिना रहे नहीं।

तो कहते हैं, देखो! तारणस्वामी इस सम्यग्दर्शन की ३४वीं गाथा में कहते हैं कि सर्वज्ञ को बतलानेवाले और शुद्ध आत्मतत्त्व को बतलानेवाला प्रकाश हो जाये। ॐ ध्वनि। दुंदुभि बजती है न, भगवान के समवसरण में साढ़े बारह करोड़ बाजे बजते हैं। सुना है न? साढ़े बारह करोड़ बाजे बजते हैं। वह तो बाहर है। अन्तर में ॐ ध्वनि भाव में निकला, वह अन्दर साढ़े बारह करोड़ ध्वनि की आवाज है। समझ में आया? समवसरण में एक साथ साढ़े बारह करोड़ ध्वनि उठती है। दुंदुभि। एकदम नगाड़ा। नगाड़ा कहते हैं न? नगारुं नहीं? नगारुं होता है न चमड़े का नहीं होता? नगारुं। नौबत-नौबत-नौबत। यह तो नौबत साधारण। वह तो देवताओं ने बनाया हुआ नौबत। साढ़े बारह करोड़ समवसरण में दुंदुभि बजती है। अरे जीवो! सुनना हो तो यहाँ आओ, ऐसे दुंदुभि में से आवाज निकलती है। अरे भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा समवसरण में सर्वज्ञ वीतराग विराजमान हैं। जीवो! तुम्हें कल्याण करना हो तो यहाँ आओ। ऐसी दुंदुभि बजती है। समझ में आया? तो यहाँ कहते हैं कि ॐ **सर्वज्ञ व शुद्ध परमात्मतत्त्व का प्रकाशक है।** यह ३४वीं गाथा हुई। ३५ (गाथा)।

परमिस्टी उत्पन्नं सुधं, सुध संमत्त संजुतं।
तस्यास्ति गु ण प्रोक्तं च, न्यानं सुध समं धुवं॥३५॥

क्या कहते हैं? **'परमिस्टी सुधं उत्पन्नं' अरहन्त, सिद्ध परमेष्ठी शुद्धभाव को पैदा कर चुके हैं।** अपने में शुद्धभाव जो पवित्र भाव जो अनादि का गुण में था, गुण में था, शक्ति में था। समझ में आया? दृष्टान्त दिया था न पहले छोटी पीपर का, नहीं? लींडीपीपर। छोटी पीपर होती है न? पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट पड़ी है। चरपराहट पीपर के दाने में। तुम्हारे चरपराई कहते हैं न? हमारे में तीखाश कहते हैं तीखाश। और हरा रंग पड़ा है उसमें पूरा हरा रंग पड़ा है। है तो पर्याय में प्रगट होता है। प्राप्त की प्राप्ति है। है उसमें से प्राप्ति होती है। बाहर से नहीं होती।

इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अन्दर में पूर्ण ज्ञान-आनन्द आदि पद पड़ा है। शुद्धभाव अन्दर में शक्तिरूप पड़ा है। जैसे पीपर में शक्तिरूप, सत्त्वरूप, गुणरूप, भावरूप चौंसठ पहरी चरपराई की सामर्थ्य पड़ी है। चौंसठ अर्थात् पूर्ण। इसी प्रकार भगवान आत्मा में पूर्ण अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन शुद्धभाव पड़ा है। **सिद्ध परमेष्ठी शुद्धभाव को पैदा कर चुके हैं।** ऐसी शुद्ध शक्ति प्रगट कर चुके हैं। अरिहन्त और सिद्ध। प्रत्येक पदार्थ आत्मा में शक्तिरूप है। उन्हें प्रगट हो गयी है।

'सुध संमत्त संजुतं' उनके शुद्ध सम्यग्दर्शन है। क्षायिक सम्यग्दर्शन परम अवगाढ़। अरिहन्त, केवली आदि, सिद्ध को परम अवगाढ़ शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया है। परमानन्द। असंख्य प्रदेश हैं, आत्मा असंख्य प्रदेशी है। प्रदेश-प्रदेश में अनन्त गुण व्याप्त हैं। समझ में आया? असंख्य प्रदेशी आत्मा है। प्रदेश समझते हो? प्रदेश है। एक अस्तित्व गुण है, वहाँ इतने में है। उसमें कहीं प्रदेशत्वगुण की व्याख्या तो की है, हों! यह ... है न ४४८? ... है उसमें, अस्तित्व में डाला है। अस्तित्व में डाला है। ४४८। यह देखो, अस्तित्व, इसके पहले। ८०७ और ८०८ गाथा। देखो।

अस्ति अस्तिति लोकं, वर दंसन न्यान चरन संजुत्तं।

यह अस्तित्वगुण की व्याख्या चलती है। अस्ति—होनापना, अपने में शुद्धभावरूप, अस्ति, पूर्णानन्द अनन्त गुण की अस्ति अपने में है, अस्तित्वगुण के साथ है। है? मिला है या नहीं ८०८?

अस्ति अस्तिति लोकं, वर दंसन न्यान चरन संजुत्तं।
दंसेइ तिहुवनग्गं, न्यानमयो न्यान ससरुवं॥८०८॥
अस्ति चरन संजुत्तं, अस्ति सरुवेन सहाव निम्मलयं।
विगतं अविगत रुवं, चेयन संजुत्त निम्मलो सुधो॥८०९॥

क्या कहते हैं? देखो! अस्तित्वगुण की व्याख्या करते हैं। हमारे मास्टर समझाते हैं। मास्टर! छह गुण समझाते हैं बालकों को। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व और प्रदेशत्व। छह गुण सर्व पदार्थ में है। किसी पदार्थ में नहीं, ऐसा नहीं। जितने (पदार्थ) हैं उन सबमें है। तो यह अस्तित्वगुण की आत्मा की व्याख्या तारणस्वामी

अध्यात्म से करते हैं। समझ में आया?

जीव द्रव्य है तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशों... देखो, आया। '**ति लोकं**' है न भाई! यह त्रिलोक शब्द में से निकाला है प्रदेश। '**अस्ति अस्तिति लोकं**' भगवान आत्मा अरिहन्त का, सिद्ध का और अपना। जीवद्रव्य तीन लोक प्रमाण। '**अस्ति अस्तिति लोकं**' ऐसा शब्द है न भाई! दो अस्ति। अर्थात् अस्तित्वगुण और प्रदेशगुण दोनों साथ में ले लिये। **तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशों का धारी है,...** भगवान जाने असंख्य प्रदेश किसे कहना? चुनीभाई! भगवान तो जानते ही हैं न! परन्तु तुमने जानने का प्रयत्न किया? क्या कहते हैं, देखो! तारणस्वामी छह गुण को अध्यात्म में उतारते हैं। अस्ति, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघु आदि। समझ में आया? अपने स्वभाव में प्रत्येक आत्मा में जीवद्रव्य तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेश का धारी है। यह प्रदेशत्वगुण उसमें है। प्रदेशगुण के कारण से नियत प्रदेशत्व यह ४७ शक्ति में आ गयी है। ४७ शक्ति में नियतप्रदेश। असंख्य प्रदेश निश्चय कायम आत्मा रखता है। एक परमाणु है, परमाणु है न रजकण छोटा। छोटा कण। उसका गज से माप करे एक, दो, तीन, चार, पाँच... तो असंख्य परमाणु के गज जितना आत्मा चौड़ा है। पहोळो क्या? चौड़ा। पहोळो समझते हो? लम्बा। यह कपड़ा है या नहीं देखो यह कपड़ा। यह कपड़ा कितना चौड़ा है, देखो! यह कपड़ा चौड़ा है या नहीं? इतना है। इसी प्रकार आत्मा, एक रजकण से माप करे परमाणु के गज से, ऐसा सर्वज्ञ ने माप करके बतलाया है। तो इतना एक रजकणरूपी गज है। गज होता है न वस्त्र को मापने का? यह २५ गज है, ५० गज है। तो आत्मा कितना है? कि एक परमाणु के गज से माप करे। एक परमाणु जितने में रहे उतने अंश को प्रदेश कहते हैं। इतना आत्मा असंख्य प्रदेश का एक समूह है। एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण पड़े हैं। भगवान जाने क्या है? समझ में आया? लड़के यह वाँचे तो याद रहता है, वरना नहीं रहता। ऐई! शोभालालजी! यह कहते थे कि लड़के तो कुछ सुनते ही नहीं, ऐसा कहते थे। लड़कियाँ तो बेचारी फुरसत में हों तो थोड़ा-थोड़ा वाँचे। हमारे अंग्रेजी पढ़ना है, हमारे यह करना है। परन्तु यह सुन तो सही थोड़ा। तुझे हित करना है या नहीं मनुष्यपने में?

तो कहते हैं, **असंख्यात प्रदेशों का धारी है...** और **निश्चय सम्यग्दर्शन... 'वर'**

है न? '**वर**'? '**वर**' अर्थात् निश्चय। '**वर**' अर्थात् उत्तम, निश्चय। व्यवहार समकित है, वह तो राग है, विकल्प है। वह भी थोड़ा कहेंगे। **निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान तथा निश्चय सम्यक्चारित्र सहित है,...** कौन? अपना आत्मा। अपना अन्तर स्वरूपसहित है। समझ में आया? '**तिहुवनग्गं दंसेइ**' **तीन भुवन के अन्त तक सर्वलोक को देखनेवाला है।** तीन भुवन लिये हैं, परन्तु वास्तव में तो तीन भुवन तो लोक को कहते हैं। परन्तु उसमें अध्याहार रह गया है। लोकालोक को देखनेवाला है, ऐसा कहना है, परन्तु शब्द में ऐसा आया कि **तीन भुवन के अन्त तक सर्वलोक को देखनेवाला है।** परन्तु सर्व लोक नहीं, परन्तु लोकालोक। लोक और अलोक को देखनेवाला शक्ति में, अपने स्वभाव में पड़ा है।

'**न्यानमयो न्यान ससरुवं**' **ज्ञानमयी है तथा ज्ञान ही जिसका अपना स्वरूप है...** ज्ञान ही अपना रूप है। ज्ञानपुंज अपना रूप है। जैसे शक्कर मिठासरूप है, सफेदरूप है, उसी प्रकार भगवान अकेला ज्ञानरूप है। उसके अस्तित्व को अस्तित्वगुण बताता है। समझ में आया? '**चरन संजुत्तं अस्ति**' **चारित्र अर्थात् वीतरागता सहित है।** स्वभाव उसका वीतरागता निर्विकल्प आनन्दसहित है और **यह जीव अपने स्वरूप से स्वभावमयी निर्मल शुद्ध अस्तित्व को रखनेवाला है।** देखो, **यह जीव अपने स्वरूप से...** है न? '**सरुवेन सहाव निम्मलयं अस्ति**' तारणस्वामी की अध्यात्म की ... की ऐसी शैली थी कि किसी भी बात में अध्यात्म उतार देते हैं। अध्यात्म के तरंग थे तरंग। यह आत्मा ऐसा है। अस्ति है इतना नहीं, परन्तु **यह जीव अपने स्वरूप से स्वभावमयी...** स्वभावमयी **निर्मल शुद्ध अस्तित्व को रखनेवाला है।** यह अस्तित्वगुण बताता है।

देखो, अब दो शब्द पड़े हैं। '**विगतं अविगत रुवं**' अस्ति-नास्ति करते हैं। क्या? कि **स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण के न होने से जीव अरूपी अर्थात् अमूर्तिक है...** अमूर्तिक है। **तथापि प्रदेशत्वगुण के रखने से प्रदेशी है, अर्थात् असंख्यात प्रदेशी है।** समझ में आया? असंख्यात प्रदेशी वस्तु। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श से रहित परन्तु असंख्य प्रदेश से सहित। समझ में आया? यह तुम्हारी पुस्तक में से बताते हैं। यह तारणस्वामी ऐसा कहते हैं। खबर नहीं। पुस्तक कभी देखी नहीं, वाँची नहीं, विचारते नहीं।

'चेयन संजुत्त निम्मलो सुधो' चेतनासहित परम शुद्ध निरंजन है। दो गुण बताये। अस्तित्व और प्रदेशत्व दो बताये। एक गुण में दो गुण बताये। अस्तित्व और प्रदेशत्व। छह गुण में से दो तो इसमें कह दिये और वस्तुत्वगुण की व्याख्या अपने अभी की। पश्चात् प्रमेयत्व आदि है। अप्रमेय लिया है परन्तु प्रमेय से है। और फिर अगुरुलघु है। समझ में आया? पश्चात् अमूर्त लिया। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि तेरा स्वभाव अनन्त गुण जो शुद्ध है, उसका अस्तित्व बताते हैं। कहो, समझ में आया? यहाँ आया है, ३५। ३५ आयी न?

उन्हीं के ही यथार्थ देवपने का गुण है... उनको यथार्थ देवपने की शक्ति की प्रगटता है। अपने में देवपने की शक्ति अन्दर में पड़ी है। जितना सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होता है, उतनी प्रगट होती है। बाकी पूर्ण आत्मा में पड़ी है। कहो, समझ में आया? **उन्हीं के ही यथार्थ देवपने का गुण है तथा उन्हीं के देवपना कहा भी गया है.. 'न्यानं सुध समं धुवं' उन्हीं के समता सहित अविनाशी शुद्धज्ञान है।** अर्थात् कि वीतरागी विज्ञानघन है, ऐसा कहना है। **'न्यानं सुध समं धुवं' 'समं'** अर्थात् वीतरागी अकषायपनेसहित ज्ञानानन्द आत्मा है, उसे परमात्मा कहते हैं। उसके अपने आत्मा को भी अपना परमात्मा कहा जाता है। ऐसी अन्तर में प्रतीति और ज्ञान करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। कहो, समझ में आया? .... याद आया वापस। यह व्यवहार सम्यग्दर्शन की व्याख्या की है। ३०८ पृष्ठ पर है। व्यवहार सम्यग्दृष्टि की व्याख्या की है। ३०८ न? ३०८। निर्मल पर्याय को ही व्यवहार समकित कहते हैं। ३०८ पृष्ठ। ५६५... ५६५ (गाथा)। देखो!

विवहारं संमत्तं, देव गुर सुध धम्म संजुत्तं।

देखो, यह व्यवहार समकित की व्याख्या।

दंसन न्यान चरित्तं, मल मुक्कं विवहार सम्मत्तं॥५६५॥

व्यवहार सम्यग्दर्शन यह है कि निर्दोष शुद्ध देव, गुरु तथा धर्म का श्रद्धान किया जावे... एक बात। देव-गुरु निर्दोष। देव अरिहन्त निर्दोष, निर्ग्रन्थ गुरु वीतरागी परिणति चारित्रवन्त। और धर्म अहिंसा—रागरहित आत्मा के स्वभाव की अहिंसक

परिणति अन्दर में रागरहित हो, ऐसे धर्म का श्रद्धान किया जाये, उसे व्यवहार समकित कहते हैं। वह कहते हैं न व्यवहार... व्यवहार। **दोषरहित शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमय भाव का अनुभव किया जावे, सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है।** पर्याय होती है न पर्याय? यह त्रिकाल द्रव्य है, त्रिकाल गुण है तो उसमें सम्यग्दर्शन पर्याय है तो इस अपेक्षा से पर्याय को व्यवहार (कहा है)। है तो निर्विकल्प श्रद्धा और अनुभव। आहाहा! समझ में आया?

यह तो बनारसीदास ने लिया है न परमार्थवचनिका में? मोक्षमार्ग साधन करना, यही व्यवहार है। अर्थात् कि वस्तु जो है त्रिकाल गुण द्रव्य और त्रिकाल एकरूप रहनेवाली, वह निश्चय है। उसके अन्तर में... व्यवहार बाँधते हैं लोग जो व्यवहार समकित और राग को, उससे रहित होकर होकर अपने शुद्ध स्वभाव की अन्दर निर्विकल्प श्रद्धा का अनुभव करना, श्रद्धा करना, उसका एक अंश देखकर त्रिकाल का एक अंश, उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। पण्डितजी! देखो इसमें पाठ है या नहीं?

'**विवहारं संमत्तं**' मूल पाठ है, देखो। '**देव गुर सुध धम्म संजुत्तं**' देखो '**देव गुर सुध धम्म संजुत्तं**' शुद्ध शब्द पड़ा है। '**दंसन न्यान चरित्तं**' दर्शन-ज्ञान चारित्रसहित अपना आत्मा। '**मल मुक्कं विवहार सम्मत्तं**' यह विकल्प जो है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का विकल्प, वह नहीं। यह तो कहते हैं कि जाओ, वह तो असद्भूत में गया। असद्भूतव्यवहार। यहाँ सद्भूतव्यवहार। सद्भूतव्यवहार को यहाँ निश्चय कहा है। अपनी पर्याय है। निश्चय सम्यग्दर्शन को यहाँ व्यवहार कहा है, पर्याय का भेद देखकर। थोड़ी सूक्ष्म बात है।

फिर से। हम एक बार नहीं लेते हैं। आत्मा है या नहीं वस्तु? तो उसमें वस्तु अनादि-अनन्त है और अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि चतुष्टय आदि से भरपूर अनन्त शक्ति का भण्डार परन्तु अनादि-अनन्त गुण है। उस गुण में से जो एक समय की पर्याय प्रगट होती है, वह भेद देखकर, भेद देखकर, उसे व्यवहार कहा जाता है। भेद देखकर। त्रिकाल अभेद है। क्या कहा? अभी भेद-अभेद भी सुना न हो। तम्बाकू का जत्था, वह

अभेद और छोड़ना, वह भेद। उसमें से छोड़ देना। हमारे शोभालालजी को (कहते हैं)। क्यों सेठ! जत्थाबन्द आता है पचास मण, सौ मण, पाँच सौ मण, वह अभेद और उसे छोड़ देना यह भेद, ऐसा है? क्या ऐसा है? देखो! इस दृष्टान्त में से सिद्धान्त निकालते है। अपना आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण का जत्था है उसमें। अनन्त शक्ति का एकरूप जत्था है, वह अभेद। और उसमें से सम्यग्दर्शन की पर्याय निर्मल, शुद्ध, निश्चय निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह तीन काल की अपेक्षा से एक समय का भेद हुआ, तो उस भेद को यहाँ व्यवहार समकित कहते हैं। समझ में आया? उस जत्था में से पर्याय निकालनी है। ... कहते हैं न तुम्हारे?

भगवान आत्मा, आहाहा! क्या कहते हैं, देखो! **व्यवहार सम्यग्दर्शन यह है कि निर्दोष शुद्ध देव, गुरु तथा धर्म का श्रद्धान किया जावे तथा दोषरहित शुद्ध सम्यग्दर्शन...** दोषरहित का अर्थ यह है कि निर्विकल्प। जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, उसकी बात यहाँ है ही नहीं। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह नहीं। अपना परमात्मा अनन्तगुण का पिण्ड प्रभु शुद्ध भण्डार पड़ा है, उसमें आत्मा का परिणाम अभिमुख करके उसकी प्रतीति, ज्ञान करना, वही निर्मल पर्याय, वीतरागी पर्याय को यहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन, अभेद में से भेद हुआ, इस अपेक्षा से व्यवहार कहा गया है। बनारसीदास की परमार्थ वचनिका में भी ऐसा लिखा है कि निश्चय आत्मद्रव्य, वह निश्चय है और मोक्षमार्ग शुद्ध निश्चय मोक्षमार्ग की पर्याय साधना, वह भी व्यवहार है। समझ में आया? क्या कहते हैं? इसमें कितना याद रहे? सेठ! एक घण्टे में तो बहुत बातें आती हैं। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है, वह नहीं। निर्विकल्प की अपेक्षा से भी त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से भेद पड़ा, इस अपेक्षा से। समझ में नहीं आया? सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह पर्याय की अपेक्षा से यहाँ निश्चय लेकर जानना है न भेद है। उसे तो अभेद हो गया। उसे तो है नहीं।

यहा तो शास्त्र में अपना आत्मा है शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें से केवलज्ञान हुआ न, केवलज्ञान ? केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, उसे भगवान कहते हैं कि सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। वह व्यवहारनय का विषय। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया ? पण्डितजी! केवलज्ञान, हों! केवलज्ञान, सर्वज्ञ ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य पूर्ण चतुष्टय प्रगट हो गये। भगवान शास्त्रकार कुन्दकुन्दाचार्य और पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि सुन तो सही! यह व्यवहारनय का विषय है, अनन्त ज्ञान प्रगट हुआ वह। क्योंकि वह त्रिकाल द्रव्य नहीं है।

मुमुक्षु : पर्याय पलटा करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पलटा करती है, वह दूसरी बात। यह तो है वह अंश है। वह त्रिकाल का एक अंश है। ओहोहो! यहाँ राग की बात नहीं। पुण्य का विकल्प देव-गुरु-शास्त्र की परसन्मुख होकर विकल्प की श्रद्धा, वह तो राग आया। उसे तो यहाँ व्यवहार कहते नहीं। वह असद्भूत झूठे व्यवहार में जाता है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपने अनन्त गुणसम्पन्न प्रभु की शुद्धता की सन्मुख होकर पर्याय निर्विकल्प वीतरागी सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से वीतरागी सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसे त्रिकाल द्रव्य और त्रिकाल गुण की अपेक्षा से अभेद में वह अंशरूप भेद हुआ, इस अपेक्षा से उसे व्यवहार समकित यहाँ तारणस्वामी कहते हैं। ऐसा नियमसार में भी कहा गया है और परमार्थ वचनिका में ऐसा कहा गया है।

मुमुक्षु : सद्भूत ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सद्भूत व्यवहार है। पर्याय उसकी है न ? समझ में आया ? यह एक जगह गाथा है कहीं। नय प्रमाण से समझे तो समझना। इसमें है कहीं। ... कितना ... किसी जगह है सही। ख्याल नहीं, हों! नय प्रमाण का नोट लिखा है। नय प्रमाण एक जगह है। कहीं है सही। गाथा श्लोक है, हों!

नय प्रमाण से ज्ञान करना चाहिए। तारणस्वामी कहते हैं। निश्चयनय से और प्रमाण से। निश्चयनय अर्थात् वास्तविक त्रिकाल क्या है, अशुद्ध पर्याय का ख्याल करना और प्रमाण—त्रिकाल द्रव्य और वर्तमान पर्याय का एक साथ ज्ञान करना, वह

प्रमाणज्ञान है। निश्चय से करना और प्रमाणज्ञान से वस्तु के स्वरूप की पहिचान करना। परन्तु कुछ गरज नहीं होती। गरज को क्या कहते हैं ? गरज कहते हैं ? हिन्दी में। चाहना है नहीं, अभिलाषा नहीं। क्या चीज़ है, मैं कौन हूँ ? सन्त क्या कहते हैं और मैं कितना समझा हूँ ? और मुझमें सम्यक्ता कितनी है ? खबर नहीं। ऐसा का ऐसा भेड़ प्रवाह। भेड़ चलते जाते हैं। गाडर समझते हो ? गाडर होती है न भेड़। भेड़-भेड़। एक भेड़ चले तो उसके कदम के पीछे सिर रखकर मुख देखकर चला जाये। पहली भेड़ कुँए में गिरे तो दूसरी भी कुँए में गिरे। भेड़ के स्वभाव की खबर है ? नीचे देखे। वह उसकी ... देखता जाये, दूसरे के पीछे तीसरा और तीसरे के पीछे चौथा। चलता ही जाये। परन्तु कहाँ जाता है ? काँटे के वाड़ा में जाता है या कुँए में, यह कुछ खबर नहीं। ऐसा अनादि 'अंधा अंध पलाय।' (अर्थात्) अन्धा चले और अन्धा दिखलानेवाला मिले। चार गति के खड्डे में चला जाये। समझ में आया ?

कहते हैं, अहो ! देखो यहाँ कहा न ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों दोषरहित हों निर्मल। तीनों निर्मल। इस **भाव का अनुभव किया जावे सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है।** क्योंकि त्रिकाल द्रव्य और गुण जो त्रिकाल एकरूप स्वभाव है, उसमें से शुद्ध अंश पर्याय निकाली, मोक्षमार्ग का शुद्ध अंश निकाला। निश्चयमोक्षमार्ग, हों ! व्यवहार नहीं। व्यवहार राग नहीं। राग की क्रिया, पुण्य की क्रिया, पंच महाव्रत की, वह तो यहाँ असद्भूत में गया। वह तो खोटा है। यहाँ तो शुद्ध निर्दोष निर्विकारी आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, उसे व्यवहार समकित गिनने में आया है। दूसरी गाथा। ५६६।

न्यानेन न्यान दिट्ठं, कुन्यानं मिच्छ असुह विरयंमि।
विरयं सुह असुहं च, विवहारं सुधमप्पानं॥५६६॥

इसकी दरकार नहीं की, हों ! पण्डितजी ! उलहाना तो बहुत देना पड़े, हों ! एक सेठ और पण्डित दोनों साथ में बैठे हैं। इतने-इतने वर्ष गये। .... क्या चीज़ है ? अपनी पुस्तक खोजना चाहिए या नहीं ? उसमें क्या है, यह देखना चाहिए या नहीं ? तारणस्वामी जंगल में रहकर, विकल्प उठने पर यह पुस्तक बन गयी है। समझ में आया ? ५०० वर्ष हुए। तो ५०० वर्ष में ... यह क्या कहते हैं, यह तो बस हमारे में है पुस्तक। परन्तु है क्या ? समझ में आया ?

ज्ञान के द्वारा ज्ञान का अनुभव करना... देखो! विकल्प द्वारा ज्ञान को जानना, यह तो व्यवहार ज्ञान भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? **'न्यानेन न्यान दिट्ठं' ज्ञान के द्वारा ज्ञान का अनुभव करना...** स्वसंवेदनज्ञान द्वारा ज्ञान का अनुभव करना, इसका नाम व्यवहारज्ञान। शास्त्र का अभ्यास, वह तो व्यवहार भी नहीं। वह तो असद्भूत व्यवहारज्ञान है। भारी कठिन! है तो सरल बात, परन्तु इसने यह मार्ग लिया नहीं। समझ में आया? मार्ग लिया नहीं तो मार्ग का पंथ कहाँ से कटे? लिया ही नहीं। जाना है पूर्व में और जाता है पश्चिम में। दूर होता जाता है। इस प्रकार अपनी चीज़ क्या है, (उसके भान बिना चलता जाता है)।

तो कहते हैं कि **ज्ञान के द्वारा ज्ञान का अनुभव करना...** और **मिथ्या ज्ञान, मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या आचरण से... 'मिच्छ'** है न? **'कुन्यानं मिच्छ असुह विरयंमि'** कुज्ञान, मिथ्याश्रद्धा और शुभाशुभ परिणाम, वह अशुद्ध है। उससे **विरक्त होना।** शुभाशुभ परिणाम से निवृत्त होना, मिथ्यात्व से विरक्त होना, कुज्ञान से विरक्त होना और अपने ज्ञान से ज्ञान का वेदन करना। **'विरयं सुह असुहं च'** देखो, विशेष कहा। **तथा शुभ-अशुभ, मन-वचन-काय की प्रवृत्ति से विरक्त होना...** शुभ और अशुभ दोनों, हों! अशुभभाव तो हिंसा आदि मिथ्या है, वह तो ठीक, परन्तु शुभभाव जो देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प आता है, उस शुभभाव से भी विरक्ति, अन्तर में उससे भी निवृत्ति। ऐसा **'सुधमप्पानं' शुद्ध आत्मा रूप हो जाना...** शुद्ध आत्मारूप हो जाना **व्यवहार सम्यग्दर्शन है।** पाठ में तो दोनों गाथा में व्यवहार-व्यवहार। यह जरा कठिन पड़ेगा, हों! बराबर पकड़ना समझकर। यह जरा सूक्ष्म बात है। वरना शास्त्र में व्यवहार समकित तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, छह द्रव्य की श्रद्धा, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, उसे व्यवहार कहते हैं। जो विकल्प का रूप है। जो शुभ विकल्परूप है। वह यह नहीं। समझ में आया? यह तो निश्चय सम्यक् पर्याय है, उसे भेद का अंश गिनकर व्यवहार कहा गया है। वरना गड़बड़ी हो जायेगी, हों! यह सब सेठिया इकट्ठे होकर यह सब समझने जैसा है। क्यों ... भाई! यह समझने की चीज़ है। सब सेठिया इकट्ठे होकर... यह पैसे की तो लगायी है अनन्त काल से। धूल में क्या है? पाँच-पच्चीस लाख आवे तो भी क्या और जाये तो भी क्या है? वे तो उसके कारण से आते और उसके कारण से जाते हैं। अपने

किसी प्रयत्न से आते हैं और प्रयत्न से रक्षा होती है, ऐसा तीन काल में होता नहीं। यह अपने प्रयत्न से रक्षा होती है और अपने उल्टे प्रयत्न से शान्ति का नाश होता है। समझ में आया?

शुद्ध आत्मा रूप हो जाना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। एक ही बात की है। यह व्यवहार की बात है न जरा? यह है। ३५ गाथा चलती है न! **यथार्थ देवपने का गुण है तथा उन्हीं के देवपना कहा भी गया है, उन्हीं के समता सहित अविनाशी शुद्धज्ञान है।** सर्वज्ञ परमात्मा को वीतराग शुद्ध अविनाशी ज्ञान है। अपने आत्मा में भी वीतरागज्ञानघन पड़ा है, वह अविनाशी ज्ञान है। उसके निर्विकल्प अभिमुख होकर, आत्मा के अभिमुख होकर, वस्तुपने में अभिमुख होकर, सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अनुभव करना, उसे सच्चे परमेष्ठी का अनुभव कहा जाता है। समझ में आया?

३६ (गाथा)।

पय कमले कदलं कदले पुलिनं जं जानुस्थितं।
पुलिने गगनं गगने कलसं तं ऊर्धगुनं॥
कलसे ससिनं ससिने भवनं तं पर्मपदं।
परमिस्टी पदं तं पंचदितं धुव केवलि उवनं॥३६॥

तीन बोल हैं। तीन पद की एक गाथा है। क्या कहते हैं? पाँच मिनिट रह गये। '**पय कमले कदलं**' क्या कहते हैं? **जैसे जल में कमल का पत्ता, जल से स्पर्श नहीं करता है... जल में कमल का पत्ता, जल से स्पर्श नहीं करता है...** ऐसे भगवान आत्मा राग, शरीर को स्पर्श नहीं करता। **जल में कमल का पत्ता, जल से स्पर्श नहीं करता है...** ऐसे भगवान अपना आत्मा शरीर और राग को स्पर्श नहीं करता, ऐसे आत्मा को यहाँ आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? और **कमल के पत्ते पर जल की बूँद है...** और कमल के पत्ते पर पानी की बूँद। वह बूँद कमल को स्पर्शी नहीं। कमल पानी को स्पर्शा नहीं, बूँद कमल को स्पर्शा नहीं। इसी प्रकार भगवान अपना आत्मा शरीर, इन्द्रिय को स्पर्शा नहीं। अभी। समझ में आया? यह तो कहाँ से कहाँ की बात हुई? सिद्ध की बात है? भाई! तू ही सिद्ध है, सुन तो सही। तू सिद्ध है। तूने (स्पर्शा) नहीं। कमल का पत्ता

पानी को स्पर्शा नहीं, पानी कमल के पत्र को स्पर्शा नहीं। इसी प्रकार तेरा आत्मा रागरूपी पानी को स्पर्शा नहीं। रागरूपी कमल पानी को स्पर्शा नहीं और पानी भी कमल को स्पर्शा नहीं।

'जानुस्थितं' जल की बूँद के भीतर आकाश है... देखो, तीसरा बोल। पानी में आकाश है। बूँद है न, वहाँ आकाश है। तो आकाश पानी को स्पर्शा नहीं। अन्दर आकाश पड़ा है तो पानी में आकाश है या नहीं? तो आकाश कहीं पानी की बूँद को स्पर्शता है? आहाहा! भगवान आत्मा आकाश समान, वह रागादि, शरीरादि को कभी स्पर्शा ही नहीं। ऐसा उसका निर्मलानन्द कन्द जिनेन्द्ररूप है उसका। यह तो दृष्टान्त समझ में नहीं आता? दृष्टान्त तो पढ़ो। देखो, और **घड़े में चन्द्रमा है...** देखो, पहले लिया। **जंघा पर रखा हुआ कलश आकाश में है...** जंघा के ऊपर कलश। तो कलश जंघा को स्पर्शा नहीं, कलश आकाश को स्पर्शा नहीं। समझ में आया?

'कलसे ससिनं' घड़े में चन्द्रमा है... यह चन्द्र और घड़ा दोनों भिन्न हैं। चन्द्रमा, चन्द्रमा में है; घड़े में घड़ा है। इसी प्रकार शरीर में शरीर है और आत्मा भिन्न है अभी तक। अभी भिन्न है, परन्तु भिन्न की प्रतीति और श्रद्धा की नहीं। **'ससिने भवनं' चन्द्रमा के विमान में भवन है...** चन्द्रमा के विमान में भवन है। भवन भिन्न है और चन्द्रमा का स्थान भिन्न है।

उसी तरह वह उत्कृष्ट गुण का धारी (भगवान) आत्मा... देखो, **'ऊर्धगुनं'** देखो, ऊर्ध्व स्वभावी भगवान अपना **आत्मा अपने शरीर में है, शरीर में रहकर भी शरीर से भिन्न है...** शरीर में दिखता है। परन्तु शरीर में एकमेक हुआ नहीं। ऐसा भगवान **यही उत्तम पद है।** यही भगवान अपना निजात्मा शुद्ध ज्ञानप्रकाश पुंज अपना पद है, वही परमेष्ठी पद है। अपना आत्मा ही परमेष्ठी पद है। बाहर कहाँ खोजने जाता है? समझ में आया?

यह कस्तूरी मृग है या नहीं? कस्तूरी बाहर खोजने जाता है। वह तेरी नाभि में पड़ी है। दुंटी कहते हैं? नाभि। नाभि में पड़ी है। तेरा परमात्मा तेरे अन्तर में पड़ा है, बाहर नहीं। **यही परमेष्ठी पद है, वही पाँच परमेष्ठी पद या पाँच ज्ञान प्रकाशित हैं।** यह केवलज्ञान का प्रकाश करनेवाला आत्मा ही है। अपना स्वरूप केवलज्ञान का प्रकाश

हो, ऐसा अपना स्वरूप है। **'ध्रुव केवलि उवनं' वही अविनाशी है, वही केवलज्ञान उत्पन्न होता है।** वहाँ आत्मद्रव्य में ही अपनी केवलज्ञान पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। केवलज्ञानी को प्रगट हुआ, वह स्वयं से हुआ है, अन्दर में से आया है। बाहर से कुछ आया नहीं। इसी प्रकार भगवान ध्रुव चिदानन्द मूर्ति जिसमें केवलज्ञान अन्दर शक्तिरूप पड़ा है सर्वज्ञभाव, उसकी अन्दर में केवलज्ञान की पर्याय अन्तर में से प्रगट होती है। राग से, पुण्य से, व्यवहार क्रिया से कभी केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता। ऐसी पंच परमेष्ठी की इसे यथार्थ श्रद्धा करनी चाहिए। कहते हैं कि केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हुआ? कहते हैं न लोग? संहनन से, वज्रकाय थी तो उत्पन्न हुआ। ... मिला तो उत्पन्न हुआ, उसका निषेध करते हैं। समझ में आया? कि नहीं, ऐसा नहीं। केवलज्ञान ऐसे उत्पन्न नहीं होता। अपने स्वभाव के अन्दर अन्तर एकाग्र हुआ, असाधारण स्वभाव जो पड़ा है, उसके ऊपर तैरने से केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई है। पर के कारण से, शरीर के संहनन से (प्रगट नहीं हुई)। संहनन समझते हो न संहनन? वज्रकाय कहते हैं न? वज्रकाय। वज्रकाय हो तो देखो, ऐसे बाहुबली बारह महीने रहे। कहते हैं, नहीं। क्या कहते हैं? वे तो अपने स्वभाव से रहे हैं। क्या वज्रकाय शरीर से रहे हैं? कौन कहता है? अपने अन्दर वज्र स्वरूप ध्रुव पड़ा है, उसका अवलम्बन करके पड़ा है तो अपने ध्रुव स्वभाव में से केवलज्ञान प्रगट—उत्पन्न होता है। शरीर और वज्रकाय से नहीं। यह ३६ गाथा हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १, शनिवार, दिनांक - २९-०९-१९६२
गाथा-५९, ६१, ४९, १८३, २९०, ३१३
प्रवचन-५

यह ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामी रचित। इसमें शुद्ध सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है, वह ५९ गाथा से चलता है। यह गाथा साधारण चली। देखो! क्या कहते हैं? ज्ञान का सार। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका सार क्या है, यह यहाँ तारणस्वामी वर्णन करते हैं। उसकी ५९वीं गाथा है।

सुधं च सर्व सुद्धं च, सर्वन्यं सास्वतं पदं।
सुधात्मा सुद्ध ध्यानस्थ, सुधं संमिक्दर्सनं॥५९॥

शुद्ध सर्व पदार्थों में शुद्ध एक सर्वज्ञ स्वरूप अविनाशी पद है। इस जगत में छह द्रव्य हैं। छह द्रव्य हैं? छह द्रव्य सुने हैं? अनन्त जीव, पुद्गल अनन्तगुने, असंख्य कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। इन छह द्रव्यों में '**सुधं च सर्व सुद्धं च**' **शुद्ध सर्व पदार्थों में शुद्ध एक सर्वज्ञस्वरूप अविनाशी पद है** अपना। जिसे निर्मल पर्याय हुई, वह तो शुद्ध है ही, परन्तु अपना स्वभाव सर्वज्ञ शुद्ध है, उसके ऊपर दृष्टि देकर प्रतीति सम्यग्दर्शन का अनुभव करना, इसका नाम शुद्ध सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं? **एक सर्वज्ञस्वरूप अविनाशी पद है।** नाश बिना का पद। अपना स्वरूप अविनाशी सर्वज्ञ है, उसका अनुभव करके सर्वज्ञपद पर्याय प्रगट हुई, वह भी अविनाशी है। वह सर्वज्ञपद कभी वापस नहीं पड़ता।

और **वही शुद्ध ध्यान का विषयभूत ध्येय शुद्धात्मा है।** देखो! वह शुद्ध ध्यान का विषय—लक्ष्य—ध्येय, वह शुद्धात्मा है। अपना पूर्ण सर्वज्ञस्वभावी भगवान, वही सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का ध्येय है। सम्यग्दर्शन, ऐसे शुद्ध आत्मा के अभिमुख परिणाम करके प्रतीति करता है, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? और **शुद्धात्मा का ध्यान ही शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन है।** देखो, उसे ही शुद्ध सम्यग्दर्शन निश्चय कहते हैं। यह ध्यान लिया है। ध्यान का अर्थ? अनादिकाल से पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत, भक्ति आदि विकल्प, उसमें एकाग्रता होना, वह तो

परसमय में एकाग्रता हुई, वह तो मिथ्यादृष्टिपना है। समझ में आया? शुभाशुभ परिणाम में एकाग्रता होना, वह तो मिथ्यादृष्टिपना है, परसमय है। उस शुभाशुभ परिणाम से रहित त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव की सर्वज्ञशक्तिरूप भगवान अपना आत्मा, उसके अन्तर्मुख अभिप्राय करके अनुभव में प्रतीति करना, इसका नाम तारणस्वामी उसे सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। देखो, यह वाडा को निकाल देते हैं। शोभालालजी! लो, यह ५९ गाथा हुई। समझ में आया?

इस परीक्षा के कल में बोल थे नहीं कुछ? परीक्षा थी न परीक्षा, क्या था? परीक्षा तो दूसरे में थी, उसमें नहीं होगी। श्रावकाचार गाथा ४९। पृष्ठ ५४। यह परीक्षा का बोल नहीं चला था रात्रि में? तो उसमें एक में दो आंटी मार दी सेठ ने। परसों सुनूँगा। ऐसा करके परसों का दिन निश्चित कर दिया। ५४ है न ५४। देखो, ४९ गाथा है। है? यह श्रावकाचार है, श्रावकाचार है। समझ में आया? उसमें ४९वीं गाथा है।

विन्यानं जेवि जानंते, अप्पा पर परषये।
परिचये अप्प सद्भावं, अंतर आत्मा परषये॥४९॥

क्या कहते हैं? **जो कोई... 'अप्पा पर' आत्मा और पर को परीक्षा करके (पहिचानता है।)** है? स्व-पर की परीक्षा करना। समझना नहीं, परीक्षा करना नहीं। सेठ! देखो, रात्रि में कहा था न? परीक्षा आयी। तो सेठ ने कहा कि परीक्षा परसों चलेगी। ऐसा करके परसों का दिन माँग लिया। ठीक है। समय आवे वह चूके? समझ में आया? कहते हैं कि भगवान आत्मा मैं कौन हूँ? ऐसी परीक्षा करनी चाहिए। ऐसे का ऐसा मिलता नहीं। शरीर, वाणी, मन से मैं पर, पुण्य-पाप के विकल्प शुभाशुभ से पर, अपना स्वरूप पूर्ण सर्वज्ञस्वभावी जो अभी कहा न यहाँ? यह ज्ञानसमुच्चयसार में। देखो! **'सर्वन्यं सास्वतं पदं'** मैं ही सर्वज्ञ शाश्वत् पद हूँ, ऐसी परीक्षा करनी चाहिए। पण्डितजी! ऐसा का ऐसा समझे बिना मान ले कि भगवान ने कहा वह सत्य। तुझे कहाँ सत्य आया? भगवान कहते हैं, सत्य ऐसे नहीं आता। परीक्षा करना चाहिए। सोना की परीक्षा नहीं करते? कसौटी लगाते हैं या नहीं? तम्बाकू की परीक्षा नहीं करते तुम? देखो, तम्बाकू अब दूसरा ऊँचा तम्बाकू पीकर आते हैं। ऐसी गन्ध मारता है उसमें। यह दूसरे

प्रकार की तम्बाकू है, ऐसा लगता है। अनुमान से भी ऐसा लगता है। तो अच्छे में अच्छी तम्बाकू पीते हैं या परीक्षा किये बिना पीते हैं? परीक्षा करके।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रावकाचार है यहाँ तारणस्वामी का। तारणस्वामी। एक-एक ग्रन्थ में से थोड़ी एक-दो गाथा (लेते हैं)। हमारे शोभालालजी ने प्रश्न किया था कि थोड़ा उपदेश शुद्धसार में से लेना। सवेरे कहा था। इन्होंने रात्रि में माँग की, यह सवेरे माँग करे। कहा, ठीक है। क्या कहते हैं, देखो!

जो कोई अपना आत्मा... देखो, यह तारणस्वामी श्रावकाचार की ४९ गाथा में है। अपना आत्मा क्या, उसकी अन्दर परीक्षा विचारधारा से करना और पर की परीक्षा करना। शरीर जड़ है, परवस्तु रागादि पर है, पुण्य-पाप वास्तव में आस्रव है, कर्म जड़ है, पर है—ऐसी बराबर परीक्षा करने से अपना और पर का सच्चा ज्ञान होता है। कहो, बराबर है? ...लालजी! परीक्षा किये बिना (मानना)? वाँचना नहीं, विचारना नहीं, सुनना नहीं और परीक्षा करना नहीं। भगवान कहे वह सच्चा। ऐसा नहीं चलता।

मुमुक्षु : समझ में नहीं आये तो क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : न समझ में आये ऐसा होता है? संसार की बात कैसे समझ में आती है? संसार की बात समझ में आती है या नहीं? रतनलालजी! यह तम्बाकू का व्यापार कैसे चले और चार लड़के क्या करते हैं, इसकी सब खबर नहीं? उसमें तो परीक्षा करते हैं, उसमें विचार करते हैं। यह परीक्षा नहीं करते। मैं आत्मा क्या हूँ ज्ञानस्वरूप। देखो! यह श्रावकाचार में भी यह लिया है। श्रावकों को पहले परीक्षा करनी चाहिए। समझ में आया? देव क्या? गुरु क्या? शास्त्र क्या? आत्मा की द्रव्य चीज़ क्या? शक्तियाँ क्या? पर्याय क्या? निर्मल कौन? विकार कौन?—इसकी बराबर परीक्षा करे तो स्व-पर का ज्ञान होता है। ऐसे पर की भी परीक्षा किये बिना सच्चा ज्ञान नहीं होता।

'विन्यानं' दोनों के विशेष ज्ञान को, भेदविज्ञान को... देखो, **विशेष सूक्ष्मता से जानना चाहिए।** लो! समझ में आया? **सूक्ष्मता से जानना चाहिए और आत्मा के**

सत्तारूप शुद्ध स्वभाव का, अपने शुद्ध स्वभाव की पहले परीक्षा करके परिचय पाता है। देखो! परिचय एक व्यक्ति का (करे) कि यह मनुष्य राजा है तो इसका परिचय करते हैं न? कि चलो, इसका परिचय करें तो इससे कुछ मिलेगा। वह तो पुण्य हो तो मिलता है। यहाँ पहले आत्मा की परीक्षा करना। आत्मा क्या है? यह आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... तो दोपहर में शक्ति का पिण्ड आत्मा (चलता है), उसका नाम आत्मा कहते हैं। ऐसी परीक्षा करके फिर परिचय पाता है। परिचय। **वही अन्तर आत्मा है, ऐसे पहिचानना चाहिए। 'परषये' 'परषये'** है न अन्तिम? समझ में आया? परीक्षा किये बिना मानना, वह सच्चा मानना होता नहीं। भगवान या सच्चे गुरु या सच्चे शास्त्र, ऐसा नहीं चलता। अपनी परीक्षा की कसौटी पर चढ़ाना चाहिए। अपने में उस कसौटी में (चढ़ावे)। सोना को चढ़ाते हैं या नहीं? ऐसी कसौटी करे कि यह पन्द्रहवान है, सोलहवान है, चौदहवान है। वलु कहते हैं न? क्या कहते हैं? इसी प्रकार भगवान आत्मा यह शुद्ध-शुद्ध कहते हैं तो क्या है? और मलिन तत्त्व रागादि क्या है? और जड़ कर्म, शरीर क्या है? सब **'परषये'** परीक्षा करने से उसका सम्यक् सच्चा दर्शन होता है। परीक्षा किये बिना सच्चा दर्शन होता नहीं। कहो, समझ में आया?

बहिरप्पा पुद्गलं दिस्टा, रचनं अनन्त भावना।
परपंचं जेन तिस्टंते, बहिरप्पा संसार स्थितं॥५०॥

बहिरात्मा पुद्गल को ही देखता है अनन्त भावों को रचता रहता है। क्या कहते हैं? देखो! यह श्रावकाचार की बात चलती है। श्रावक का सच्चा आचार। अज्ञानी राग, शरीर, स्त्री, पैसा और परिवार को देखकर आनन्द की रचना करता है, भावना करता है। उसमें मुझे आनन्द आयेगा। देखो, ५०वीं गाथा है। ५०वीं है न? **'बहिरप्पा पद्गलं दिस्टा, रचनं अनन्त भावना।'** पर में मुझे सुख है, शरीर में, स्त्री में, लक्ष्मी में, इज्जत में (सुख है)। देखो, श्रावक को कहते हैं, हों! यह श्रावक हुए पहले इसे ऐसा निर्णय करना चाहिए कि पर में आनन्द है ही नहीं। पुत्र-पुत्री और कर्म पैसे हुए पचास लाख, अस्सी लाख, करोड़पति। करोड़पति करोड़ तो धूल है, उसका पति है वह? लखपति। लखपति कहते हैं या नहीं? लाख रुपये का पति। जड़ का पति जड़ होता है। समयसार में कहा है कि सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है कि यदि शरीर, वाणी मेरी हो तो मैं उसका

स्वामी होऊँ और स्वामी होऊँ तब तो मैं जड़ हो जाऊँगा। तो ऐसा मुझमें है नहीं। विकार मेरी वस्तु नहीं, शरीर मेरी वस्तु नहीं। पर में आनन्द मानना, वह मेरी भ्रमणा है। ऐसा श्रावक सम्यग्दर्शन होने से पहले विचार करता है। समझ में आया? देखो! विषय, पैसे, इज्जत, मकान।

और **इस जड़ में मग्नता की भावना से जगत का प्रपंच बना रहता है।** जगत प्रपंच में (लगा हुआ रहता है)। बस, बनाओ, ऐसा बनाओ। पर में आनन्द मानता है। अपने आत्मा में आनन्द है, ऐसी परीक्षा तो की नहीं। अपनी परीक्षा की नहीं कि मेरा आनन्द मेरे पास है। मेरा आनन्द नहीं पुण्य-पाप में, मेरा आनन्द नहीं कर्म में, मेरा आनन्द नहीं लक्ष्मी या धूल में। लक्ष्मी अर्थात्? शोभालालजी! लक्ष्मी अर्थात् क्या? धूल। तुम्हारे मुख से कहना है। पैसेवाले के मुख से कहना है कि लक्ष्मी क्या है? वह धूल है। उसमें आनन्द नहीं। सेठी! है या नहीं? तब क्या है? '**संसार स्थितं**' संसार में उसकी स्थिति बढ़ जाती है। पर में आनन्द माननेवाले का संसार बढ़ जाता है तो उसका इसे विचार करना चाहिए। कहो, समझ में आया? इतनी बात यह हुई। क्या है? श्रावकाचार है न?

देखो, पुण्य का उत्साह। उसमें पृष्ठ १७४ है। १७४ है? पुण्य का उत्साह कहाँ है? गाथा में अन्तर है कुछ। पुण्य में उत्साह होना, यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है, ऐसा श्रावकाचार में कहा है। गाथा में अन्तर है कुछ। समझ में आया? और कहते हैं कि जो अपने अशुद्ध परिणाम होते हैं... देखो, उसमें लिखा है पृष्ठ १२२, गाथा ११६, गाथा ११६। क्या कहते हैं? गाथा ११६। क्या है देखो! श्रावकाचार, ११६ (गाथा)।

सुद्ध तत्वं न वेदंते, असुद्धं सुद्ध गीयते।
मद्यं ममत्त भावस्य, मद्य दोषं जथा बुधैः॥११६॥

यह मदिरा पीनेवाले हैं भाई! ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं? **जो कोई शुद्ध आत्म तत्त्व निर्मल नहीं जानते, नहीं अनुभव करते हैं किन्तु रागादि अशुद्ध आत्मा को शुद्ध है ऐसा गाता है, मानता है।** मैं पुण्यवन्त हूँ, मैं शुभ परिणाम हूँ, मेरे शुभ परिणाम मेरे हैं, ऐसा जो शुभ परिणाम में उत्साह करके गाता है, उसका गायन गाता है, प्रशंसा

करता है, शुभभाव की प्रशंसा करता है, **वह प्राणी मद्य के समान संसार में ममताभावरूप से वर्त रहा है, वह दारू पीते हैं।** मद्य जैसा दारू पीते हैं। शुभभाव... अपने गीत गाना, हमारे परिणाम, हमने शुभ ऐसा किया, हमने शुभ ऐसा किया। तो कहते हैं तू तो मद्य-दारू पीनेवाला है, पागल है। समझ में आया? ओहोहो! '**मद्य दोषं जथा बुधैः**' सर्वज्ञ परमात्मा ने उसे मद्य का दोष कहा है। कहो, समझ में आया? और फिर ११७।

जिन उक्तं सुद्ध तत्वार्थं, जेन सार्धं अव्रतं व्रति।
अन्यानी मिथ्या ममत्तस्य, मद्ये आरूढते सदा॥११७॥

व्रत रहित हो या व्रतधारी हो, जिनेन्द्र भगवान के कहे शुद्ध आत्मपदार्थ को नहीं साधन करते हैं... अन्तर निर्मलानन्द परमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान साधन नहीं करते तो वे ज्ञानरहित हैं और सदा ही मिथ्यात्व की ममतारूपी मद्य में आरूढ हैं। **मिथ्यारूपी श्रद्धा के मद्य में आरूढ़ हैं। उसको मद्यपानी कहने में आता है।** यह श्रावकाचार के अधिकार में चला है। समझ में आया? मद्य के पीनेवाले।

अब चलती है ६०वीं गाथा। ज्ञानसमुच्चयसार।

पूर्वं पूर्व परं जिनोक्त परमं, पूर्वं परं सास्वतं।
पूर्वं धर्मधुरा धरंति मुनयो, सुधं च सुधात्मनं॥
सुधं संमिक् दर्सनं च समयं, प्रोक्तं च पूर्वं जिनं।
न्यानं चरन समं सुयं च ममलं, संमिक्त वीर्जं बुधैः॥६०॥

६०वीं गाथा है। ज्ञानसमुच्चयसार। देखो, शब्दशः शब्द है या नहीं?

पूर्वं पूर्व परं जिनोक्त परमं, पूर्वं परं सास्वतं।
पूर्वं धर्मधुरा धरंति मुनयो, सुधं च सुधात्मनं॥
सुधं संमिक् दर्सनं च समयं, प्रोक्तं च पूर्वं जिनं।
न्यानं चरन समं सुयं च ममलं, संमिक्त वीर्जं बुधैः॥६०॥

अहो! **चौदह पूर्व जो जिनवाणी के भेद हैं....** चौदह पूर्व जो जिनवाणी के भेद हैं, वे '**पूर्व परं**' **अत्यन्त प्राचीन है।** अनादि काल से चले आते हैं। समझ में आया? चौदह पूर्व लिये हैं, देखो तारणस्वामी ने। यहाँ चौदह पूर्व अभी हैं नहीं। परन्तु लिया कि

चौदह पूर्व में क्या कहा है? चौदह पूर्व है न? उसमें क्या कहा है? कि **चौदह पूर्व जो जिनवाणी के भेद हैं अत्यन्त प्राचीन है। 'पूर्व परं' 'पूर्व परं'** अनादि से चले आते हैं। और **जिन भगवान के कहे हुए हैं... 'जिनोक्त'** जिन वीतराग त्रिलोकनाथ की वाणी में आया है।

'परमं पूर्वं परं सास्वतं' ये उत्कृष्ट परम अविनाशी हैं... 'परमं पूर्वं परं सास्वतं' अविनाशी है। त्रिकाल चला आता है ऐसा। और **'सुधं च सुधात्मनं धरंति मुनयो पूर्वं' मुनिगण पूर्वों के ज्ञानरूपी धर्म की धुरा के रूप में निर्मल शुद्धात्मा को धारण कर लेते हैं...** देखो, **मुनिगण पूर्वों के ज्ञानरूपी धर्म की धुरा के रूप में निर्मल शुद्धात्मा को धारण कर लेते हैं...** चौदह पूर्व में से निकालकर अकेला शुद्धात्मा धारण कर लेते हैं। चौदह पूर्व में शुद्धात्मा का कथन करके वीतरागी दृष्टि और अनुभव कराया है। समझ में आया? वाँचते नहीं। पण्डितजी! पण्डित व्यवस्थित वाँचते नहीं, हों! नहीं वाँचते तो फिर क्या? रोटियाँ खाना है? पुत्र-पुत्री और रोटी, यह तो सब अनादि काल से चला आता है।

क्या कहते हैं, देखो, अहो! भगवान के मुख में चौदह पूर्व जो निकले अनादि काल से चले आते हुए, उसमें से मुनि क्या निकालते हैं? कि **पूर्वों के ज्ञानरूपी धर्म की धुरा के रूप में निर्मल शुद्धात्मा को धारण कर लेते हैं...** मैं त्रिकाल शुद्ध परमानन्द सर्वज्ञपद, ऊपर आया न? **'सर्वन्यं सास्वतं पदं'** मैं ही सर्वज्ञ शाश्वत् पद हूँ, ऐसा चौदह पूर्व में से निकालते हैं। समझ में आया? और **शुद्धंसम्यग्दर्शनं—शुद्ध व निश्चय सम्यग्दर्शन है...** इसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन, सच्चा दर्शन कहते हैं। **यही आत्मा है...** और उसे ही हम आत्मा **'समयं'** है न समय? समयसार अर्थात् समय। उसे समयसार कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा राग और पुण्य से रहित अनन्त शक्ति का एकरूप प्रभु, ऐसी शुद्धात्मा की दृष्टि करके अनुभव करना, वही समय अर्थात् आत्मा और उसका नाम समयसार। समझ में आया?

'पूर्वं जिनं प्रोक्तं च' प्राचीन काल से ही जिनेन्द्रों ने ऐसा कहा है। हम अभी कहते नहीं। प्राचीन अनन्त काल से तीर्थंकर ऐसा कहते आये हैं। कहते आये हैं अनन्त

काल से। चौदह पूर्व का सार भगवान आत्मा परमानन्द शुद्ध, अशुद्ध—पुण्य-पाप से रहित, उसका अनुभव करो, यह प्राचीन काल से चला आता है। समझ में आया? **'न्यानं चरन समं' ज्ञान और चारित्र के साथ... 'सुयं च ममलं' स्वयं ही आत्मा निर्मल है। यही आत्मज्ञान सम्यग्दर्शन का बीज है।** यही आत्मज्ञान सम्यक् निश्चय का बीज है और **'बुधैः' विचारवानों के द्वारा यही जाननेयोग्य है।** ज्ञानियों, धर्मियों, विज्ञानियों, विचिक्षणों को यही जाननेयोग्य है, तो उसे सम्यग्दर्शन होगा, नहीं तो सम्यग्दर्शन होगा नहीं। कहो, समझ में आया? उसमें भी बहुत लिया है न? स्वाध्याय लिया है न? स्वाध्याय, सामायिक में लिया है। सामायिक है। पृष्ठ १७३। देखो! क्या कहते हैं, देखो! सामायिक। ३१३ श्लोक, ३१३ श्लोक। देखो, सामायिक इसे कहते हैं। यह ज्ञानसमुच्चयसार, इसमें से निकालकर तुमको देते हैं कि देखो! इसमें ऐसा कहा है।

सामाइयं च उत्तं, अप्पा परमप्पा सम्म संजुत्तं।
समय ति अर्थं सुधं, समतं सामाइयं जाने॥३१३॥

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव सामायिक किसे कहते हैं, यह तारणस्वामी ३१३ श्लोक में कहते हैं। **सामायिक प्रतिमा को कहते हैं जो सम्यग्दर्शनसहित हो...** पहले तो आत्मा का अनुभव होता है कि मैं रागरहित शुद्ध चिदानन्द हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन हो। **आत्मा को परमात्मा रूप जाने...** देखो, दूसरा पद है न? **'अप्पा परमप्पा' आत्मा को परमात्मा रूप जाने...** शोभालालजी! यह सामायिक की, सामायिक की लोगों ने, जाओ। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... सामायिक की। अरे भगवान! सामायिक क्या है, तुझे खबर भी नहीं। समझ में आया? यह सब सामायिक-सामायिक करते हैं न? भगवानजीभाई! सामायिक की, इतनी सामायिक की। अरे भगवान! सामायिक तो पहले आत्मा शुद्ध चैतन्य का दृष्टि में अनुभव होना चाहिए। निश्चय सम्यग्दर्शन है और फिर... समझ में आया?

आत्मा को परमात्मा रूप जाने... मैं ही परमस्वरूप आत्मा परमात्मा हूँ। **शुद्ध आत्मा को समतारूप करे... 'सुध अर्थं समय ति' शुद्ध आत्मा को समतारूप करे...** और **'समतं सामाइयं जाने' साम्यभाव को सामायिक जानो।** ऐसी अन्तर वीतराग

परिणति प्रगट हो, उसे भगवान सामायिक कहते हैं। दूसरे को सामायिक कहते नहीं। शोभालालजी! यह सेठिया होकर वाँचा ही नहीं कभी। सुना नहीं, वाँचा नहीं। देखो, णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... सामायिक कर ली। शुभराग किया। असामायिक है। ऐई! रतनलालजी! असामायिक है।

देखो, क्या कहते हैं देखो, फिर।

ति अर्थं सुध सुधं, सम सामाइयं च संसुधं।
परिनै सुध ति अर्थं, परिनामं सुध समय सुधं च॥३१४॥

जहाँ रत्नत्रय धर्म का निश्चयनय से शुद्ध विचार हो... भगवान अपना आत्मा परमानन्द शुद्ध ज्ञानपुंज है, ऐसी दृष्टि, ज्ञान और रमणता का जहाँ विचार चलता हो। समझ में आया? उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा! लोग तो कुछ न कुछ मानकर चढ़ गये हैं। ....लालजी! **जहाँ रत्नत्रय धर्म का निश्चयनय से शुद्ध विचार हो, जहाँ समताभाव हो वही शुद्ध सामायिक है।** पुण्य-पाप के दोनों विकल्प में समभाव है। पुण्य अच्छा और पाप बुरा, ऐसा है ही नहीं। शुभराग अच्छा और अशुभराग बुरा, ऐसी दृष्टि हट गयी है और शुद्ध आत्मा पर दृष्टि जम गयी है। उसे समता वीतरागी अविकारी परिणति होती है, उसे भगवान सामायिक कहते हैं। यह तारणस्वामी उसे सामायिक पुकार करते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं। हम ऐसा नहीं कहते हमारे घर का। भगवान ऐसा कहते हैं। शोभालालजी! भारी कठिन पड़े। व्यवहार तो उड़ जाता है। अब सुन तो सही तेरा व्यवहार। व्यवहार सामायिक करता है तो व्यवहार करते-करते निश्चय सामायिक होगी। ....लालजी! नहीं?

मुमुक्षु : ....ऐसा मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होगी। तेरे व्यवहार विकल्प और राग से सामायिक कभी तीन काल में नहीं होगी। ऐसी दृष्टि किये बिना तेरे स्वरूप में रमणता की सामायिक कभी आयेगी नहीं। समझ में आया?

जहाँ परिणाम शुद्ध हो... देखो, **समताभाव हो, वही शुद्ध सामायिक है। जहाँ शुद्धरत्नत्रयरूप परिणमन हो...** है न? यह ३१४ चलती है न? ३१४ चलती है। **जहाँ**

समताभाव हो... और **जहाँ शुद्धरत्नत्रयरूप परिणमन हो...** देखो, परिणमन **'परिन'** शब्द पड़ा है। क्या कहते हैं ? कि मैं शुद्ध चैतन्यघन हूँ। पुण्य-पाप से रहित दृष्टि होकर शुद्धरूप वीतरागी परिणमन हो परिणमन; परिणमन अर्थात् पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था, शुद्ध वीतरागी परिणमन हो, उसे सामायिक कहते हैं। लो! यह तो क्षुल्लक हो गये और सामायिक हो गयी। सवेरे, दोपहर तीन-तीन बार करते थे न ? मिथ्या सामायिक थी। समझ में आया ? यह तो सबको सामायिक समझना है न! अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत कर डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत कर डाली खोटी। शुद्ध हो वही सामायिक है। समझ में आया ? ओहोहो! फिर सामायिक।

समरुवं सम दिट्ठं, सम सामाइयं च जिन उत्तं।
मन चवलं सुध थिरं, अप्प सरुवं च सुध सम समयं॥३१५॥

जहाँ समतामयी रूप हो,... वीतरागी जहाँ अन्तर दृष्टि और अनुभव हो **समतामयी दृष्टि हो, जहाँ समभाव हो उसी को सामायिक श्री जिनेन्द्र ने कहा है...** लो! तारणस्वामी कहते हैं, हों! हम नहीं कहते, जिनेन्द्र ने कहा है। पाठ है या नहीं, देखो! **'सम सामाइयं च जिन उत्तं' 'जिन उत्तं'** वीतराग त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर ने उसे सामायिक कहा है। **जहाँ समभाव हो उसी को सामायिक श्री जिनेन्द्र ने कहा है। जहाँ चंचल मन स्थिर हो...** देखो, णमो अरिहंताणं जाप करते हैं न विकल्प, उससे हटकर स्थिर हो। **शुद्धोपयोग में लीन हो... 'सुध थिरं'** है न ? **'अप्प सरुवं च सुध सम समयं' जहाँ आत्मा का स्वरूप शुद्ध समतारूप अनुभव में आवे वही सामायिक है।** देखो, उसे यहाँ सामायिक कहा। कहो, समझ में आया ? देखो, यह पूर्व में भी ऐसा कहा। ६०वीं गाथा आयी न ? ६१। उपदेश तो यह ही है। श्रावकाचार है न यह ? श्रावकाचार नहीं। उपदेश... क्या माँगा है इसने ? उपदेशशुद्धसार माँगा था अभी सवेरे। पृष्ठ १२८। देखो, क्या है ? १८३ गाथा, १८३ गाथा। यह उपदेश का सार सवेरे माँगा था तुमने। भाई उपदेश कहते हैं।

गुरु उवएस स उत्तं, सूष्यम परिनाम कम्म संषिपनं।
गुरुं च विमल सहावं, दर्सन मोहंध समल गुरुवं च॥१८३॥

'**गुरु उवएस स उत्तं**' गुरु का उपदेश '**स उत्तं**' उसे कहते हैं। '**सूष्यम परिनाम कम्म संषिपनं**' सूक्ष्म परिणाम से कर्म का नाश हो, ऐसा भगवान गुरु का सूक्ष्म परिणाम का उपदेश चलता है। जिससे पुण्य-पाप और कर्म का हो, ऐसा गुरु का उपदेश है। यह उपदेशशुद्धसार। समझ में आया? थोड़ा श्रावकाचार में से लिया, यह लिया थोड़ा। देखो, गुरु महाराज ऐसा उपदेश देते हैं। है गुरु उपदेश? देखो! उत्तम... उत्तम कहते हैं। '**सूष्यम परिनाम कम्म संषिपनं**' 'जिससे अतीन्द्रिय आनन्द की शुद्ध परिणति का ज्ञान हो जाए'—ऐसा उपदेश गुरु देते हैं। जिसमें राग करो और राग से लाभ होगा, वह उपदेश कुआगम का है, गुरु का उपदेश नहीं। समझ में आया? क्या कहते हैं? कि सूक्ष्म परिणाम, सूक्ष्म परिणाम। यह पुण्य-पाप के परिणाम हैं, वे सूक्ष्म नहीं, वे तो स्थूल हैं। क्या कहा, समझ में आया? णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... जाप का भाव वह शुभ है, स्थूल है। स्थूल-स्थूल। होता है, परन्तु वह उपदेश नहीं कि वह करनेयोग्य है और उससे तुझे लाभ होगा। जानने में आवे ऐसी वस्तु आती है व्यवहार, परन्तु गुरुदेव ऐसा उपदेश करते हैं कि जिससे सूक्ष्म परिणाम अतीन्द्रिय आत्मा की शुद्धोपयोग परिणति का ज्ञान हो जाये।

जिस परिणति में रमण करने से... 'कम्म संषिपनं' जिससे कर्मों का क्षय होता है। देखो, समझ में आया? ऐसा श्री गुरुओं का, तीर्थंकरों का, मुनियों का, सम्यग्दृष्टि का उपदेश ऐसा होता है। ऐसे उपदेश में फेरफार करे कि जड़ की क्रिया से तुझे लाभ होगा, शरीर की क्रिया से लाभ होगा और पुण्य परिणाम है तो उससे तुझे धर्म होगा, यह उपदेश गुरुओं का नहीं है। यह कुगुरु का उपदेश है। समझ में आया? धरमचन्दजी! तो परीक्षा करनी पड़ेगी या नहीं? किसका सत्य उपदेश है? कौन गुरु है? क्या शास्त्र है? क्या देव है?

'**गुरुं च विमल सहावं**' देखो, कैसे हैं गुरु? **आत्मा का स्वभाव मलदोषरहित है।** उसका आत्मा ही अन्तर्दृष्टि में आया है कि मैं मल और दोषरहित हूँ। ऐसी परिणति है, उसे गुरु कहते हैं और उस गुरु का उपदेश ऐसा है। समझ में आया? '**दर्सन मोहंध समल गुरुवं च' जो मिथ्यादृष्टि है, उससे विपरीत उपदेश करते हैं व दोषसहित गुरु को गुरु मानता है, वह मूढ़ है।** '**दर्सन मोहंध समल गुरुवं च**' देखो, मल से लाभ होता

है, पुण्य से लाभ होता है, अशुद्ध से लाभ होता है, ऐसा माननेवाला गुरु को गुरु माने तो माननेवाला भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? परन्तु विचार करता नहीं। होता है, व्यवहार आता है, हों! भक्ति का, व्रत का, श्रवण का, गणधरों को भी व्यवहार आता है, परन्तु वह करनेयोग्य है, ऐसी मान्यता करना, वह मिथ्यादृष्टिपना है। समझ में आया? और स्वभाव का उत्साह छोड़कर उसमें विशेष उत्साह आना... क्या कहा? स्वभाव का उत्साह छोड़कर अकेले शुभभाव में उत्साह बढ़ना, वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। क्या दुर्गादासजी! क्या चलता है? कठिन उपदेश, भाई! यह उपदेशशुद्धसार, भाई! यह माँगा था हमारे शोभालालजी ने कि उपदेशसार में क्या है, वह थोड़ा (समझाओ)। यह है नमूना देखो! समझ में आया? यह तो (टेप में) उतरता है न। वहाँ भी सुनेंगे न! समझ में आया?

गुरुं च मग उवएसं, अमगं सयल भाव गलियं च।
गुरुं च न्यान सहावं, दर्सन मोहंध अन्यान गुरुवं च॥१८४॥

गुरु वही है जो मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। मोक्षमार्ग। अपना छुटकारा राग से, पुण्य से, बन्ध से हो, ऐसा उपदेश देते हैं। समझ में आया? जिससे बन्ध होता है, उसमें लाभ हो, ऐसा गुरु का उपदेश नहीं होता। चौदह पूर्व के सार में यह कहा है। चलती है न गाथा अपने? ज्ञानसमुच्चयसार में। उसका उपदेश क्या है, उसकी यहाँ बात चली है। समझ में आया? और **जिनके भीतर मोक्षमार्ग से विपरीत सर्व भाव गल गये हैं।** गुरु उसे कहते हैं कि अपने स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान रमणता है, उससे विपरीत भाव गल गये हैं, गल गये हैं। गल गये हैं अर्थात् नाश हो गये हैं। मिथ्या भ्रम, पुण्य से धर्म, पाप से सुख, इन्द्रिय में सुख, शरीर में सुख—ऐसी सब बुद्धि गल गयी है, नाश हो गयी है। कहो, समझ में आया?

और '**दर्सन मोहंध अन्यान गुरुवं च**' **गुरु है जिनका स्वभाव सम्यग्ज्ञानमय है।** देखो, '**गुरुवं च न्यान सहावं**' गुरु का स्वभाव ज्ञान चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, ऐसा स्वभाव हो गया है। रागादि, पुण्यादि मैं हूँ, शरीर आदि (मैं हूँ) ऐसा उसका स्वभाव नहीं। ऐसी बात करते हैं, देखो! कठिन पड़ती है, हों! वर्तमान पण्डित और त्यागी तो ... करते हैं।

आहाहा! भगवान की भक्ति में धर्म नहीं? लाख बार धर्म नहीं। क्या है? भगवान की भक्ति में क्या कषाय है? भगवान की भक्ति में राग आता है, वह पुण्य है। वह पुण्य कषाय है। आता अवश्य है, परन्तु वह धर्म का कारण होगा और धर्म है, ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा! मुनि को पंच महाव्रत नहीं आते? पंच महाव्रत का राग है। गणधर को राग आता है। वह भी शुभराग है। परन्तु उससे धर्म होता है, ऐसा नहीं मानते। हमारी निर्बलता है तो ऐसा शुभभाव अशुभ से बचने के लिये शुभ के काल में आता है। परन्तु उपदेश में ऐसा आता है कि यह महाव्रत पालते-पालते तुझे शुद्धोपयोग हो जायेगा (वह) कुगुरु का उपदेश है। समझ में आया? यह सब चलता है न! .... महाव्रत पहले पालन करे तो शुद्ध उपयोग होता है। अरे भगवान! क्या कहता है तू? किसके निकट सुना? तूने शास्त्र सुना ही नहीं।

कहते हैं कि वह तो ऐसा उपदेश देते हैं कि जिससे ज्ञान स्वभाव निर्मल हो और वही **मिथ्यात्व जो उसके ऐसा सम्यग्ज्ञानमय समझते नहीं और मिथ्यात्व से अन्ध है और ज्ञानस्वभाव सिवाय,...** विकार की कोई विकल्प की कल्पना से अपने में धर्म होता है, दूसरे को होता है, ऐसा मानता है। आत्मज्ञान रहित को गुरु मान लेता है तो मिथ्यादृष्टि है। उसे गुरु माने, अपने से बड़ा माने, उसे साधु माने तो मिथ्यादृष्टि है। कठिन बात है।

गुरुं च लोय पयासं, चेलं ससहाव ग्रंथ मुक्कं च।
ममल सहावं सुद्धं, दर्शन मोहंध समल गुरुवं च॥१८५॥

सच्चे गुरु वह हैं जो लोक को स्वरूप का प्रकाश करते हैं... अपने स्वरूप के साथ जगत के पदार्थ क्या हैं, उनका भी स्वरूप यथार्थरूप से प्रकाशित करते हैं। '**चेलं ससहाव ग्रंथ मुक्कं च' जो बाहर से पंच मेल, समस्त वस्त्र परिग्रह के त्यागी हैं...** मुनि लेते हैं न मुनि? दिगम्बर मुनि, जिन्हें वस्त्र का एक धागा नहीं होता, बाहर में ग्रन्थ परिग्रह वस्त्र का एक धागा नहीं होता, वे चारित्रवन्त गुरु हैं। समझ में आया? **जिनका परिग्रह अन्तरंग में वस्त्र परिग्रह राग के त्यागी हैं।** देखो, दो बातें ली हैं। '**चेलं ससहाव ग्रंथ मुक्कं च**' बाहर में वस्त्र का त्याग, अन्तर से राग-गुण को परिच्छान करते हैं

(अर्थात्) शुभराग आत्मा की शान्ति को ढँक देता है तो उसका आच्छादन छोड़ देते हैं। समझ में आया? बाहर में मात्र वस्त्र छोड़ने से क्या हुआ? अन्दर में विकल्प जो पुण्य-पाप की विकल्प वृत्ति है, वह अपनी शान्ति को ढँकती है, आच्छादन करती है। ऐसी वृत्ति, विकार, पुण्य की वृत्तिरूपी वस्त्र, वृत्ति अर्थात् भाव, उसरूपी वस्त्र का आच्छादन स्वरूप में से छोड़ दिया है। मेरे शुद्ध निर्मल ज्ञान आनन्द है, मुझमें किसी का आच्छादन है नहीं। उसे यहाँ गुरु कहते हैं और उससे विरुद्ध को गुरु मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया?

अब जरा बात फिर से ली है, देखो!

गुरुं सहाव स उत्तं, रागं दोसं पि गारवं तिक्तम्।
न्यानमई उवएसं, दर्सन मोहंध राइ मय गुरुवं॥१८६॥

गुरु का ऐसा स्वभाव कहा गया है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा है न? '**उत्तं**' '**उत्तं**' शब्द पड़ा है न? '**गुरुं सहाव स उत्तं**' स अर्थात् उक्तं। उसे कहा है कि **जिन्होंने राग-द्वेष-मद्य का त्याग कर दिया है।** विकल्प, पुण्य-पाप में से रुचि हट गयी है, अपने स्वभाव में रुचि परिणम गयी है और वीतरागभाव की परिणति है। गुरु उपदेश कैसा करते हैं? कि '**न्यानमई उवएसं**' लो यह उपदेश आया। '**न्यानमई उवएसं**' ज्ञानमय अकेला। अकेला ज्ञानात्मा है। ज्ञान की प्रतीति, वह भी ज्ञान की निर्मल पर्याय रागरहित है। ज्ञान का ज्ञान और ज्ञान का चारित्र, वह भी ज्ञान है, राग नहीं। समझ में आया? यह आता है न भाई समयसार में? ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान का समकित, ज्ञान का चारित्र, यह समयसार में आता है। ज्ञान अकेला भगवान चैतन्य ज्ञान पुंज प्रकाश, उस ज्ञान की प्रतीति ज्ञानरूप अर्थात् विकाररहित। ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान की पर्याय रागरहित, ज्ञान का चारित्र ज्ञान में लीन रागरहित। ऐसा ज्ञानमय उपदेश गुरु का होता है।...लालजी! कितने वर्ष निकाले परन्तु विचार न करे, लो! यह तो पुस्तक ऐसी की ऐसी बन्द रखी है। सेठ हाँ करते हैं। समझ में आया?

'**दर्सन मोहंध**' और मिथ्यात्व से अन्ध है। **वह सरागी को ही गुरु मान लेते हैं।** देखो, उससे विरुद्ध लेना है न? उससे। '**दर्सन मोहंध राइ मय गुरुवं**' अर्थात् राग से,

पुण्य से, विकार से, शरीर की क्रिया से, पर से मुझे धर्म होगा, तुझे धर्म होगा, ऐसा माननेवाला, करनेवाला अन्ध है, मिथ्यात्व से अन्ध है। अज्ञानी सरागी को गुरु मान लेता है। वह राग से लाभ माननेवाले को (गुरु) मान लेता है। कहो, समझ में आया? पश्चात् यह उपदेश है।

गुरुं च दर्सन मझओ, गुरुं च न्यान चरन संजुत्तो।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, दर्सन सल्य गुरुवं च॥१८७॥

'**गुरुं च दर्सन मइओ**' पहले ज्ञानमय कहा था न? **कैसा है गुरु? वही जो सम्यग्दर्शन का धारी है और जो सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से सहित है और जिसमें कोई मिथ्यात्व का शल्य नहीं है।** निःशल्योव्रति आता है या नहीं? कहाँ है? तत्त्वार्थसूत्र में। तो जिसे मिथ्यात्व शल्य नहीं, माया शल्य नहीं, निदान शल्य नहीं ऐसे शल्यरहित मेरा ज्ञानस्वरूप, दर्शनमय है, ज्ञानमय है। और **सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है जिसमें कोई... 'मिथ्या सल्य विमुक्कं, दर्सन सल्य गुरुवं च'** मिथ्यादृष्टि तो मिथ्या शल्यधारी को ही गुरु मानता है। राग से लाभ माननेवाला मिथ्यादृष्टि है तो (उसकी प्रशंसा करता है कि) तुमने बड़ी बात की, तुम्हारी बहुत प्रशंसा (करते हैं), तुमने बहुत अच्छी बात की। कहते हैं न ऐसा? समझ में आया?

१३२। श्रुत का उपदेश इसमें है थोड़ा। देखो, १९१ गाथा।

श्रुतं च श्रुत उववन्नं, श्रुतं च न्यान दंसन समग्गं।
श्रुतं च मग उवएसं, दर्सन मोहंध कुश्रुत अन्मोयं॥१९१॥

१९१। १-९-१। यह उपदेशसार की, हों! उपदेशसार की है? क्या कहते हैं? '**श्रुतं च श्रुत उववन्नं**' **शास्त्र वह है जो द्वादशांग वाणी से उत्पन्न हुआ हो...** सर्वज्ञ की वाणी से रचित शास्त्र हो। और कैसा है? **जिसमें सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन का स्वरूप हो।** शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान को बतलानेवाला शास्त्र हो, उसे शास्त्र कहते हैं। **शास्त्र वह है जिसमें मोक्षमार्ग का उपदेश हो।** समझ में आया? **और मिथ्यादृष्टि कुशास्त्र की अनुमोदना करते हैं।** सच्चे शास्त्र को वह मानता नहीं। जिसमें निज शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करने की बात है, उसे मानता नहीं, जिसमें अपने परिणाम का रंजन हो, उसे मानता है। यह आया। श्रावक उपदेश में थोड़ा आया। समझ में आया?

कहते हैं... कौनसी गाथा आयी ? ६०वीं चली ६० । ज्ञानसमुच्चयसार की ६१ गाथा।

विस्व पूर्वं च सुधं च, सुध तत्त्वं समं धुवं।
सुधं न्यानं च चरनं च, लोकालोकं च लोकितं॥६१॥

६१ । '**विस्व पूर्वं च सुधं**' यह शब्द पहले पड़ा है । क्या है ? '**विस्व**' अर्थात् **सर्व ही...** विश्व अर्थात् समस्त । **चौदह पूर्व शुद्ध... 'पूर्वं च सुधं' सर्व ही चौदह पूर्व...** चौदह पूर्व, सर्व पूर्व । यहाँ विश्व अर्थात् सर्व । चौदह पूर्व **शुद्ध व दोषरहित हैं...** उसमें कथन ही निर्दोष वीतरागी परिणति का आया है । ओहो ! समझ में आया ? यह पंचास्तिकाय में कहते हैं न, शास्त्र तात्पर्य । दो प्रकार का तात्पर्य चलता है—सूत्र तात्पर्य, एक शास्त्र तात्पर्य । सूत्र तात्पर्य एक-एक श्लोक में क्या कहते हैं, वह सूत्र तात्पर्य और सर्व शास्त्र का तात्पर्य वीतरागभाव । निज स्वभाव के सन्मुख होना और राग से हटना, ऐसे सर्व शास्त्र का वीतरागभाव तात्पर्य है । समझ में आया ? चार अनुयोग में वीतरागभाव की तात्पर्यता है । वीतराग हुए, वे तो वीतरागता बतावे या वीतराग हुए वे राग करने का बतावे ?

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते वीतराग होंगे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं होंगे । राग करते-करते, लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी । नहीं । नहीं आयेगी ? शोभालालजी ! लहसुन खाता है लहसुन । प्याज होता है न । प्याज खाते-खाते... घी में तलकर खाये तो ? घी में तलकर... समझ में आया न ? खाये तो उसकी डकार आयेगी । किसकी ? कि कस्तूरी की । धूल में भी नहीं आयेगी । राग और विकार करते-करते कभी धर्म हो तो लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आना चाहिए । ऐसा नहीं होता । देखो यह कहते हैं ।

'**विस्व पूर्वं च सुधं**' ओहो ! चौदह पूर्व शुद्ध निर्दोष है । '**सुध तत्त्वं समं धुवं**' और **शुद्ध आत्मिक तत्त्व को साम्यरूप व नित्य बताते हैं...** चौदह पूर्व वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान करने का कहते हैं । यह तो लोग भाई ! उसे ऐसा ही मानते हैं । वह व्यवहार की बात नहीं आती ? कि व्यवहार का लोप कर डालते हैं । परन्तु यह शास्त्र का आदर कहते हैं, वाणी का आदर करना, वह व्यवहार नहीं ? भगवान को याद किया, जिनोक्तं-जिनोक्तं क्या है ? विकल्प है, शुभराग है । आता तो है । उसे ऐसा दिखता है कि अरे ! अरे ! यह व्यवहार से लाभ मानते नहीं, व्यवहार से लाभ मानते नहीं । लाभ मानना अलग बात है

और व्यवहार आना अलग बात है। समझ में आया?

तो कहते हैं, **सर्व ही चौदह पूर्व... 'सुधं न्यानं च चरनं' शुद्ध ज्ञान व शुद्ध चारित्र का उपदेश करते हैं...** देखो! सर्व चौदह पूर्व शुद्ध निश्चय समकित का उपदेश देते हैं, शुद्ध सम्यग्ज्ञान का और शुद्ध वीतराग का, निश्चय रत्नत्रय का ही उपदेश वीतराग करते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! और **'लोकालोकं च लोकितं' तथा लोक और अलोक के स्वरूप को दिखलानेवाले हैं।** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए (तो) लोक-अलोक क्या है, यह श्रुतज्ञान में आ जाता है। श्रुतज्ञान में उसके अस्तित्व की श्रद्धा समकिती को आ जाती है। भगवान चौदह पूर्व में ऐसा उपदेश करते हैं। कहो, समझ में आया? इसमें तो दूसरी बात थोड़ी उतारी है भाई ने। यह उतारी है न! देखो! सामायिक का तो आ गया न? एक जल छानने की व्याख्या की है। १५५ पृष्ठ पर। १५५ है न, देखो। जल छानना परमार्थ से किसे कहते हैं? जल छानना है न, व्यवहार जल छानना है शुभ विकल्प। समझ में आया? परन्तु यह ज्ञानसमुच्चयसार है या नहीं? इसका २९० श्लोक। २९०। है?

जल गालन उवएसं, प्रथमं सम्मत्त सुध भावस्स।
चित्तं सुध गलंतं, पच्छिदो जलं च गालम्मि॥२९०॥

श्रावकों को पानी छानकर पीने का उपदेश है। प्रथम यह आवश्यक है कि उनके भावों में शुद्ध सम्यग्दर्शन हो। राग से छानकर शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ हो। राग को छानकर निकाल डाला हो। समझ में आया? यह तो गाथा उतरती है। इसमें से उतार लेना। पानी छानते हैं तो कहते हैं कि **'प्रथमं सुध भावस्स सम्मत्त'** अशुद्धभाव में से छानकर शुद्धभाव निकाल लेना। अपना स्वभाव शुद्धभाव अशुद्ध से छानना, इसका नाम पहले सम्यग्दर्शन कहा जाता है। वह यह जलछानन इसका नाम है। यह तो कहे इतना छानो, इतना छानो, फिर पानी डालो। पश्चात् .... करे जहाँ से पानी लाये हों वहाँ छोड़ देना। यह जीवाणी होते हैं न, क्या कहते हैं वह? जीवाणी। ... हो गया। अरे! यह तो शुभविकल्प है और छानने की क्रिया होती है, वह तो जड़ की, पर की क्रिया होती है। वह तुझसे कहाँ होती है उसमें? यह छानने का छन्ना कहते हैं न छन्ना? क्या कहते हैं? छन्ना। ऊँचा-नीचा हो, ऐसा हो, ऐसा हो, वह तो जड़ पर की क्रिया है, वह कहीं

तुझसे होती है ? ऐई ! धर्मचन्दजी ! वह तो पर की क्रिया है। पर की क्रिया मुझसे होती है, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। घर में पानी छानते होंगे तुम। राग से मैं भिन्न हूँ, ऐसी तुझे खबर नहीं तो ऐसी क्रिया का अभिमान करता है।

और **व अपने चित्त से दोषों को हटाकर साफ करें,...** देखो, **'चित्तं सुध गलंतं' चित्त से दोषों को हटाकर साफ करें, चित्त को छाने...** अकेला बाहर में मान लिया, क्रियाकाण्ड में धर्म मान लिया। पानी छानकर पीते हैं और ऐसा करते हैं और वैसा करते हैं और देखो तो कषाय तीव्र, ... और पैसा माँगे। लाओ पैसा हमारे... अरे ! भिखारी है तू ? माँगता है... तेरे चित्त को राग से छानना, ऐसे चित्त की शुद्धि तो हुई नहीं। समझ में आया ? **'पच्छिदो जलं च गालम्मि'** भाई ! ऐसा लिया, देखो ! पहले चित्त शुद्धि करके पश्चात् पानी छानने की क्रिया का शुभराग आता है। ऐसी बात करते हैं। बात तो बहुत अच्छी की है। देखो, समझ में आया ? वह अकेले क्रियाकाण्ड में घुस गये थे न ? यह पानी छानकर पीते हैं और कुँए में से निकालते हैं, ऐसे नितारते हैं... अब वह तो पर की क्रिया है परपदार्थ की। तुझमें क्या आया ? तू कर सकता है ? तुझे उस समय पानी छानने का भाव हो, दोष न हो तो शुभभाव है। तो शुभभाव तो मलिन है। उससे भी अपने शुद्ध आत्मा को छानकर निकाला नहीं तो तुझे पानी छानकर पीने का भाव, उसे व्यवहार भी नहीं कहा जाता। क्या कहा, समझ में आया ? पानी छानने का शुभभाव हुआ, वह शुद्धभाव हुए बिना तेरा शुभभाव व्यवहार में भी गिनने में नहीं आता। शुद्धभाव हो तो ऐसा भाव आवे तो शुभराग को व्यवहार कहा जाता है। क्रिया तो पर से होती है, अपने से नहीं होती।

फिर पानी को छानकर पीवें। है न पाठ ? यह पीछे का बोल रह गया, पहले का बोल चल गया। पानी छानकर पीना। परन्तु कौनसा पानी ? तेरा ज्ञानजल है अन्दर शुद्ध चिदानन्दमूर्ति भगवान जल है, उसे राग के कण से निकालकर पानी पीना, पश्चात् उस पानी को पीने का विकल्प आता है, उसे शुभभाव पुण्यबन्ध का कारण कहते हैं। आये बिना रहता नहीं। परन्तु वह वास्तव में पानी छानने का स्वभाव उसमें आता नहीं।

मुमुक्षु : ....हो उसे छाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, छाने। देखो, यह इसमें से आया, हों! यह ज्ञानसमुच्चयसार में से। २९१।

मन सुधं चित्तगालं, भाव सुधं च चेयना भावं।
चेयन सहित सुभावं, जलगालन तंपि जानेहि॥२९१॥

शब्द तो बहुत सरल है। उसमें कोई संस्कृत बहुत नहीं है। **मन को शुद्ध रखना चित्त का छानना है।** पुण्य-पाप से रहित अपने ज्ञान की दशा रखना, वह चित्त का छानना है। उसने पानी छाना है। रतनलालजी! सुना था? पहले कभी ऐसा सुना था कि पानी छानना ऐसा है। सुना ही नहीं। पुस्तक में लिखा है। तारणस्वामी ने लिखा है, देखो! यह लिखा है, इसका तो अर्थ होता है। कैसे? ...लालजी! और '**भाव सुधं च चेयना भावं**' देखो, **शुद्ध भाव में होकर चेतना का अनुभव करना...** चेतना का अनुभव करना, वह जलछानन है।

'**चेयन सहित सुभावं**' **चेतनासहित स्वभाव में लय हो जाना।** '**तंपि जल गालन जानेहि**' **इसको भी जल गालन जानो।** निश्चय का अर्थ यह है। व्यवहार तो विकल्प आता है। देखो! फिर रात्रिभोजन त्याग, देखो।

अनस्तमितं उवएस, पढमं सम्मत्त चरण संजुत्तं।
जस्य नअनस्तं दिट्ठं, तस्ययं मिथ्यादि भावमप्पानं॥२९२॥

रात्रिभोजन त्याग का उपदेश करते हैं। प्रथम तो श्रावक को सम्यग्दर्शन व अपने योग्य आचरणसहित होना चाहिए। इसके बिना रात्रिभोजन का त्याग व्यवहार से भी नहीं कहा जाता। समझ में आया? कभी रात्रिभोजन त्याग करते-करते धर्म होता है या नहीं? कभी-कभी बेड़ा पार होगा। कहते हैं, तीन काल में नहीं। यह राग की मन्दता है, शुभभाव है। परन्तु इसके साथ देखो **श्रावक को सम्यग्दर्शन व अपने योग्य आचरणसहित होना चाहिए।**

'**जस्य नअनस्तं दिट्ठं**' देखो अब। **जिसके सम्यग्दर्शन अस्त न हो...** यह सम्यग्दर्शन अस्त अर्थात् नाश नहीं पावे, इसका नाम रात्रिभोजन का त्याग है। '**नअनस्तं**' कहा न? अन-आत्मा का त्याग, ऐसा कहते हैं न! अस्त हुए पहले, सूर्य अस्त हुए पहले त्याग।

तो उसका क्या ? सम्यग्दर्शन (होने में) पहले उसका—राग का त्याग होना चाहिए। अपने सम्यग्दर्शन का नाश न हो, पश्चात् रात्रिभोजन का विकल्प आया है कि रात्रिभोजन नहीं करना। वह तो ऐसा भाव आता ही है। परन्तु अकेला रात्रिभोजन न करे और शुभभाव है, तो उसमें संवर-निर्जरा होती है या यह धर्म है नहीं। समझ में आया ? देखो।

उसकी ही आत्मा में मिथ्यारागादि भाव न होंगे। जिसके सम्यग्दर्शन अस्त न हो। पाठ में देखो। '**जस्य दिट्ठं न अनस्तं**' जिसकी सम्यग्दृष्टि अस्त न हो। अस्त न हो जाये। आथमी जाय कहते हैं न ? सूर्य अस्त होता है। ऐसा सम्यग्दर्शन जिसे अस्त न हो, उसका आत्मा मिथ्या रागादि रहित होता है, उसे वास्तव में रात्रिभोजन का त्याग कहा जाता है। अब स्वयं कहते हैं कि भाई! हम अकेले नहीं कहते, भगवान भी कहते हैं। ऐसा लेते हैं। २९३ (गाथा)।

अप्पानं मप्पानं, सुधप्पा भाव विमल परमप्पा।
एयं जिनेहि भनियं, अनस्तमितं तंपि जानेहि॥२९३॥

जो आत्मा को आत्मा जाने। भगवान शुद्ध चैतन्य ज्ञानप्रकाश मैं आत्मा हूँ, ऐसा अन्तर आत्मा को जाने। '**सुधप्पा भाव विमल परमप्पा' कि यह निश्चय से शुद्ध स्वरूप है, जिसका भाव मलरहित परमात्मा...** अपना स्वरूप ही परमात्मा पूर्ण है। मेरे गर्भ में परमात्मा ही मैं पड़ा हूँ। ऐसी श्रद्धा-ज्ञान अनुभव सहित है, **उसको रात्रिभोजन का त्यागी जानों, ऐसा जिनेन्द्रों ने कहा है।** समझ में आया ? भाई! जिनेन्द्र ने कहा है, ऐसा किसलिए डाला ? कि भाई! अकेला व्यवहार का त्याग है, उसे व्यवहार भगवान ने नहीं कहा। ऐसा कहते हैं। **जिनेन्द्रों ने कहा है।** समझ में आया ? लोग कहते हैं, व्यवहार-व्यवहार,... नहीं... नहीं... ऐसा जिनेन्द्र ने कहा नहीं। जिनेन्द्र ने ऐसा कहा है कि अपने आत्मा में राग मल से रहित सूर्य अस्त न हो, ऐसी दृष्टि निश्चयपूर्वक रात्रि में आहार नहीं करने का भाव, उसे व्यवहार कहते हैं, इसे निश्चय कहते हैं। ऐसा जिनेन्द्र का उपदेश है। जिनेन्द्र का ऐसा उपदेश नहीं कि तुम पहले व्यवहार करो और फिर निश्चय होगा और व्यवहार करो, उसे व्यवहार कहते हैं। ऐसा जिनेन्द्र कहते नहीं। समझ में आया ? कितनी गाथा हुई ? चलती गाथा, हों! ६१ गाथा हुई। लो! '**लोकितं**' लोकालोक के पदार्थ का स्वरूप भी यथार्थ कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल २, रविवार, दिनांक - ३०-०९-१९६२
गाथा-६२ से ६६, ८८, ९२, ५३९, ५४०
प्रवचन-६

यह ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामी रचित है। उसमें यहाँ सम्यग्दर्शन का अधिकार चलता है। क्योंकि धर्म में पहले सम्यग्दर्शन बिना तप और संयम कुछ होता ही नहीं।

मुमुक्षु : क्रिया हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तप, संयम क्रिया मिथ्या होती है। समझ में आया? यह है इसमें, देखो! पृष्ठ ४७ में है। ४७-४७ है न इसमें? इसमें ही है, देखो! ८८ गाथा, ज्ञानसमुच्चयसार, ८८।

न्यान हीनो व्रतं जेन, व्रत तप क्रिया अनेकधा।
कस्टं निरोह सेसानि, मिथ्या विषय रज्जितं॥८८॥

है? क्या कहते हैं? **'जेन न्यान हीनों' जिसने आत्मज्ञानमयी श्रुतज्ञान के बिना अनेक प्रकार व्रत तप क्रिया की वह केवल मात्र कष्ट को ही सहता है।** समझ में आया? क्या कहा? आत्मा की सम्यग्दृष्टि बिना, आत्मा राग-द्वेष, पुण्य-पाप, शरीर की क्रिया से रहित मेरा आत्मा शुद्ध चैतन्य, ऐसी अन्तर्दृष्टि सम्यग्दर्शन अथवा राग से भेदज्ञान किये बिना। है? यह जो क्रिया, व्रत और तप। है पण्डितजी? देखो, तारणस्वामी कहते हैं। व्रत और तप क्रिया **'निरोह कस्टं' 'निरोह कस्टं'** मात्र कष्ट है। है? **'निरोह'** नहीं कहते लोग? अकेला कष्ट। सेठी! आत्मा क्या चीज़ है, उसकी भूमिका का भान नहीं। किसमें स्थिर होना है और वह चीज़ क्या है, ऐसे अन्तर में सम्यग्ज्ञान भावश्रुत, भावश्रुत सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन बिना, देखो! **'कस्टं निरोह सेसानि'** कष्ट मात्र सहन करने से भी **'मिथ्या विषय रज्जितं' उसका रंजायमानपना मिथ्या इन्द्रियों के विषयों में है।** अथवा उसके पुण्य के विषय में रंजायमान है। है? है या नहीं? यह ज्ञान बिना, ज्ञान बिना क्रिया है या नहीं?

मुमुक्षु : वह तो क्रिया करते-करते....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं होता क्रिया करते-करते। क्रिया साधन ही

नहीं। अब फिर आयेगा थोड़ा। समझ में आया? देखो। यह लिया है। कहाँ से लिया है? यह दूसरे में है वह तो। मूल लेना है न। पृष्ठ ३६६। छापा है उसमें है। पहले पढ़ा था तब उसमें से निकाला था। यहाँ भी सब जगह साधन-साधन कहा है। अन्तर स्वभाव साधन, हों! ३८३ है। देखो। गाथा है २, परन्तु फूलना है फूलना? क्या है? परमेष्ठी। तीसरी गाथा। फूलना है न। यह ममलपाहुड ममलपाहुड में। देखो, उसमें लिखा है।

मुमुक्षु : फूलना नम्बर क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : फूलना नम्बर है। यह पृष्ठ आया नहीं। नम्बर है ९७। ९७ नम्बर है। ९७ देखो। इसकी गाथा है, देखो! क्या आया? बहुत वर्ष पहले पढ़ा था न जब, तब लिखा हुआ है। देखो! इसमें १०वीं गाथा है १०वीं। चौथी गाथा लो चौथी।

उवन दिप्ति सुइ दिपियं,
दिपियं सुइ दिस्टि दिपिय ममलं च।
दिप्ति दिस्टि सुइ सब्दं,
सब्दं अवयास सुवन सम कर्नं॥४॥

इन्हीं शब्दों के अनुसार समताभाव के साधनरूप परिणमन, वही साधन है। करण अर्थात् साधन है। यह करणशक्ति नहीं आयी थी अपने? करणशक्ति आयी थी न? आत्मा... यह क्रियाकाण्ड के साधन से आत्मा को कुछ लाभ नहीं होता। यह पुण्यबन्ध होता है।

मुमुक्षु : करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना क्या? वह राग बीच में आता है। परन्तु करने का तो अन्दर ज्ञान स्वरूप शुद्ध चैतन्य का करण-साधन अन्दर आत्मा में पड़ा है। देखो! बड़ी चीज़ है। करण-करण शब्द पड़ा है न? बहुत बार करण आयेगा। यह तो बहुत वर्ष पहले वाँचा था न, तब लाल चिह्न किये हुए हैं। देखो। समझ में आया?

'**सब्दं अवयास सुवन सम कर्नं**' जो भगवान के शब्द हैं, तद्नुसार वाणी में ऐसा आया था कि अन्तर में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र जो वीतरागी स्वरूप का अन्तर साधन करण गुण पड़ा है, उस साधन से स्वभाव (प्राप्त) होता है। व्यवहार साधन से स्वभाव

(प्राप्त) नहीं होता। रतनलालजी! यह देखा ही नहीं, कभी वाँचा नहीं, लो! कभी भी नहीं देखो। यह बड़ी चीज़ है। निकली? बड़ी चीज़ है, देखो! सबमें करण बहुत आयेगा, हों! पश्चात् १०वीं गाथा में। **'सब्दं कर्न सुइ समयं' आत्मा ही मोक्ष का साधन, यही करण शब्द बताता है।** करण अर्थात् साधन बताता है। अपना शुद्धस्वरूप, वही साधन है। राग, पुण्य, विकल्प, निमित्त-बिमित्त कोई साधन नहीं। साधन का कथन दो प्रकार से चला है, परन्तु साधन एक ही प्रकार का है। समझ में आया? देखो, भजन में भी ऐसा लिया है। समझ में आया? १० वाँ।

पश्चात् १२वाँ। सबमें यह बात ली है। **'आयरनं उवन सब्द सुई कर्नं'** आचार्य उसे आचरण कहते हैं कि ज्ञान की अन्दर अन्तर शुद्धता में आचरण करना, वही साधन है। **यही करण शब्द से प्रयोजन है।** देखो! **यही करण...** करण अर्थात् कारण, साधन, उससे प्रयोजन है। बाकी शरीर की क्रिया, पुण्यादि की क्रिया वह कोई साधन-फाधन है नहीं। उसमें ऐसा भी कहा है कहीं। उत्साह का लिखा है कहीं। पुण्य में उत्साह है। पृष्ठ ९७। उसमें पृष्ठ है ९७। उसमें, हों! ममलपाहुड़ में पृष्ठ ९७ है। ममलपाहुड़ में हों! देखो, गाथा ली है न? कौनसी है? यह तो ज्ञानसमुच्चयसार में, हों! ज्ञानसमुच्चयसार में है, देखो पृष्ठ-९७। पहले देखा न। देखा, १२४ गाथा। भाई इसमें है। १२४।

लोभं पुन्यार्थं जेन, परिनामं तिस्टते सदा।
अनंतानुलोभ सद्भावं, तिक्तते सुध दिस्टितं॥१२४॥

जिसके भीतर पुण्य की प्राप्ति के लिये लोभ भाव सदा रहता है, उसके अनन्तानुबन्धी लोभ का प्रकाश है, इसलिए सम्यग्दृष्टि पुण्य का लोभ भी छोड़ देते हैं। शुभभाव आता है, परन्तु उसका उत्साह छोड़कर स्वभाव का साधन करते हैं। आता अवश्य है। राग आता है दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, परन्तु उसकी अन्दर दृष्टि छोड़कर अपने स्वभाव का साधन करता है। पुण्य का लोभ, व्यवहार का लोभ छोड़ देता है। है या नहीं उसमें? समझ में आया? तो यहाँ भी आया देखो यह करण। यह करण चलता है न अपने अभी तो। करण आया? कितनी गाथा आयी? १२। १२ गाथा में आया।

पश्चात् देखो १३वीं में। **'हययार कर्न सम समयं'** हितकारी समभाव सहित आत्मा का प्रकाश है। स्वात्मानुभव करना। है? १३वीं। पहले **'हययार कर्न सम समयं'**

हितकर अपना स्वरूप शुद्ध है, उसका साधन करना, वह हितकारी है। व्यवहार साधन आता है, वह परमार्थ से हितकारी नहीं। यह तो इसमें है भाई ममलपाहुड में। समझ में आया? पश्चात् १६वीं गाथा देखो। '**कमलं सुइ उवन साहियं कर्नं**' कमल समान भगवान आत्मा की अन्तर चैतन्यप्रकाश की ओर एकाग्रता **वही सिद्धपद का करण-साधन है।** है? यह सब लक्ष्य करके ध्यान करना, विचारना कि यह क्या कहते हैं? समझ में आया? उसमें तो बहुत जगह ऐसी बात है। उस समय (चिह्न किये हुए हैं)। उसमें भी अभी दूसरी है, देखो, १७। '**कर्न समय हिय उवनं**' **आत्मिक साधन भाव का होना अपने हित का उदय है।** शोभालालजी! यह पैसे का साधन खोजा, परन्तु यह कभी खोजा नहीं वहाँ। स्वामीजी क्या कहते हैं अन्दर देखो। कि भगवान ऐसा कहते हैं, त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञदेव कहते हैं—जिनोक्तं। '**कर्न समय हिय उवनं**' अपने शुद्ध चैतन्य की अन्तर में एकाग्रता शुद्ध स्वभाव का साधन करना, वही हितकर है, दूसरा कुछ हितकर नहीं।

१८ में। '**उवनं सुइ सुवन कर्न सुइ समयं।**' **आत्मा का उदय वही आत्मा का परिणमन, वही साधन।** शुद्ध आत्मा अपने में रागरहित परिणमन करता है, वही मोक्ष का साधन है। दूसरे साधन का उपचार से कथन है। कहो, समझ में आया? यह ११वीं गाथा में से बहुत लिया है। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**' साधन-फाधन निश्चय का वही एक निश्चय साधन है। व्यवहार साधन उपचार से कहा जाता है। वास्तव में वह साधन नहीं है। कितनी गाथा हुई, १८?

२०। '**उवनं सुइ सब्द कर्न सम ममलं।**' **इस शब्द के अर्थ के अनुभव से शुद्ध समभाव प्रगट हो जाता है।** अपने अन्दर में शुद्ध समभाव पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अन्तर की वीतराग परिणति, वही अपना शुद्ध स्वभाव का साधन है। कहो, समझ में आया? ऐसे तो बहुत शब्द पड़े हैं। पश्चात् २२ में है। '**समयं सुव सुवन कर्म विंदानं।**' **आत्मा का आत्मा में परिणमन करना, वही अपना ज्ञान का साधन है।** वह ज्ञान का यह साधन है। राग और विकल्प, वह सब साधन है नहीं। कठिन तो बहुत लगे, हों! समझ में आया? यह तो वह करण याद आ गया। उस समय करण में सबमें चिह्न किया था न।

'**आयरन कमल समय धुव कर्नं।**' २३। **अपने आत्मारूपी कमल में आचरण करना, वही ध्रुव आत्मा के विकास का साधन है।** सेठी! निश्चय की ऐसी बात है, जरा लोगों को ऐसा लगे कि अरे! यह व्यवहार उत्थापित हो जाता है। व्यवहार होता है। हो, परन्तु वह अपने स्वरूप के विकास का साधन होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? लो! कितना लिखा है, देखो! पश्चात् २४। **शुद्धात्मा में अनुभवशील होना, यही साधन है।** देखो, पाठ है न? '**कलनं सुई कमल साहि सुव कर्नं**' पाठ में आता है न भाई अपने। '**कलनं**' समयसार नाटक में कलश आता है। अभ्यास करने अन्तर शुद्ध चैतन्यमूर्ति सन्मुख अभ्यास '**कलनं**' **यही अनुभवशील होना ही साधन है। जिसके निर्वाणरूपी साध्य की सिद्धि की जाती है।**

२५। **यह प्रकाश ही आत्मारूपी कमल के विकास का साधन है।** है? अन्तिम शब्द है। '**उवनं सुइ कमल कर्न सुइ समयं**' पश्चात् २६। देखो, '**पय उवन कमल साहि सुइ कर्नं**' **अर्हंतपद का उदय है, वही साधनेयोग्य कमल समान आत्मा है। वही मोक्ष का साधन है।** शोभालालजी! यह विकल्प-बिकल्प साधन नहीं, ऐसा कहते हैं। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो सिद्धाणं जाप करना, वह सामायिक है और प्रौषध है और धर्म है, ऐसा नहीं है। कठिन बात है, हों! अन्तर आत्मा ज्ञान सन्मुख की शुद्ध परिणति का साधन करे, वही साधन अर्थात् कारण अपनी मोक्षदशा का है। बाकी सब साधन व्यवहार पुण्यबन्ध के हैं।

२७। यह भी है। **समभावरूप चारित्र का उदय, वही आत्मा का स्व चारित्र में परिणमन है।** देखो! '**चरनं सम उवन कर्न सुव समयं**' करण शब्द से परिणमन, करण शब्द से कारण, करण शब्द से साधन। अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप का साधन वही है। देखो! कितने दृष्टान्त हैं! २८, लो न। '**अलषं सुइ लषिय कर्न निर्वानं**' **जब अतीन्द्रिय आत्मा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है, तब ही वह साधन प्रगट होता है।** भगवान ज्ञानमूर्ति का स्वसंवेदनज्ञान से ज्ञान होना, विकल्प-राग से नहीं, वही आत्मा के मोक्ष का साधन होता है। कहो, समझ में आया? लो, यह करण की बात हुई। और पुण्य के उत्साह की बात हो गयी। हो गयी न?

और एक है इसमें। एक पृष्ठ १५७ है न। उसमें यह पहले कहा था। पृष्ठ १५७

है। उसमें एक ऐसी बात भजन में की है कि भगवान! '...' **भव्य जिन अर्हंत की भक्ति में मग्न होकर ऐसा कहता है, हे जिनेन्द्र! क्या हमारे साथ अपने मोक्षरूपी देश में न चलोगे ?** हमारा स्वभाव साधन सिद्ध समान हम करते हैं तो भगवान! हमारे साथ चलो। सिद्ध भगवान को अपने साथ लेता है। देखो! समझ में आया? ... अपने देश में नहीं चलोगे? अपना शुद्ध स्वरूप शुद्ध आनन्दघन, उस देश में नहीं रमोगे? प्रभु! हमारे साथ चलो। हम भी हमारे स्वरूप के देश में जाते हैं। समझ में आया? पश्चात् है न? यह नाम आया ... हे जिनेन्द्र भगवान! क्या हमारे साथ अपने निज वेश में नहीं चलोगे? निज वेश में। अपना निर्विकल्प वेश है। वीतरागी परिणति से प्रभु! हमारा वेश साथ में लेकर चलो वीतराग परमात्मा। ऐसी भगवान से प्रार्थना करता है। वास्तव में तो स्वयं से प्रार्थना करता है, ऐसा बहुत है उसमें। भजन-भजन किया है, देखो! फिर है न?

.... हे जिनेन्द्र भगवान! क्या आप मेरे साथ अपनी शैय्या पर नहीं चलोगे? हम हमारे स्वरूप में शैय्या करके सोते हैं, प्रभु! हमारे साथ चलो। समझ में आया? हमारी शैय्या शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा है। आप उस शैय्या में सोते हो तो हम भी हमारी शैय्या में आते हैं, आप साथ में चलो, हमको आपका साथ है। सथवारो कहते हैं न? साथ-साथ। हमारे काठियावाड़ में सथवारो कहते हैं। परन्तु साथ किसका? हम हमारे शुद्ध स्वरूप में रमण करते हैं, प्रभु! हम सिद्धपद में जाने की तैयारी करते हैं तो तुम भी हमारे साथ चलो। हमारे साथ चलो अर्थात् हमारे साथ रहो, ऐसा। हमारे साथ रहो। तुम्हारा हमको साथ है, तुम्हारा हमको साथ है। हमको दूसरे का किसी का साथ नहीं है। समझ में आया? भजन में भी वह गाया है। पूरा भजन ही ऐसा है।

बाद में भी लेंगे। **हे जिनेन्द्र! क्या आप मेरे साथ नहीं चलोगे? क्या आप मुझे मुक्ति पहुँचने में मदद नहीं देंगे ?** ऐसा कहते हैं न? .... हमारे साथ चलकर भगवान! वह प्रवचनसार चला है न? प्रवचनसार। पहले दीक्षा का अधिकार चला है प्रवचनसार में। कुन्दकुन्दाचार्य। तो वहाँ दीक्षा लेते हैं तो सब पंच परमेष्ठी को, विद्यमान तीर्थंकर को सबको बुलाते हैं। प्रभु! हमारे साथ रहो न! हमारा स्वयंवर दीक्षा होती है। हमारी दीक्षा होती है। स्वयंवर मण्डप में हमारी दीक्षा (होती है)। यह विवाह करने जाते हैं न विवाह में?

एक बार दृष्टान्त दिया था। विवाह करने जाते हैं। उस कन्या के पिता के पास कम हो कि हमें दस हजार देना है। तो भगवानदासजी सेठिया जैसों को साथ ले जाये। वह गरीब व्यक्ति बेचारे कौन जाने क्या होगा? भाई भगवानदास! चलो हमारे साथ। चलो भाई! वह कन्या का समय हो पाणिग्रहण का। तो उसने रोक दिया। सब सेठिया बैठे हैं। देरी क्यों लगी? कन्या के पिता कहते हैं कि दस हजार रुपये माँगते हैं। अरे! परन्तु अभी दस हजार! कहाँ से लावे? गरीब व्यक्ति है। अन्दर गये, कहा क्या है? गले में एक हार था वह दे दिया। कन्या एक मिनिट नहीं रुकेगी। हम साथ में हैं। समझ में आया? उसके पास नहीं परन्तु कन्या का विवाह आठ बजे बराबर होगा। सेठी!

इसी प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान! हमारी मोक्षरूपी लक्ष्मी का स्वयंवर मण्डप रचा है। तो हम आपको बुलाते हैं, प्रभु! हमारे साथ रहना, हों! और हमारी मोक्षरूपी लक्ष्मीरूपी कभी वापस फिरे नहीं। समझ में आया? भगवान! हमारे विवाह में आपको बुलाते हैं। तो बड़ों को बुलाते हैं तो बड़ों को बुलावे तो उसकी कन्या वापस फिरती नहीं। तो आप सिद्ध परमात्मा वर्तमान विद्यमान तीर्थंकर, अनन्त भूतकाल में हुए, भविष्य में होंगे सब मानो हमारे पास न हों। ऐसे तीर्थंकर को बुलाकर साधन करते हैं, हे भगवान! हमारे साथ रहो, साथ रहो। और तुम साथ हो और हमारी मोक्षलक्ष्मी फिरे? तीन काल में फिरे नहीं। समझ में आया? ऐसी बात है। उसमें बहुत बातें हैं। कहो, यह तो दो का उत्तर दिया।

क्या चलता है अपने? ६१ गाथा हो गयी। ६२वीं चलती है, देखो!

लोकितं सुध तत्त्वं च, सुद्ध ध्यान समागमं।
विस्व लोक तिअर्थं च, आत्मनं परमात्मनं॥६२॥

क्या कहते हैं? **चौदह पूर्वों में...** यह चौदह पूर्व की बात चलती है। ऊपर में चौदह पूर्व (आ गये)। तो चौदह पूर्व में बात क्या चली? चौदह पूर्व में सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में आया क्या? तो कहते हैं कि **चौदह पूर्वों में शुद्ध तत्त्वों को दिखाया गया है।** देखो! उसमें तो आत्मा शुद्ध, पदार्थ शुद्ध अपना स्वभाव निर्विकल्प वीतराग, वही बताया है। रागवाला आत्मा है, कर्मवाला आत्मा है, ऐसा अशुद्ध तत्त्वों का कथन नहीं

किया गया है। शुद्ध तत्त्व का कथन है, यह चौदह पूर्व का सार है। चौदह पूर्व में लोकबिन्दु चौदहवाँ पूर्व है। लोकबिन्दु। लोकबिन्दुसार ऐसा चौदहवाँ पूर्व में है। तो उसमें क्या कहा? यहाँ तो पहले से लेते हैं। अस्ति-नास्ति से लेंगे। चौदहवें पूर्व में अपना भगवान पवित्र अखण्डानन्द शुद्ध है, ऐसा **दिखाया गया है। 'लोकितं'** है न? **'लोकितं'** अर्थात् **दिखाया गया है।**

'सुद्ध ध्यान समागमं' और शुद्धध्यान की प्राप्ति का उपाय बताया गया है। क्या कहा? दो बात—एक शुद्ध आत्मा बताया गया है चौदह पूर्व में और उसका मोक्ष का साधन शुद्ध उपाय बताया गया है। साधन और साध्य दोनों उसमें बताया है। साधन भी शुद्ध, साध्य भी शुद्ध। ऐसा चौदह पूर्व के अन्दर सार बताया है। मुख्य ऊपर कहा है। है न? **'सुद्ध ध्यान समागमं'** एकाग्रता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र क्या है? वह तो सम्यक् शुद्ध चैतन्यस्वभाव में एकाग्रता है। राग और पुण्य के विकल्प की एकाग्रता छोड़कर सहजानन्द प्रभु अपना परमात्मा जिनेन्द्र प्रभु अपना देव, उसमें अन्तर्मुख होकर एकाग्रता होना, वही मोक्ष का साधन चौदह पूर्व में बताया है। चारों अनुयोग में यह सार कहा है। कहो, समझ में आया?

'विस्व लोक' सर्व लोक के स्वरूप को... 'विस्व' अर्थात् समस्त। **'विस्व'** अर्थात् समस्त। **सर्व लोक के स्वरूप को...** इस आत्मा को, शुद्ध आत्मा के उपाय को, सर्व लोक को और तीन पदार्थ को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय, हों! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धर्म को और **आत्मा तथा परमात्मा को बताया गया है।** लो! इतनी बात की। चौदह पूर्व में से सार निकालकर यह बताया है। समझ में आया? ६२वीं गाथा है न! यह तो पहले से चौदह पूर्व चला आता है न! ६०वीं गाथा से चला आता है न! **'पूर्वं पूर्व परं जिनोक्त परमं, पूर्वं परं सास्वतं।'** वहाँ से चला आता है। प्राचीन काल से सर्वज्ञों ने चौदह पूर्व का कथन किया, उसमें सार यह आया है। तो यह सार उसे समझना चाहिए। यह तो समुच्चयसार है न। ज्ञानसमुच्चयसार। ज्ञान का पुंज आत्मा, उसके समूह का सार क्या? कि यह चौदह पूर्व में ऐसा बताया कि तू चैतन्य अखण्ड आनन्द पूर्ण है और उसका शुद्ध साधन भी करो, यह बताया है। समझ में आया? ऐई! सेठी! भारी कठिन इसमें जगत को। उसे ऐसा लगता है कि यह व्यवहार तो इसमें कहते नहीं, परन्तु

यह व्यवहार आ जाता है, उसका ज्ञान आ जाता है। समझ में आया? और यह तो विकल्परूपी व्यवहार। यह सुनते नहीं? उसमें विकल्प नहीं आता? कहते हैं कि उसमें विकल्प नहीं आता? यह लिखते समय भी विकल्प तो है ही। परन्तु साधन यह नहीं है। अन्तर जो चैतन्य ज्ञायकमूर्ति है भगवान पूर्णानन्द, उसमें लीन होना, वह उसका साधन है।

६३ (गाथा)। देखो, इसमें कहते हैं। अस्ति-नास्ति पूर्व है न पहला? चौदह पूर्व में अस्ति-नास्ति पूर्व है। चौदह पूर्व में।

अस्ति अस्तिं च सुद्धं च, आत्मनं सुधात्मनं।
परमात्मा परमं सुद्धं, अप्पा परमप्प समं बुधैः ॥६३॥

आत्मा और परमात्मा का शुद्ध स्वाभाविक अस्तित्व बना रहता है... कहते हैं कि शुद्ध परमात्मा भी सदा ही ऐसा ही रहता है और तेरा अनन्तगुण का पिण्ड स्वभाव भी ऐसा का ऐसा बना रहा है। अनादि से ऐसा का ऐसा बना रहा है, उसमें कोई अन्तर नहीं है। पर्याय में जो हीनाधिकता है, वह दूसरी बात। उसका स्वभाव जो है द्रव्य और अनन्त गुण का पिण्ड, आत्मा और परमात्मा सबका गुणरूप स्वभाव तो एकरूप बना रहा है। समझ में आया? क्या आया? क्या एकरूप बना हुआ है? अपने गुण-गुण। अपना '**आत्मनं सुधात्मनं सुद्ध अस्तिं च अस्ति**' दोनों का शुद्ध-शुद्ध वीतराग विज्ञानघन ध्रुव ऐसा का ऐसा अनादि से विराजमान है। और परमात्मा हुए, उनकी पर्याय भी प्रगट हो गयी। बाकी वह भी अस्तित्व अनादि से है और तेरा गुणरूप शुद्धस्वभाव अस्ति है, ऐसा अस्ति-नास्ति पूर्व में बताया गया है। उस अस्ति का यह स्वरूप कहा है, ऐसा कहते हैं। छह द्रव्य अस्ति है, वह तो ठीक है। नौ तत्त्व है, परन्तु तेरा वास्तविक अस्तित्व तो यह बताया है चौदह पूर्व में भगवान की ध्वनि में। अरे भगवान! एक समय की पर्याय अल्प और राग और निमित्त कर्म का लक्ष्य छोड़ दे। तेरा स्वरूप ऐसा का ऐसा भगवान जिनेन्द्ररूप पड़ा है। जिनेन्द्ररूप वीतराग विज्ञानघन ऐसा का ऐसा अनादि से बना हुआ है। कभी हीन हुआ नहीं, कभी अधिक हुआ नहीं। वस्तु में क्या है? वस्तु तो ऐसी की ऐसी पड़ी है। पर्याय में दृष्टि में अन्तर है तो हीनाधिक भासित होती है। समझ

में आया ? समझ में आया ? पण्डितजी ! यह वापस वहाँ समझेंगे नहीं, हों ! वहाँ बोलेंगे यह, रिकॉर्डिंग बोलेगी तो कहेंगे, यह क्या कहते हैं ?

आत्मा-परमात्मा के समान निश्चय से है बुद्धिमानों ने ऐसा कहा है। बुद्धिमानो कहने से सर्वज्ञ। सर्वज्ञ भगवान ने ऐसा कहा कि तेरा द्रव्य ऐसा का ऐसा पड़ा है। तू नजर कर अन्दर में। तू श्रद्धा कर अन्तर में। वस्तु तो ऐसी की ऐसी विराजमान है। विराजमान सदा सच्चिदानन्द परमात्मा तेरा ऐसा का ऐसा है। कहो, समझ में आया ? यह ६३ हुई। ६४ (गाथा)। अब परमात्मा की बात करते हैं, देखो।

नास्ति धाति कर्मस्य, नास्ति सल्यं च रागयं।
दोषं नास्ति मलं मुक्तं, नास्ति कुन्यान दर्सनं॥६४॥

पूर्ण **परमात्मा के चार घातियाकर्म नहीं हैं।** अरिहन्त भगवान जो हुए, उन्हें चार घाति नहीं। **'सल्यं च नास्ति' तीन शल्य नहीं हैं।** सर्वज्ञ परमात्मा को माया, मिथ्या, निदान शल्य नहीं। मैं भी ऐसा हूँ, ऐसा कहते हैं मूल तो। वह तो पर्याय में प्रगट हुआ। मेरा स्वभाव भी घातिकर्म रहित, शल्यरहित और राग-द्वेष से रहित है। भगवान को राग-इच्छा है नहीं, मेरा स्वभाव भी ऐसा है। **'मलं मुक्तं' सर्व मल से रहित है।** अरिहन्त को अठारह दोष नहीं। अठारह दोष नहीं। क्या-क्या दोष नहीं ? नीचे लिखा है, देखो।

इन भगवान अरिहन्त को **क्षुधा...** नहीं होती। सर्वज्ञदेव परमात्मा हों, उन्हें क्षुधा नहीं, **तृषा,...** नहीं, **जरा,...** नहीं, **मरण,...** नहीं, **जन्म...** नहीं, **रोग...** नहीं। तीर्थंकर को रोग नहीं होता। यह दूसरे सम्प्रदाय में कहते हैं न छह महीने तक रोग रहा। कैसा कहलाये ? पेचिस, पेचिस। छह महीने रहा। भगवान को (रोग) नहीं होता। वे तो पूर्ण पुण्य के पवित्रता का पुतला शरीर है। अन्तर पवित्रता से पूर्ण और यहाँ पुण्य का पुतला शरीर है। तो कहते हैं कि रोग नहीं **भय,...** नहीं, **गर्व,...** नहीं, **राग, ...** नहीं, **द्वेष,...** नहीं। **मोह,...** नहीं, **चिन्ता, खेद, स्वेद...** पसीना नहीं। **निद्रा, आश्चर्य, मद, अरति— ऐसे अठारह दोष...** से रहित हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा का स्वभाव भी अठारह दोष से रहित है। समझ में आया ? आत्मा जैसे परमात्मा और परमात्मा जैसा आत्मा। जीव, वह जिनवर और जिनवर, वह जीव। यह परमात्मप्रकाश में कहा है। परमात्मप्रकाश है

न? योगीन्द्रदेव रचित। जीव वह जिनवर और जिनवर वह जीव, उसमें किंचित् अन्तर नहीं है। भगवान आत्मा। यह पर्याय में अन्तर है, वह तो आंशिक वर्तमान दृष्टि अस्थिरता के कारण से। वस्तु में अन्तर नहीं। जैसे जिन और ऐसे जिनवर, जैसे जिनवर वैसा जीव।

भगवान को जैसे केवलज्ञान अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए तो अपने चैतन्य की बेल ऐसी है कि उसमें से अनन्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त करके (अनन्त चतुष्टय प्रगट हों), ऐसी अपनी चैतन्य वेलडी है। वेलडी समझते हो? बेल-बेल होती है न? बेल। बेल नहीं होती। यह बेल नहीं कहते वनस्पति को? लता। काशीफल नहीं होते? काशीफल होता है न? इतना-इतना काशीफल होता है। तो उसकी बेल होती है। छिलका। छिलका तो पतला होता है परन्तु उसमें से इतने अधमण-अधमण काशीफल (होते हैं)... क्या कहते हैं तुम्हारे? इतने बड़े-बड़े। बड़े होते हैं न। इतने इतने, वह बस। तो उसका वृक्ष आम के वृक्ष जैसा नहीं। आम जैसा वृक्ष नहीं। वृक्ष तो पतला है। फल ऐसे पकते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा इतने शरीर में भिन्न रहा है, परन्तु उसमें से केवलज्ञान का काशीफल पके, ऐसी आत्मा की सामर्थ्य है। समझ में आया? यह केवलज्ञान की बेलडी है। बेल-बेल-लता। भगवान केवलज्ञान, दर्शन, आनन्द की लता आत्मा है, उसमें से अनन्त ज्ञान आदि सिद्धपद पकता है। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान को राग-द्वेष नहीं। **सर्व मल से रहित है।** और **न मिथ्याज्ञान है न मिथ्या मार्ग का उपदेश है।** देखो, **'कुन्यान दर्सनं नास्ति'** नहीं कुज्ञान, नहीं कुदर्शन और मिथ्या मार्ग का उपदेश भगवान के मुख में से निकलता नहीं। अज्ञानी मिथ्या बड़ा परमेश्वर नाम धरावे, देव नाम धरावे, परन्तु उल्टा उपदेश करे। तत्त्व क्या है, सत्य की समझण नहीं तो उसे अरिहन्त परमात्मा नहीं कहा जाता। समझ में आया? एक जगह यह कल बात हुई थी न? जीवत्व नहीं? जीवत्व की बात हुई थी न? क्या है? मुर्दे समान है। किसी में है ऐसा। श्रावकाचार में? कहीं है अवश्य। यह जीव तो मृतकवत्... रात्रि में चली थी न। पृष्ठ २१९ में है। उसमें तो सब पाठ है न। २१९ है। २१६ गाथा है। क्या कहते हैं? श्रावकाचार—२१६।

संमिक्तं जस्य न पस्यंते, असार्धं व्रत संजमं।
ते नरा मिथ्या भावेन, जीवितोपि मृतं भवेत्॥२१६॥

यह आता है न? अष्टपाहुड़ में आता है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न! चलता मुर्दा। चलता मुर्दा समझे न? मृतक कलेवर। आत्मा चैतन्य भावप्राण जीवत्वशक्ति। उस जीवत्वशक्ति में ऐसा आया। अपना स्वरूप ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्राण से जीवन है। ऐसा जीवन नहीं, वह जीवत्व नहीं और जीवत्व नहीं, वह जीव नहीं। समझ में आया? सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान में अपने चैतन्य भावप्राण ऐसे श्रद्धा-ज्ञान नहीं और अकेले राग पुण्य को अपना आत्मा मानता है, तो कहते हैं कि **जिससे सम्यग्दर्शन का साधन नहीं हो सकता है।** .... सम्यग्दर्शन साधता नहीं, सम्यग्ज्ञान करता नहीं। **उससे व्रत, संयम का पलना असाध्य है।** यह व्रत और तप और संयम कर नहीं सकता। सम्यग्दर्शन बिना व्रत-तप कैसा? दुर्गादासजी!

मुमुक्षु : सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सत्य है? तो क्या मुंडाते थे सब? एकदम ले लो पंच महाव्रत और ले लो साधु। साधु होनेवाले थे। समझ में आया?

'असार्धं' असाध्य रोग नहीं होता? असाध्य रोग नहीं होता? कोई कहे भाई असाध्य है। अब कोई उपाय चलेगा नहीं। असाध्य... असाध्य... असाध्य... मर जायेगा। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन बिना व्रत-तप सब मुर्दे हैं। असाध्य है, वह साधन कर सकते नहीं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान क्या चीज़ है, उसकी कीमत, महिमा नहीं। वह किसके आश्रय से प्रगट होता है, इसकी खबर भी नहीं, तो कहते हैं कि तेरे व्रत, संयम और तप, वह सब असाध्य है, मर गये हैं, उसमें कुछ है नहीं। **'ते नरा मिथ्या भावेन' वह मानो मिथ्यात्व की भावनासहित होने से। 'जीवितोपि' जीते हुए मृतक के समान हैं।** देखो, यह अपने कुन्दकुन्दाचार्य ने अष्टपाहुड़ में लिया है। बहुत उसमें से निकालकर अपनी भाषा में, सादी भाषा में बनाया है। समझ में आया? कोई घर की बात नहीं। देखो, फिर २१८ आयी २१८।

संमिक्त सहित नरयम्मि, संमिक्त हीनो न चक्रियं।
संमिक्तं मुक्ति मार्गस्य, हीन संमिक्त निगोदयं॥२१८॥

यह आता है न भाई! उसमें योगसार में। समकित सहित नरक में जाये तो अच्छा है। योगसार है एक योगीन्द्रदेव का। योगीन्द्रदेव न? योगसार। सम्यक् आत्मा के

भानसहित कदाचित् नरक में जाना पड़े तो भी अच्छा है, परन्तु मिथ्या श्रद्धा से स्वर्ग में जाना, वह बुरा है। समझ में आया? देखो, २१८ है। क्या कहते हैं? **सम्यग्दर्शनसहित नरक में रहना अच्छा है। 'संमित्त सहित नरयम्मि'** श्रेणिक राजा नरक में हैं तो क्या हुआ? वह तो आत्मज्ञानी धर्मात्मा है। बाहर निकलकर तीर्थंकर होंगे आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होंगे। चौबीस तीर्थंकर में पहले तीर्थंकर होंगे। व्रत नहीं थे, संयम नहीं था, त्याग नहीं था, सम्यक् क्षायिकदर्शन था तो नरक में भी कहते हैं कि क्षायिक समकिती है, वह अच्छा है। सम्यग्दर्शन से शून्य **'संमित्त हीनो न चक्रियं'** है न? **सम्यग्दर्शन से शून्य, उसको कोई भी क्रिया यथार्थ नहीं है।** कोई भी क्रिया उसके संयम, व्रत, तप, यात्रा, भक्ति, पूजा, सब बिना एक के शून्य है। उसमें कुछ लाभ नहीं। कितना लिखा है, देखो, पण्डितजी! अभी तक तो चला या नहीं? उल्हाने के योग्य तो है या नहीं? दोनों साथ में बैठे हैं, पण्डित और सेठ। .... ओहो! सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग... आया न। उसकी कोई क्रिया यथार्थ नहीं है।

'संमित्तं मुक्ति मार्गस्य' यह सम्यग्दर्शन... लो, यहाँ तो भाई सम्यग्दर्शन को मुक्ति का मार्ग कहा। एक सम्यग्दर्शन, वह मुक्ति का मार्ग है। देखो! और **'हीन संमित्त निगोदयं'** और सम्यग्दर्शनरहित मार्ग निगोद में जाने का है। **'निगोदयं'** लिखा है? २१८। बहुत बात चली है उसमें। देखो, २१९।

संमित्त संजुत्त पात्रस्य, ते उत्तमं सदा बुधै।
हीन संमित्त कुलीनस्य, अकुली अपात्र उच्यते॥२१९॥

सम्यग्दर्शन से जो भी पात्र हो,... चाहे हीन भी हो, चाण्डाल भी हो। **तो भी पण्डितों ने सदा उत्तम कहा है।** देखो, **'बुधै सदा उत्तमं'** यह पण्डित। शोभालालजी! सवेरे बात चलती थी न? पण्डित, सम्यग्दृष्टि पण्डित है। मिथ्यादृष्टि ग्यारह अंग, नौ पूर्व पढ़नेवाला भी अपण्डित है। देखो!

मुमुक्षु : मूर्ख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्ख है, ऐसा कहा है। सुन तो सही, भगवान! तेरी वस्तु परमानन्द शुद्ध पूरा द्रव्य पड़ा है अनादि-अनन्त एकाकार स्वरूप। उसकी तो तू प्रतीत करता नहीं,

वर्तमान राग, पुण्य-पाप का उत्साह करके पड़ा है। उससे तुझे आत्मा का लाभ जरा भी नहीं है। कहते हैं कि उसे हम पण्डित नहीं कहते, मूर्ख कहते हैं। **सम्यग्दर्शन कोई भी पात्र चाहे ... हों..** और **'बुधै सदा उत्तमं'** सर्वज्ञ भगवान ने उसे उत्तम कहा है। **'संमिक्त हीन कुलीनस्य' उत्तम कुलवाला है परन्तु सम्यग्दर्शनरहित है।** है ? **'कुलीनस्य'** कुलीन हो, उच्च गोत्र में उपजा हो (परन्तु) सम्यग्दर्शनरहित है (तो उसे) **'अकुली अपात्र उच्यते' नीच कुली नीचपात्र कहा जाता है।** सम्यक् आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान का पहले प्रयत्न करना चाहिए, वह चीज़ क्या है, उसे सुनकर ज्ञान करके प्रयत्न करना चाहिए। उसका तो ठिकाना नहीं। करो ऐसे पहले, करो व्रत ले लो, प्रतिमा ले लो और यह ले लो। **नीच कुली नीचपात्र कहा जाता है।** कहो, समझ में आया ? फिर जरा २२० देखो। वहाँ तो और...

तिअर्थं संमिक्तं सार्धं, तीर्थंकर नाम सुद्धये।
कर्म षिपति त्रिविधं च, मुक्ति पंथ सिधं धुवं॥२२०॥

जो जीव सम्यग्दर्शनसहित है। साधन है न ? **'तिअर्थं संमिक्तं सार्धं' वही तीर्थंकर नामकर्म को बाँधकर तीर्थंकर जन्म लेता है।** सम्यग्दृष्टि। समझ में आया ? **वह जन्म आत्मा की शुद्धि के लिये होता है।** भगवान का जन्म जब तीर्थंकर हुए तो शुद्धि के लिये होता है। **वहाँ तीन प्रकार के कर्मों का क्षय कर डालता है।** सम्यग्दर्शन से तीर्थंकरपना बँधा, वह विकल्प आया इसलिए बँधा, हों ! सम्यग्दर्शन से बँधता नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन की भूमिका में जब ऐसा विकल्प षोड्शकारण, आती है न षोड्शकारण भावना ? वह तो तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। देखो ! **'तीर्थंकर नाम सुद्धये कर्म षिपति'** शुद्ध का अर्थ इतना शुद्धि में निमित्त है न, तो कहने में आया है।

कहते हैं कि **आत्मा की शुद्धि के लिये होता है।** यह नाम, यह भव। वहाँ **'त्रिविधं कर्म षिपति'** द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म तीनों का क्षय कर डालता है। सम्यग्दर्शन में जब तीर्थंकरगोत्र बँधा तो जब अवतार हुआ तो वह शुद्धि के लिये अवतार है। और उस शुद्धि के अवतार में द्रव्यकर्म में आठ कर्म, नोकर्म में शरीर, भावकर्म में राग-द्वेष—तीनों का नाश कर डालता है। कहो, समझ में आया ? पश्चात् भी लिखा है, देखो ! २२१ (गाथा)।

संमिक्तं जसय चिंतंते, बारंबारेन सार्धयं।
दोषं तस्य विनस्यंति, सिंघ मतंग जूथयं॥२२१॥

जो कोई सम्यग्दर्शन को यथार्थरूप से बारम्बार चिन्तवन करते हैं, उसको दोष नहीं देते हैं। जैसे हस्ति के झुण्ड सिंह को नहीं देखते हैं। हस्ति हजारों इकट्ठे हों तो सिंह आया हो तो भी उससे डरते नहीं। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन की बारम्बार भावना, रचना और रमणता की, वह कोई भी दोष उसके पास आ सकते ही नहीं। उसमें तो कहा है न? सम्यक्पुराण कहा है न? परमार्थपुराण। समकित है, वह फौजदार है, समकित है, वह फौजदार है। फौजदार समझते हो? पुलिस। ... गाँव का फौजदार, पुलिस का अधिकारी। तो किसी चोर को आने नहीं देता। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन किसी दोष को, राग को अपने में मिलाता नहीं। समकित अपने स्वभाव का फौजदार की भाँति रक्षण करता है। राग, विकल्प, शरीरादि मेरे हैं, उनसे रक्षण करता हे कि वे मेरे नहीं। मैं तो त्रिकाल शुद्ध अखण्डानन्द हूँ। इस प्रकार सम्यक् फौजदार अपने स्वरूप की रक्षा करता है। ६३ हुई। ६३ हुई न? कहाँ? इसमें? ६४ हुई। अब ६५ (गाथा)।

प्रन्यान पूर्व सुद्धं च, परम न्यान समागमं।
परमात्मा परमं सुधं, सुद्ध ध्यान समं बुधैः॥६५॥

यह भावना का ग्रन्थ है न, तो बारम्बार ऐसा आता है। **परमात्मा के भावों में अपूर्व अर्थात् उत्तम व शुद्ध प्रज्ञा या भेदविज्ञान है...** देखो! '**पूर्व सुद्धं च प्रन्यान**' प्रज्ञा उसे कहते हैं कि पर से भिन्न करने की सामर्थ्य, अपने में परमात्मस्वरूप प्रगट करने की ताकत। **शुद्ध प्रज्ञा या भेदविज्ञान है... 'परम न्यान समागमं' इसी से उत्कृष्ट केवलज्ञान का प्रकाश हुआ है।** भेदज्ञान से केवलज्ञान होता है। राग और विकल्प से भिन्न आत्मा को साधते-साधते केवलज्ञान होता है। कभी राग और पुण्य से और शरीर से केवलज्ञान नहीं होता। समागम है न? परम ज्ञान का समागम तब होता है।

'**परमात्मा परमं सुधं**' **परमात्मा परम शुद्ध है।** अत्यन्त निर्मलानन्द प्रभु अपना स्वभाव और पूर्ण दशा परमात्मा **शुद्ध ध्यान के समान है। अर्थात् शुद्ध आत्मिक ध्यानमय है ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है।** भगवान ने त्रिलोकनाथ परमात्मा ने अपना शुद्ध

स्वभाव है, उसे दिखलाया है। उसमें तो दूसरी बहुत बातें हैं। क्या है देखो! एक स्वाध्याय की बात की है २९४ पृष्ठ पर। इसमें, हों! २९४। स्वाध्याय किसे कहते हैं? यह स्वाध्याय-स्वाध्याय कहते हैं न? स्वाध्यायमन्दिर-स्वाध्यायमन्दिर। तो कहते हैं, स्वाध्याय किसे कहते हैं? २९४ न? स्वाध्याय, देखो। ५३९, ५३९। यह श्रावक स्वाध्याय करता है न? स्वाध्याय की व्याख्या करते हैं। श्रावक के षट्कर्म हैं या नहीं? समझ में आया?

सुधं सुध सरुवं, सुधं झायंति सुधमप्पानं।
मिच्छा कुन्यान विरयं, सुध सहावं च सुध ज्ञानत्थं॥५३९॥

स्वाध्याय तप के धारी कर्ममलरहित व रागादिरहित शुद्ध तत्त्वस्वरूप को ध्याते हैं। अपने तत्त्व को ध्याना, वह स्व-अध्याय=स्वाध्याय। स्व भगवान शुद्ध आत्मा का ध्यान करना, वह स्वाध्याय है। यह साधक की स्वाध्याय कहाँ गयी? वह तो विकल्प आता है तो स्वाध्याय उसमें कहते हैं। वास्तव में स्वाध्याय मन्दिर आत्मा है। समझ में आया? बाहर में स्वाध्याय मन्दिर है ही नहीं। रतिभाई! कैसे होगा? देखो! **कर्ममलरहित व रागादिरहित शुद्ध तत्त्वस्वरूप को ध्याते हैं।** ध्याते हैं। स्वाध्याय है न? स्व-अध्याय ध्यान।

और **'सुधं सुधमप्पानं झायंति' व परम शुद्ध आत्मा को ध्याते हैं। 'मिच्छा कुन्यान विरयं' मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान से विरक्त होकर...** मिथ्या श्रद्धा, मिथ्या ज्ञान, राग से विरक्त होकर स्वरूप के अन्दर, वह अन्दर में स्वरूप का ध्यान करता है। यह **शुद्ध ध्यान में तिष्ठते हुए शुद्ध आत्म स्वभाव को पाते हैं।** उसे स्वाध्याय कहते हैं। यह हमेशा रिवाज है न कि श्रावक के षट्कर्म में स्वाध्याय करो, पश्चात् यहाँ कोई आता है न। मन्दिर में दर्शन करे, फिर ... दस मिनिट वाँच ले। स्वाध्याय हो गयी। संकल्प किया। धर्मचन्दजी! ऐसा चलता है या नहीं तुम्हारे? एक पन्ना फिरावे बस। एक पन्ना फिरावे। स्वाध्याय हो गयी। षट्कर्म में देवदर्शन हो गये, गुरु सेवा हो गयी। जो कोई मिले उस साधु को आहारदान दिया। यह स्वाध्याय हो गयी। संयम किया जरा थोड़ा नहीं खाना एक दिन दो-चार ग्रास... थोड़ा दान करना। एकाध किसी व्यक्ति को जिमा देना। लो, हो गये हमारे षट्कर्म। यह षट्कर्म तो अशुद्ध है। शुभभाव होवे तो भी अशुद्ध है। समझ में आया? यह भी आगे कहा है, हों!

षट्कर्म के शुद्ध-अशुद्ध दो भाग किये हैं तारणस्वामी ने। तारणस्वामी ने शुद्ध और अशुद्ध ऐसे षट्कर्म के दो भाग किये हैं। जितना शुभभाव आता है, उतना अशुद्ध कर्म है और अन्तर के स्वरूप की एकाग्रता का स्वाध्याय आदि करना, वह शुद्ध षट्कर्म है। समझ में आया? धर्मचन्दजी! परन्तु इस निश्चय के बिना व्यवहार होता नहीं। यह कल आया था न? जलगालन में नहीं आया था? ... पहले सम्यग्दर्शन हो, पश्चात् वह क्रिया जलछानन आदि के शुभराग को व्यवहार कहा जाता है। पहले व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, ऐसी जैनदर्शन में श्रद्धा नहीं है। अभी बहुत लोग कहते हैं न? देखो न, कल भी आया ऐसा करो... ऐसा करो... व्यवहार साधन करो, कुछ क्रिया करो, कुछ क्रिया करो, वरना निष्फल जायेगा। ऐसा उपदेश देते हैं। क्या क्रिया तेरी? अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुण की जो परिणति की क्रिया चले, वह क्रिया नहीं? क्या राग की क्रिया और देह की क्रिया में अन्तर पड़े तो क्रिया तुझे दिखती है? समझ में आया?

भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी अन्तर में रुचि में अनन्त गुण की धारा बहती है, पर्याय, वह आत्मा की क्रिया और मोक्ष का मार्ग है। बाहर में कहाँ क्रिया रहती है? वह बाहर की एक प्रतिमा, दो प्रतिमा, चार प्रतिमा। प्रतिमा कहीं सहज आती है या हठ से आती है? दो प्रतिमा ली, दो। क्या प्रतिमा है? प्रतिज्ञा ली कि स्वरूप में अभी नहीं जाना। समझ में आया? तुझे स्वरूप की भावना हो तो तेरी भूमिका की तुझे खबर हो कि मेरी भूमिका की क्या मर्यादा है? मेरे पुरुषार्थ की गति का वेग कितना चलता है? उसकी तो इसे खबर होनी चाहिए। खबर तो नहीं। हठ से ले लिया। इसका अर्थ कि प्रतिज्ञा ली, अन्दर स्वस्वभाव क्या है, उसमें जाना नहीं। समझ में आया? वह भी क्षुल्लक हुए थे न तुम्हारे? कहो, देखो! पीछे भी ५४० में है।

सुधं जिनेहि उत्तं, असुधं संसार सरनि विरोदयं।
सुधं परमानंदं, सुध सहावं च निम्मलं सुधं॥५४०॥

इसे स्वाध्याय कहते हैं। '**जिनेहि उत्तं**' देखो, ऐसा कहा है। ओहोहो! बोधपाहुड है न एक अष्टपाहुड में। कुन्दकुन्दाचार्य का बोधपाहुड है। तो उसमें ११ बोल। ग्यारह बोल हैं न? ग्यारह बोल सब निश्चय के लिये हैं। प्रतिमा, जिन, मुनि, चैत्य... समझ में

आया ? चैतावास सब आत्मा, सब आत्मा। बोधपाहुड में लिया है कि हमारा आत्मा ही मुनि, भावलिंगी सन्त वही चैत्य है। भावलिंगी मुनि, वही जिनवर की प्रतिमा-मूर्ति है। सेठी! हमारा आत्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति की ओर झुक गया है, तो कहते हैं कि हम ही भगवान की मूर्ति हैं। भगवान की मूर्ति आत्मा है। समझ में आया ? बाहर से, उपचार से, व्यवहार से निमित्त है, परन्तु यह समझे बिना तेरे निमित्त का व्यवहार भी सच्चा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... है न परन्तु स्वयं। वीतरागस्वरूप की दृष्टि बिना, चैतन्यमूर्ति हुए बिना कहाँ से आयेगा ? यह स्वाध्याय की बात हुई। कहाँ आया ? ज्ञानसमुच्चयसार है। उसमें स्वाध्याय आयी न ? सत् की व्याख्या तो आ गयी। और एक है ४९ पृष्ठ सत् की आँख। देखो! सच्ची आँख। ४९ पृष्ठ पर है। यह ९२ गाथा है, ९२। ९ और २। यह (जड़) आँख नहीं।

न्यानं च दर्सनं सुधं, न्यानं चरन संजुतं।
न्यानं सह तपं सुधं, न्यानं केवल लोचनं॥९२॥

९२ गाथा है न, ९२। है या नहीं ? ९२। ९२। ९० और २। '**न्यानं च दर्सनं सुधं**' क्या कहते हैं ? **निश्चय सम्यग्ज्ञान व निश्चय सम्यग्दर्शन शुद्ध दर्शन व शुद्ध ज्ञान हैं।** अपनी शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वही ज्ञान है और सम्यग्ज्ञानसहित चारित्र शुद्ध सम्यक्चारित्र है। ऐसे सम्यग्ज्ञानसहित जो शुद्ध (स्वरूप में) रमणता, वह चारित्र है। **सम्यग्ज्ञानसहित तप शुद्ध है।** सम्यग्ज्ञान हो तो तब इच्छा का निरोध होकर आनन्द का अनुभव होता है, वह तप शुद्ध है। वरना तो भूखों मरता है। लंघन है। उसमें कुछ लाभ नहीं। यह सबमें लिया है। '**न्यानं च दर्सनं सुधं**' ज्ञान भी निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय सम्यग्दर्शन, शुद्ध दर्शन और शुद्ध ज्ञान है। और ज्ञान के साथ तप होता है, अन्तर आनन्द का अनुभव, वह तप है।

'**न्यानं केवल लोचनं**' **आत्मज्ञान ही केवल आत्मा की सच्ची आँख है।** है ? वह आँख है। यह आँख नहीं, विकल्प नहीं। आत्मा शुद्ध चैतन्य का भान अन्तर ज्ञान करना, वही सच्ची आँख है। उस आँख बिना यह आँख हो तो भी उसे अन्ध कहा जाता है।

समझ में आया? मिथ्याज्ञानी जीव को सच्ची आँख हो तो भी अन्ध कहा जाता है और शरीर की आँख में अन्ध हो तो भी आत्मज्ञान का लोचन हो तो उसे सच्चा लोचन कहते हैं। आहाहा!

नरक योनि में तो बहुत दुःख है। आँख भी सुलग जाती है। आँख भी सुलग जाती है। अग्नि में डालते हैं न परमाधामी? तो सुलग जाती है। अन्दर आँख है। श्रेणिक राजा पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं। आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होकर मोक्ष जानेवाले हैं। अन्दर में जरा अग्नि की पीड़ा से ऐसे आँख भी जीर्ण हो जाती है, रस होकर नाश हो जाती है। अन्दर आत्मज्ञान का लोचन खिल गया है तो देखते हैं। और ग्यारह अंग पढ़नेवाला और नौ पूर्व पढ़नेवाला मिथ्याचारित्र और मिथ्या क्रिया करनेवाला, उसे अन्तर का आत्मज्ञान नहीं तो उसे अन्ध कहा जाता है।

सच्चा ज्ञाननेत्र यह आया न अपने? चक्खु। प्रवचनसार। लो! प्रवचनसार में आया है। आगम चक्खु साहु। मुनि को अन्तर की... आगम शब्द से शास्त्र नहीं, हों! अन्तर में भावआगम। भावश्रुतज्ञान की आँख। प्रवचनसार में लिया है। साधु को भाव— आँख है। केवली को सर्वचक्षु है। सर्वज्ञ परमात्मा असंख्य प्रदेश में अनन्त सूर्य खिल गये हैं तो उन्हें सर्वचक्षु कहा जाता है। बाकी स्वर्ग के देव भी इन्द्रिय चक्षुवाले हैं और भावश्रुतज्ञानवाले को भावचक्षु कहा जाता है। वह आँखवाला है, बाकी आँखवाले हैं नहीं। कहो, समझ में आया? यह सब इसमें लिया है, हों! '**व्रिथा भवेत्**' देखो, यह ९४ में देखो।

अनेय स्त्रुत जानाति, व्रत तप क्रिया अनेकधा।
अनेय कस्ट कर्तव्यं, न्यानहीतो व्रिथा भवेत्॥९४॥

है ९४? क्या कहते हैं? **जो कोई आत्मज्ञान से शून्य है, वह यदि बहुत से शास्त्रों को जानता है।** है न? '**स्त्रुत जानाति**' '**अनेकधा व्रत तप क्रिया**' **अनेक प्रकार व्रत, तप, व आचरण पालके... 'अनेय कस्ट कर्तव्यं' बहुत कष्ट सहता है तो भी वह सब... 'व्रिथा भवेत्' निरर्थक चला जाता है, मोक्षसाधक नहीं होता है।** समझ में आया? अपना सम्यग्ज्ञान-दर्शन परमात्मस्वरूप के भान बिना तेरे व्रत, शास्त्र वाँचना

और तेरी आचरण क्रिया सब व्यर्थ है। अज्ञानरूपी पाडा सब खा जाता है। अब यह कहे वह नहीं। बाहर की क्रिया कुछ हो, प्रतिमा हो, ऐसा खाये, ऐसा पीवे, ऐसा करे, वैसा करे तब तो उसे क्रिया गिनने में आता है। यहाँ कहते हैं कि उस क्रिया को हम क्रिया नहीं कहते। कहो, समझ में आया? ६४ हुई न?

६५-६५। ६५वीं चली। क्या कहा? ६५ में क्या कहा? कि **परमात्मा के भावों में अपूर्व अर्थात् उत्तम व शुद्ध प्रज्ञा या भेदविज्ञान है, इसी से उत्कृष्ट केवलज्ञान का प्रकाश हुआ है। परमात्मा परम शुद्ध है, शुद्ध ध्यान के समान है।** अपना ध्यान, वह भी आत्मा है, ऐसा कहते हैं। ध्यान में और आत्मा में कुछ अन्तर नहीं है। अन्तर धर्मध्यान, शुक्लध्यान, एकाकार स्वभाव को कहते हैं। यह ६५ गाथा में आया।

अब यह प्रत्याख्यान पूर्व में क्या कहा, यह बताते हैं। भाई! शास्त्र में प्रत्याख्यान पूर्व में चला है न, चौदह पूर्व में? उसमें क्या है? प्रत्याख्यान क्या है? प्रत्याख्यान, त्याग। बहुत सरस बात की है, देखो!

प्रत्याष्यानं च पूर्वं च, परोष्यं प्रत्यष्यं धुवं।
प्रत्याष्यानं ममलं सुधं, कर्मं खिपति बुधै जनैः ॥६६॥

प्रत्याख्यान नाम का चौदह पूर्व में एक पूर्व है। तो उस पूर्व में जिनेन्द्र ने क्या कहा है? **प्रत्याख्यान नामा पूर्व में परवस्तु के त्याग का वर्णन है।** परवस्तु के त्याग का वर्णन है। **'परोष्यं प्रत्यष्यं' यह त्याग परोक्ष व प्रत्यक्ष दो प्रकार का है,...** देखो, राग की मन्दता होकर अशुभराग छूटे, वह परोक्ष त्याग है और अपने स्वभाव में रागरहित स्थिरता, वह प्रत्यक्ष त्याग है। समझ में आया? यह और त्याग कैसा? है? देखो, प्रत्यक्ष अर्थात् निश्चय और परोक्ष अर्थात् व्यवहार। अपने स्वरूप में विकल्प पुण्य-पाप की वृत्ति से रहित ज्ञान में जम जाना।

यह ३४वीं गाथा में आता है न, समयसार (में)। प्रत्याख्यान किसे कहते हैं? कि ज्ञानस्वरूप ज्ञान में जम जाये, उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। आत्मा राग का त्याग करता है, ऐसा भी आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। राग का त्याग करना, ऐसा आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। वह तो ज्ञानमूर्ति प्रभु है, वह ज्ञान में जम जाता है, वही प्रत्याख्यान है।

वह निश्चय त्याग है और निश्चय प्रत्याख्यान है। और व्यवहार है, वह निश्चय हो तो साथ में व्यवहार, व्यवहार त्याग, व्यवहार प्रत्याख्यान, मुनि ... चार आहार का त्यागादि करता है। ऐसा विकल्प शुभराग होता है, परन्तु '**प्रत्याष्यानं ममलं सुधं**' बात यह है। यह **प्रत्यक्ष त्याग निर्मल शुद्ध है।** यह व्यवहार विकल्प व्यवहार प्रत्याख्यान आया, वह शुद्ध नहीं। देखो! निश्चय-व्यवहार की बात। दोनों की बात की और एक का फल बतायेंगे। उसकी बात नहीं (करे)। भले दो प्रकार का प्रत्याख्यान कहा परन्तु फल तो एक निश्चय प्रत्याख्यान से ही मोक्ष होता है। व्यवहार प्रत्याख्यान का फल क्या है? बन्ध है। यह तो यहाँ बताया नहीं। भगवान ने ऐसा कहा। भगवान ने तो मोक्ष का मार्ग निश्चय प्रत्याख्यान एक बात, उसका फल मोक्ष है। समझ में आया?

देखो, '**प्रत्याष्यानं ममलं सुधं**' जो स्वरूप में स्थिरता होती है आनन्द और शान्ति, चारित्र, वह तो मलरहित है और शुद्ध है। अस्ति-नास्ति की है। मलरहित है और शुद्ध अस्ति की है। मल है नहीं और शुद्ध है। '**कर्मं खिपति बुधै जनैः**' **यह बुद्धिमानों के कर्मों का क्षय करता है।** इस प्रकार कर्म का क्षय होता है, बाकी व्यवहार तप से... निश्चय सम्यग्दृष्टि को निश्चय प्रत्याख्यानवाले को व्यवहार प्रत्याख्यान से कर्म खिरते नहीं, ऐसा कहते हैं। अपने स्वरूप की स्थिरतारूप चारित्र होता है, उससे कर्म खिरते हैं, इसके अतिरिक्त खिरते नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक - ०१-१०-१९६२
गाथा - ६७ से ७३, ८८, ५२८, ५३९
प्रवचन-७

ज्ञानसमुच्चयसार, इसकी ६७ वीं गाथा है। यहाँ अधिकार चौदह पूर्व है न, उस पूर्व को अध्यात्म में उतारा है। चौदह पूर्व में एक-एक पूर्व में क्या कहा है। समझ में आया? पूर्व तो वर्तमान में नहीं। चौदह पूर्व तो विच्छेद हो गये हैं, परन्तु चौदह पूर्व में कहा क्या है एक-एक पूर्व में? यह बात यहाँ कहते हैं। ६७ (गाथा)।

नन्तानंत स्वयं दिस्टं, धरयंति धर्म, धुवं।
धर्म सुक्लं च ध्यानं च, सुध तत्त्वं सार्धं, बुधैः ॥६७॥

बुद्धिमान भेदज्ञानी... धर्मात्मा ने पूर्व में क्या कहा है? वह अन्दर क्या साधता है? कि **बुद्धिमान...** सम्यग्ज्ञानी विचिक्षण उसे कहते हैं कि **भेदज्ञानी शुद्ध आत्मतत्त्व...** पुण्य व्यवहार से पृथक् अपना शुद्ध परमात्मस्वरूप है, उसका साधन करता है। वह साधन पूर्व में बताया है। चौदह पूर्व में वह बताया है। पण्डितजी! चौदह पूर्व में वह बताया है, ऐसा कहते हैं। दूसरी जानने की बात अनेक हो, परन्तु आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसकी अन्तर में एकाग्र होकर राग से, पुण्य से, व्यवहार से, निमित्त से, मन से हटकर स्वभाव का अन्तर साधन करता है, उसे साधक, चौदह पूर्व में उसे साधक कहा गया है। समझ में आया?

देखो, यह लोग कहते हैं न कि व्यवहार और निश्चय दोनों समान हैं, समकक्षी हैं। ऐसा नहीं है। व्यवहार तो शुभराग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पुण्यभाव, भक्ति, पूजा, व्रत, नियम, तप—ऐसा शुभराग आता है, वह वास्तव में स्वरूप का साधन चौदह पूर्व में कहा नहीं। समझ में आया? शुभराग है, पुण्यबन्ध का कारण है, परन्तु चौदह पूर्व में एक-एक पूर्व के अन्दर अपना आत्मा पर से रहित अपना शुद्ध चैतन्य भगवान, ज्ञान से ज्ञान को अन्दर जोड़ना और उसका साधन करना, वही धर्मध्यान और शुक्लध्यान का अभ्यास है। वह धर्मध्यान है। समझ में आया? कोई शुभभाव को धर्मध्यान कहते है न? शुभभाव को व्यवहार से कहते हैं, परन्तु वह वास्तव में धर्मध्यान नहीं। आत्मा

का चिन्तन, विकल्प आता है शुभराग, वह वास्तव में धर्मध्यान नहीं है। उपचार से धर्मध्यान कहते हैं। कब? कि जब स्वभाव का साधन निश्चय का धर्मध्यान हो तो। निश्चय का स्वभाव साधन न हो तो शुभराग को उपचार से भी धर्मसाधन का आरोप नहीं आता। समझ में आया? बहुत समझने की चीज़ है। शोभालालजी! कहो, क्या कहते हैं?

धर्मध्यान व शुक्लध्यान का अभ्यास है, उस ध्यान में... 'नन्तानंत स्वयं दिस्टं' अनन्तानन्त गुणों का धारी... देखो, दोपहर में चलता है न। अनन्तानन्त शक्तियों का धारी, अनन्तानन्त गुणों का धारी अपना **आत्मा स्वयं अनुभव में आता है।** उसे चौदह पूर्व में कहा है कि उसे हम साधक कहते हैं। समझ में आया? ....लालजी! यह व्यवहार की क्रिया-ब्रिया साधन निमित्त से, आरोप से कही जाती है, परन्तु वह निश्चय साधन अन्तर में हो तो। वह साधन न हो तो राग को व्यवहार साधन का भी उपचार नहीं आता। समझ में आया?

'**नन्तानंत स्वयं दिस्टं**' है न? '**दिस्टं**' है, हों! '**दिस्टं**' '**दिस्टं**' वह पहले... आ गया। ... अर्थात् धर्म है न! अनन्तानन्त स्वयं अपने अन्तर स्वरूप का राग से लक्ष्य छोड़कर चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप, देखो! राग का भी आधार नहीं। राग आता है न शुभराग? मैं आत्मा हूँ, यह ज्ञान है, मैं आनन्दवाला हूँ—ऐसा जो विकल्प है, उसका भी स्वभाव साधन में आधार नहीं, स्वभाव साधन में आधार नहीं। ऐसे अन्दर धर्मध्यान को भगवान ने चौदह पूर्व में ध्यान निश्चय आत्मधर्म में स्थापित किया है कि अपने स्वरूप में स्थिर हो, उसे धर्मध्यान और साधक कहा जाता है। कहो, समझ में आया? सेठी!

एक इसमें है, दूसरे में नहीं। प्रायश्चित्त का अधिकार है न, भाई! पृष्ठ २८८ है, देखो। २८८। प्रायश्चित्त की व्याख्या बहुत अच्छी की है। २८८ है न! प्रायश्चित्त ५२८ श्लोक है ज्ञानसमुच्चयसार का (श्लोक है)। .... ५२८ श्लोक। ५२८, देखो क्या कहते हैं? यहाँ कहते हैं न यह? कि अन्दर आत्मा के स्वरूप को देखना, शुद्ध अनन्त आनन्द शक्ति का भण्डार भगवान के ऊपर लक्ष्य करके अपने परिणाम को आत्मा की ओर झुकाना, निर्मल परिणाम को। उसी साधन को भगवान साधकजीव को धर्मी कहते हैं। बीच में रागादि विकल्प होता है, परन्तु वह वास्तव में साधक नहीं। तो कहते हैं प्रायश्चित्त में, देखो! गाथा आयी? ५२८।

प्राच्छितं नहु पिच्छदि, अप्राच्छितं सुध परमप्पानं।
मिच्छा मयं न दिस्टदि, सुध सहाव सरुव पिच्छंति॥५२८॥

क्या कहते हैं? **'प्राच्छितं नहु पिच्छदि' जो प्रस्तुत अर्थात् प्राप्त शरीरादि पदार्थ व कर्मादि उनको नहीं देखता है...** देखो! प्रस्तुत अर्थात् जो खास बाहर में दिखते हैं। शरीर, वाणी, कर्म, पुण्य, दया, दान, विकल्प राग, वह सब प्रस्तुत। बाहर के पदार्थ जो दिखते हैं, उन्हें तो धर्मी देखता नहीं। समझ में आया? क्या कहते हैं? उसका आश्रय नहीं करता। **जो प्रस्तुत अर्थात् प्राप्त शरीरादि पदार्थ व कर्मादि उनको नहीं देखता है...** परन्तु **'अप्राच्छितं सुध परमप्पानं' जो वर्तमान में प्राप्त नहीं है, ऐसे परम शुद्ध आत्मा की ओर ध्यान लगाता है।** क्या कहते हैं? यह प्रगट का आश्रय नहीं करता। प्रगट शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के भाव, वे प्रगट हैं, वह प्रस्तुत है, उसका तो विचार, उसका तो आश्रय नहीं करता।

'अप्राच्छितं सुध परमप्पानं' परन्तु अप्रस्तुत अर्थात् व्यक्त प्रगट नहीं, ऐसा शुद्ध भगवान अनन्त गुण का धारी आत्मा, उसका **'सुध परमप्पानं'** ध्यान करता है। **ऐसे परम शुद्ध आत्मा की ओर ध्यान लगाता है।** समझ में आया? प्रस्तुत नहीं कहते भाई? क्या यह बाहर में अपने शब्द चलता है न? मौजूद। यह प्रस्तुत चलता है न। भाषा चलती है यहाँ। प्रस्तुत नहीं? यह चालू। यह प्रस्तुत वार्ता है, प्रस्तुत बात है, प्रस्तुत बात है, ऐसा अपने भाषा में चलता है। यह चालू और अप्रस्तुत अर्थात् नहीं चालू। ऐसा यहाँ कहते हैं। देखो, यहाँ तारणस्वामी ५२८ श्लोक में प्रायश्चित्त का स्वरूप कहते हैं। प्रायश्चित्त उसे कहते हैं और धर्म के साधक उसे कहते हैं कि **'प्राच्छितं नहु पिच्छदि'** जो चलती बात अनादि से पुण्य राग, दया, दान, देहादि की क्रिया को तो देखता नहीं, उसकी श्रद्धा नहीं करता, उसका आश्रय नहीं करता। समझ में आया?

भाई! ऐसा कहते हैं कि अनादि का चला आता है यह प्रस्तुत। ऐसा कहते हैं। यह ४१३ गाथा में है न! ४१३ समयसार। वे कहते हैं या नहीं? व्यवहार है न व्यवहार, वह व्यवहार करे। अरे! व्यवहार तो तेरा अनादि का प्रस्तुत चला आता है। समयसार की ४१३वीं गाथा में आया है कि राग की मन्दता-तीव्रता... मन्दता-तीव्रता... मन्दता-

तीव्रता, यह तो अनादि से चली आती है, इसमें कुछ नयी बात नहीं है। कषाय की मन्दता हो, शुभराग हो, व्यवहार श्रद्धा आदि राग हो, वह तो अनन्त काल से ऐसी बात नौवें ग्रैवेयक गया तो भी की थी। तो प्रस्तुत अर्थात् चली आती जो पर्याय राग की, पुण्य की, दया की, विकल्प की, शरीर की, वाणी-मन की, इन सबका सम्यग्दृष्टि आश्रय नहीं लेता। समझ में आया? देखो! ५२८ में है। है न पण्डितजी!

'**प्राच्छितं नहु पिच्छदि**' प्रस्तुत अर्थात् वर्तमान प्राप्त, बाहर प्रगट राग, पुण्य, विकल्प व्यवहार का तो आश्रय लेता नहीं अथवा देखता नहीं, उसके ऊपर दृष्टि देता नहीं। '**अप्राच्छितं सुध परमप्पानं**' परन्तु अनादि काल का अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है, जो प्रगट वर्तमान में पर्याय में प्रगट नहीं। **ऐसे परम शुद्ध आत्मा की ओर ध्यान लगाता है।** समझ में आया? वे कहे कि नहीं। व्यवहार और निश्चय दोनों समान हैं। निमित्त और उपादान दोनों समान हैं। यहाँ कहते हैं कि शुद्ध उपादान स्वयं से साधन करता है, उसमें निमित्त बिल्कुल समान नहीं। विकल्प-राग वह निमित्त है। व्यवहाररत्नत्रय वह विकल्प निमित्त है। वह निमित्त कुछ भी अपने में यह प्रस्तुत रागादि अनादिकाल से चला आता है, वह त्रिकाल चैतन्य में अप्रस्तुत जो स्वभाव प्रगट नहीं, उसका आश्रय करने में वह (विकल्प) काम नहीं करता। शुभराग के आश्रय से अपने स्वभाव का काम हो, ऐसा कभी तीन काल में नहीं होता। महेन्द्रजी! समझ में आया?

देखो! यह ज्ञानसमुच्चयसार में ५२८ श्लोक है। समझ में आया? तो कहते हैं '**मिच्छा मयं न दिस्टदि**' और जो **मिथ्यात्व व मद को नहीं देखता है।** '**मिच्छा मयं**' अभिप्राय (रखता है कि) राग से मुझे लाभ होगा, पुण्य से मुझे लाभ होगा, बाह्य क्रिया से मुझे लाभ होगा, ऐसे मिथ्यात्व मद को देखता नहीं। **शुद्ध आत्म-स्वभाव के द्वारा जो अपने स्वरूप को देखता है, वह प्रायश्चित तप पालता है।** ऐसी मिथ्या श्रद्धा छोड़कर अपने शुद्ध स्वभाव का साधन करता है, देखता है, उसे भगवान प्रायश्चित्त तप कहते हैं। समझ में आया? बारह प्रकार में आता है न। संसरण, इन्द्रिय, प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, सज्झाय प्रायश्चित आता है न? अभ्यन्तर तप। तो प्रायश्चित अभ्यन्तर तप कहते हैं किसे? वह अभ्यन्तर शब्द आया न भाई? तो वे बाह्य जो प्रस्तुत हैं, उन्हें छोड़ दिया उसका ऐसा अर्थ निकाला। अभ्यन्तर प्रायश्चित्त का अर्थ ऐसा निकाला कि बाह्य

में जो शुभरागादि वर्तते हैं, वह प्रस्तुत अनादि से चला आता है। उसे छोड़कर अप्रस्तुत जो अभ्यन्तर चैतन्य अनन्त गुण का धारी भगवान आत्मा है, उसकी लय लगावे, उसकी ओर आत्मा की पर्याय को जोड़ता है, उसे भगवान प्रायश्चित कहते हैं। उसका नाम सच्चा प्रायश्चित और प्रायश्चित का तप कहा जाता है। समझ में आया? **'मिच्छा मयं न दिस्टदि'** मिथ्या अभिप्राय को और मिथ्या अभिप्राय के आश्रय से लाभ होता है, ऐसा देखता नहीं। **'सुध सहाव सरुव पिच्छंति'** लो! फिर दूसरी गाथा है, उसमें थोड़ी।

रागादि दोस रहियं, धम्म ज्ञान झायंति तं मुनिना।
कुन्यान सल्य रहियं, रुवत्थं सरुव ज्ञानत्थं॥५२९॥

मुनि महाराज... अथवा धर्मात्मा **रागादि दोषों से रहित उस धर्मध्यान को ध्याते हैं।** उस राग-विकल्प से रहित अन्तर स्वभाव शुद्ध निर्विकल्प, निर्विकल्प—विकार / रागरहित चैतन्य पुंज पड़ा है, जिसमें मिथ्याज्ञान नहीं, **न कोई शल्य है। जो अपने स्वरूप के ध्यान में स्थिरता रूप है उसे... 'रुवत्थं' उसे ही रूपस्थ ध्यान कहते हैं।** यह रूपस्थ ध्यान। अपना स्वरूपरूप पड़ा है, उसमें एकाग्र होना, उसे रूपस्थ ध्यान कहते हैं। लो! यहाँ तो प्रस्तुत जरा शब्द आया न? समझ में आया? अभ्यन्तर, वहाँ से उठाया है। वह बाहर है न अनशन, ऊनोदर, रसपरित्याग। प्रायश्चित अभ्यन्तर। तो अभ्यन्तर के दो अर्थ किये हैं। जितना अनादि काल से शुभाशुभ राग और शरीर आदि प्राप्त संयोग प्रस्तुत है, उसका लक्ष्य, रुचि, आश्रय छोड़कर अप्रस्तुत जो अभ्यन्तर आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा धारी है, उसकी दृष्टि लगाकर साधन करता है, उसे भगवान तप और प्रायश्चित कहते हैं। उसने अनन्त संसार के पाप को छेद डाला। समझ में आया? उस पुण्य को भी छेदना, इसका नाम प्रायश्चित है। यह ६७ गाथा हुई। चलती गाथा। ६८ (गाथा)।

वेदंति वेद वेदांगं, वेदंते भुवनत्रयं।
तिअर्थं रत्नत्रयं सुधं, विद्यमान लोकं धुवं॥६८॥

विद्यानुवाद है भाई! यह विद्यानुवाद आता है न? चौदह पूर्व में एक विद्यानुवाद पूर्व आता है। तो कहते हैं, विद्यानुवाद किसे कहना? उस विद्या में क्या कहा है? विद्यानुवाद एक पूर्व है, तो उसमें कौनसी विद्या कही गयी है? तो कहते हैं।

वेदंति वेद वेदांगं, वेदंते भुवनत्रयं।
तिअर्थं रत्नत्रयं सुधं, विद्यमान लोकं धुवं॥६८॥

देखो! विद्या में से विद्यमान लोक निकाला। **आत्मिक श्रुतज्ञान विद्या...** उसे विद्या कहते हैं। लौकिक विद्या और शिक्षा की विद्या को विद्या नहीं कहते हैं। यह संसार की होशियारी... डाहपण को क्या कहते हैं? शायनपना। शायनपना कहते हैं न? यह तुम्हारी होशियारी है न तम्बाकू में बहुत है। उसे यहाँ विद्या नहीं कहते। ...लालजी! होशियार है न उसमें? बराबर तम्बाकू की जाँच करे, ऐसा है और वैसा है। उसकी डिब्बी सड़ी हुई नहीं, पत्ता अखण्ड है और धूल है। है तो सब धूल न? कहते हैं कि उसकी होशियारी को हम विद्या नहीं कहते। और मात्र शास्त्र पढ़ा हो, उसे भी हम विद्या नहीं कहते। समझ में आया? विद्यमान विद्यते इति विद्यमानः। विद्यमान आत्मा अनन्तगुण का धारी है, उसका आत्मज्ञान करता है, उसे आत्मज्ञान, श्रुतज्ञान को विद्या कहा जाता है। समझ में आया? प्रत्येक शब्द को अध्यात्म में घटित किया है। अध्यात्म की....

आत्मिक श्रुतज्ञान विद्या या केवलज्ञान विद्या... दो प्रकार की विद्या। विद्यमान त्रिकाल भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव अपना निर्मल परमात्मा राग से रहित, उसका ज्ञान वह श्रुतज्ञान, वह विद्या और या केवलज्ञान पूर्ण दशा, वह विद्या।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन प्रकार कहे न! यह श्रुतज्ञान और केवलज्ञान विद्या। यह संसार के तुम्हारे जवाहरात की विद्या, विद्या नहीं—ऐसा कहा। उसे निकाल दिया। वह तो नहीं, परन्तु मात्र शास्त्र का अभ्यास करना और स्वरूप का ज्ञान न करना, वह भी विद्या नहीं। समझ में आया? तुमको होशियार कहा जाता है? कि नहीं। धर्मात्मा कहते हैं कि वह शयाना नहीं है, वह विद्यावान नहीं है। क्योंकि वह विद्या तो नाशवान है। अविनाशी आत्मा की विद्या बिना का ज्ञान, सब अविद्या कहा जाता है। साविद्या या विमुक्तये। या विद्या सा... जो विद्या अपनी मुक्ति में काम करे, उसे विद्या कहा जाता है। विद्यालय में लिखते हैं। देखा है? बड़े-बड़े विद्यालय होते हैं न। क्या लिखे? 'सा विद्या या विमुक्तये।' उसे विद्या कहते हैं कि जिसमें आत्मा की मुक्ति हो। बन्धन से मुक्ति हो, उसे विद्या कहा जाता है। विद्यालय में लिखते हैं, परन्तु उन्हें भी खबर नहीं।

समझ में आया ? तो कहते हैं, देखो ! भगवानजीभाई ! लो, यह संसार की कपड़ा-बपड़ा की होशियारी, वह विद्या नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह गजब भाई ! संसार की बड़ी समझण, दुनिया में चतुर। डाह्या अर्थात् शयाना। दुनिया का शयाना हो, सामने पूछनेयोग्य। पूछो भाई इस सेठ को। बहुत बुद्धिवाला और ऐसा है। यह शयाना-बयाना नहीं। यह तो पागल है। तो (विद्या) क्या है ? **आत्मिक श्रुतज्ञान विद्या...** आत्मा का अन्दर ज्ञान करना, वह विद्या। क्यों ? विद्यमान त्रिकाल पदार्थ का ज्ञान हुआ तो उस ज्ञान को विद्या कहा जाता है।

'वेद वेदांगं, वेदंते' द्वादशांग वेद व उसके अंग प्रत्यंग को जानती है। देखो ! वह सम्यग्ज्ञान बारह अंग को जानता है और उसके अंग-प्रत्यंग सबको जानता है। श्रुतज्ञान की विद्या अपने आत्मा में से उत्पन्न हुई। त्रिकाल पदार्थ जो अविनाशी भगवान विद्यमान त्रिकाल मौजूद, मौजूद में से निकालकर सम्यग्ज्ञान हुआ, वह बारह अंग को जानता है। क्या कहते हैं ? 'सब आगमभेद सो उर बसे।' ऐसी आत्मज्ञान विद्या श्रुत। समस्त बारह अंग में क्या कहा है, उसका ख्याल आ जाता है, कुछ बाकी नहीं रहता। **द्वादशांग वेद व उसके अंग प्रत्यंग...** अन्तर्भेद है न सब ? उसके पद हैं।

'भुवनत्रयं वेदंते' लो ! विद्या कही न श्रुतज्ञान ? **तीन भुवन को जानती है।** विद्या। तीन लोक को (जाननेवाला) सम्यक् श्रुतज्ञान विद्या। आत्मा का ज्ञान है, वह तीन लोक क्या है, उसे जानता है। **'रत्नत्रयं सुधं अर्थं' रत्नत्रयमयी शुद्ध आत्म पदार्थ को...** लो ! **रत्नत्रयमयी शुद्ध आत्म पदार्थ को...** उसे भी श्रुतज्ञान विद्या जानती है। मैं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित आत्मा हूँ, ऐसा श्रुतज्ञान उसे जानता है। अब अन्तिम शब्द कहा। **'ध्रुवं विद्यमान लोकं'** जो **निश्चल अस्तिरूप इस जगत...** जैसा विद्यमान आत्मा है, उसका ज्ञान किया, इस प्रकार विद्यमान तीन लोक, तीन काल है। विद्यमान है। विद्या पूर्व में भगवान ने ऐसा कहा कि निश्चल विद्यमान जो तीन लोक है, उसे अपना ज्ञान अपने को जानता है, उसमें तीन लोक भी ज्ञात होते हैं। उसे श्रुतज्ञान विद्या अथवा केवलज्ञान विद्या कहा जाता है। वह विद्या पूर्व में यह कहा है। कहो, पण्डितजी ! यह पढ़ा है या नहीं कभी ? देखा भी नहीं होगा, पढ़ा भी नहीं होगा। सेठ तो कहाँ से पढ़े तम्बाकू के धन्धे में से ? तुम तो पहले निवृत्त हो। समझ में आया ?

६९। ६९ है न? इसमें जरा यह लिया है। तीर्थ-तीर्थ है न? तीर्थ है एक जगह। कहीं है सही। वह तीर्थ है न? दूसरे में कहीं है। यहाँ तो कहते हैं तीर्थ। इसमें कहीं होगा। बहुत .... तीर्थ शुद्धं, इसमें पृष्ठ २४९। इसमें २४९ है, श्रावकाचार, हों! देखो, २५० श्लोक। श्रावकाचार २५०।

न्यानं तत्वानि वेदंते, सुद्ध तत्व प्रकासकं।
सुद्धात्मा तिअर्थं सुद्धं, न्यानं न्यान प्रयोजनं॥२५०॥

है? क्या कहते हैं देखो, यह तो .... है न तो उसमें से तीर्थ कहा। '**न्यानं तत्वानि वेदंते' ज्ञान वही है जो जीवादि सात तत्त्वों का अनुभव करावे...** सम्यग्ज्ञान में उसका वेदन करावे। यह जीव है, यह अजीव मुझमें नहीं, आस्रव मुझमें नहीं, बन्ध मुझमें नहीं, संवर-निर्जरा शुद्ध पर्याय है, ऐसा जो ज्ञान करावे और '**सुद्ध तत्व प्रकासकं' शुद्ध निर्दोष पदार्थों का और शास्त्री सम्बन्धी...** समय शब्द है न? समय में से दो निकाला। समय अर्थात् पदार्थ और समय अर्थात् शास्त्र। दोनों के विषय का प्रकाशक हो, उसे ज्ञान कहते हैं।

'**सुद्धात्मा तिअर्थं सुद्धं**' देखो, **शुद्ध तीर्थस्वरूप शुद्धात्मा को झलकानेवाला है।** अपना तीर्थ आत्मा, उसे सम्यग्ज्ञान प्रकाशित करता है। उसे यहाँ तीर्थ कहते हैं। समझ में आया? बाहर में शत्रुंजय में नहाते हैं न, ऐसा आता है न? उसका भव व्यर्थ जाये, न नहाये उसे। धूल में भी नहीं। वहाँ मछलियाँ भी नहाती हैं। मछलियाँ भी पानी में नहाती हैं। तो क्या पानी से शुद्धि होती है? समझ में आया? अपना ज्ञानजल राग से रहित शुद्ध अपना प्रगट करना, उस ज्ञान से ज्ञान की उत्पत्ति, उन्नति का प्रयोजन है। **वही ज्ञानाचार तीर्थरूप है।** समझ में आया? **वही ज्ञानाचार तीर्थरूप है।** इत्यादि-इत्यादि बहुत बात की है। इसमें भी केवलज्ञान लिया है वापस।

न्यानेन न्यानमालंबं, पंच दीप्ति प्रस्थितं।
उत्पन्नं केवलं न्यानं, सुद्धं सुद्ध दिस्टितं॥२५१॥

'**न्यानेन न्यानमालंबं, पंच दीप्ति प्रस्थितं**' ऐसा। यह तीर्थ कहा जाता है। '**न्यानेन न्यानमालंबं**' २५१। **सम्यग्ज्ञान व श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मज्ञान को दृढ़ करना चाहिए।**

यह श्रावकाचार। **पंच प्रकार ज्ञानों के भीतर ... जो केवलज्ञान पैदा हो जावे, साथ शुद्धात्मा अत्यन्त प्रत्यक्ष दर्शन हो जावे।** ऐसे अन्तर के ज्ञान को तीर्थ कहा जाता है। समझ में आया? बाहर तीर्थ, वह तो जरा शुभभाव हो। भक्ति आदि है, परन्तु वहाँ से मोक्ष हो जायेगा और कल्याण हो जायेगा, ऐसी बात स्वरूप के साधन में नहीं है। इस ओर बहुत लिया है। ... अपने लिया न तीर्थ तक, कहा न? मूल बिना वृक्ष। २०८। श्रावकाचार, हों! श्रावकाचार। २०८ (गाथा)। २१२ पृष्ठ है। २०८ गाथा है श्रावकाचार की।

जस्य संमिक्त हीनस्य, उग्रं तव व्रत संजुतं।
संजम क्रिया अकार्जं च, मूल बिना वृक्षं जथा॥२०८॥

है? तो कैसे ले लिया एकदम क्षुल्लकपना? सम्यग्दर्शन की भी खबर नहीं और ले लो क्षुल्लकपना। सच्ची बात है या नहीं? लिया था न पहले? लिया था। क्या लिया था? खोटा वेश। क्या कहा, देखो! '**जस्य संमिक्त हीनस्य**' **जो कोई सम्यग्दर्शन से रहित है।** है न '**हीनस्य**' है न? अपना शुद्ध स्वरूप भूमिका की प्रतीति नहीं। किसमें स्थिर होना, ऐसा चैतन्य का साक्षात्कार दृष्टि में आया नहीं। मेरी अनादि-अनन्त ध्रुव चीज़ क्या है, उसका तो श्रद्धा-ज्ञान हुआ नहीं। **कठिन तप तपता है।** है? देखो। '**उग्रं**' हों! उग्र तप करता है बारह-बारह महीने के अपवास, छह-छह महीने के अपवास। अपवास के कारण जरा यह ममरा या क्या कहते हैं भुने हुए चने। चना-चना ले। छह महीना करते हैं। और उग्र व्रत पालते हैं। महाब्रह्मचर्य पाले, महाव्रत पाले, अहिंसा पाले, सत्य बोले। व्यवहार हों सत्य। चोरकर कुछ ले नहीं। एक लंगोटी का ताना-बाना भी रखे नहीं। ऐसे व्रत पालना और संयम धारना। इन्द्रियदमन करना। सर्व क्रिया। '**संजम क्रिया अकाज**' देखो, है न? '**संजम क्रिया अकाज**' यह सब सम्यग्दर्शन बिना अकार्य है। इसमें आत्मा का कुछ फल होता नहीं।

क्या है? '**मूल बिना वृक्षं जथा**' '**मूलो नास्ति कुतो शाखा**' जिस वृक्ष में मूल नहीं, उसमें डाली कहाँ से आयी? फल कहाँ से आये? ऐसा कहते हैं देखो तारणस्वामी। **ये मूल के बिना वृक्ष नहीं हो सकता।** आया न, देखो न! '**दंसण मूलो धम्मो**' है न

सामने श्लोक बड़े अक्षर में ? '**दंसण मूलो धम्मो**' धर्म अर्थात् चारित्र उसका मूल दर्शन है। बड़े अक्षर में लिखा है। चार ट्रेडमार्क है चारों ओर चार बड़े। '**दंसण मूलो धम्मो**' धर्म अर्थात् आत्मा का चारित्र, उसका मूल सम्यग्दर्शन है। जिसे मूल नहीं, उसे वृक्ष कहाँ से फले ? यह कहते हैं। समझ में आया ? **मूल के बिना वृक्ष नहीं हो सकता। कोई ऐसा मान ले कि मूल बिना वृक्ष हो जायेगा। तो उसकी पूरी अज्ञानता है। मूल या जड़ जब होगा तब ही वृक्ष अंकुरित होगा, फूटेगा, बढ़ेगा, पत्र, शाखा होगी, उसमें फल लगेंगे। जड़ बिना वृक्ष कभी नहीं लगता, जड़ द्वारा वृक्ष का पोषण होता है, ऐसे सम्यग्दर्शन नहीं...** जिसमें अपने परिणाम स्वरूप सन्मुख करके प्रतीति की नहीं, जिसने राग और निमित्त से परिणाम हटाकर स्वभाव सन्मुख किये नहीं, और अन्तर आत्मा में यह आत्मा शुद्ध है, ऐसा दर्शन-प्रतीति हुई नहीं, उसे व्रत और तप और सब बिना एक के शून्य हैं। समझ में आया ? लो यह मूल बिना वृक्ष। दृष्टान्त है।

अब फिर कहा देखो २०९।

संमित्तं जस्य मूलस्य, साहा व्रत डाल नंतनंताई।
अवरेवि गुणो होंति, संमित्तं जस्य हृदयस्य॥२०९॥

जिसके सम्यग्दर्शनरूपी जड़ है... जड़ कहते हैं न वह ? मूल को जड़ कहते हैं। '**संमित्तं जस्य मूलस्य**' मूल जिसका सम्यग्दर्शन जड़ है। **शाखायें और व्रतरूपी अनन्तानन्त हो सकते हैं।** पश्चात् स्वरूप की स्थिरता आदि अनन्तानन्त शाखा हो सकती है। **और भी बहुत गुण होते हैं...** सम्यग्दर्शन के पश्चात् अन्तर में एकाग्र होकर बहुत गुणों की प्राप्ति होती है। '**जस्य हृदयस्य संमित्तं**' **जिसके अन्तर में सम्यक्त्व है, उसको सब पर्याय निर्मल प्रगट होती है।** दूसरे को नहीं होती। समझ में आया ?

संमित्त बिना जीवा, जानै अंगाई श्रुत बहुभेयं।
अनेय व्रत चरनं, मिथ्या तप बाटिका जीवो॥२१०॥

कहो, समझ में आया ? क्या कहते हैं ? २१० है। **सम्यग्दर्शन के बिना जीव ग्यारह अंग नौ पूर्व तक बहुत प्रकार शास्त्रों को जाने...** ग्यारह अंग और नौ पूर्व। **अथवा अनेक व्रतों का आचरण करे, यह सब जीव का मिथ्या तप का बगीचा लगाना है,...**

'**मिथ्या तप बाटिका जीवो**' मिथ्या श्रद्धा में ऐसी तप क्रिया होती है तो मिथ्या तप में निवास—रहने का जाल है। कहो, समझ में आया? इसलिए सम्यग्दर्शन बिना कुछ होता नहीं। यह आया। और तत्त्वार्थश्रद्धानं, भाई उसमें लिया है, हों! अपने श्रावकाचार में। पृष्ठ २३७। यह जो सम्यग्दर्शन की व्याख्या की, वह तत्त्वार्थश्रद्धान ही है, ऐसा बताते हैं। २३७ पृष्ठ है। वापस कोई कहे कि भाई! तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन कहाँ गया? समझ में आया? तो वह तत्त्वार्थश्रद्धान इसमें डाला है। २३७ है, देखो, २३६ श्लोक है।

'**दर्सनं तत्त्व सार्धं**' उमास्वामी कहते हैं न तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन? भाई! यह भी तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन कहो या आत्मा का दर्शन कहो दोनों एक ही बात है। दोनों में अन्तर नहीं है। हम आत्मा के दर्शन को सम्यक् कहते हैं और तत्त्वार्थश्रद्धान को फिर भूल गये, यह बात है ही नहीं। दोनों एक ही बात है।

दर्सनं तत्त्व सार्धं च, तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं।
मय मूर्ति संपूर्नं च, स्वात्म दर्सन चिंतनं॥२३६॥

तत्त्व का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। वह भवसागर से तारने का तीर्थ... अर्थात् जहाज है। है? **यही शुद्ध दृष्टिमय है...** और ज्ञानमूर्ति अपना भगवान अपने सर्व गुणों से पूर्ण अपने आत्मा का दर्शन और चिन्तवन है। पश्चात तो बहुत लिया है।

दर्सनं सप्त तत्वानं, दर्व काय पदार्थकं।
जीव द्रव्यं च सुद्धं च, सार्धं सुद्धं दरसनं॥२३७॥

अर्थात् सात तत्त्व की श्रद्धा यथार्थ हो तो उसे भी सम्यग्दर्शन कहते हैं। परन्तु वह तत्त्वार्थ दर्शन आत्मा के दर्शन बिना तत्त्वार्थश्रद्धान सच्चा होता नहीं। समझ में आया? यह ६८ गाथा हुई। चलती ६८। (अब) ६९।

अनुक्रमं ममलं सुधं, बारंबारं च सार्धयं।
सुध तत्त्व दर्सनं नित्यं, आत्मनं परमात्मनं॥६९॥

तत्त्वज्ञानी महात्मा नोकर्म अर्थात् शरीररहित... नोकर्म है न? नोकर्म अ-रहित। **कर्ममलरहित शुद्ध पदार्थ को ही अर्थात् आत्मा या परमात्मामयी शुद्ध तत्त्व का ही नित्य बारबार दर्शन करते हैं।** बारम्बार वह भगवान आत्मा का दर्शन करता है। समझ

में आया? '**आत्मनं परमात्मनं सुध तत्त्व दर्सनं नित्यं**' बारम्बार दर्शन। भगवान शुद्ध आत्मा निर्मल पदार्थ है और शरीर से, कर्म से रहित है, उसका बारम्बार दर्शन करता है, वही वास्तव में देवदर्शन और गुरुदर्शन कहा जाता है। समझ में आया? इस दर्शन बिना अकेले बाहर से दर्शन करे, उसमें कुछ होता नहीं। यह दर्शन कहा न? आत्मा का दर्शन, भाई!

अब कल्याण पूर्व। ७०। कल्याण पूर्व है न? चौदह पूर्व में एक कल्याण पूर्व है। नाम सुना है? चौदह पूर्व में एक कल्याण पूर्व नाम का पूर्व है। चौदह पूर्व हैं न? कल्याण पूर्व। तो कल्याण पूर्व में क्या कहा है? कल्याण पूर्व में भगवान ने क्या कहा है, वह तारणस्वामी कहते हैं। कि कल्याण पूर्व में तेरे कल्याण की बात की है। समझ में आया? कल्याण पूर्व में कहीं ऐसा करो, वैसा करो... (ऐसा नहीं है)। आता है, जानने का कहा है। है शुभराग के सामने, शुभराग होता है, व्यवहार होता है, परन्तु उससे कल्याण हो जाये, ऐसा कल्याण पूर्व में कहा नहीं। समझ में आया? देखो, कितने ही पण्डित कहते हैं कि निश्चय और व्यवहार सम है। यहाँ कहते हैं कि नहीं, व्यवहार से निश्चय भिन्न है। व्यवहार से कल्याण होता नहीं, निश्चय से कल्याण होता है तो व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है, ऐसे दोनों समान नहीं हैं। समझ में आया?

गन्ने का रस भी पीओ, गन्ना भी खाना और बासुंदी भी खाना। एक साथ नहीं हो सकता? गन्ना-गन्ना। छिलका निकालते हैं न? तो उसके साथ बासुंदी। तो बासुंदी नीचे उतारना और उसके कूचा बाहर निकालना। दोनों एक साथ होते हैं? हो सकते हैं? कभी नहीं हो सकते। उसका रस निकालकर पीओ तो अलग बात है। परन्तु गन्ना पूरा खाया, वह छिलका निकालकर खाते हैं न? और साथ में बासुंदी भी पी। तो कूचा निकाले तो बासुंदी निकल जायेगी, बासुंदी अन्दर जायेगी तो छिलका अन्दर घुस जायेगा। इसी प्रकार व्यवहार है वह छिलका है। क्या कहा समझ में आया? व्यवहार का विकल्प दया, व्रत, आदि हो परन्तु वह छिलका है, वह निकाल देने की चीज़ है और निश्चय अन्तर में प्रवेश करके आनन्द का अनुभव करने की चीज़ है। समझ में आया? यह विवाद करते हैं, देखो!

आया है न अभी नहीं ? बड़ा लेख आया है। उपादान-निमित्त समकक्षी है। और सोनगढ़वाले कहते हैं... हमारा नाम लिखा है। नाम कहाँ है ? परन्तु यह शरीर तो धूल है। यह कहते हैं या नहीं, उपादान ही बलवान है, निमित्त बलवान नहीं। नहीं, हम कहते हैं कि दोनों बलवान हैं। रखो तुम्हारे पास भटकने में। समझ में आया ? और निश्चय-व्यवहार दोनों समान हैं। धूल में भी समान नहीं। देखो, यहाँ क्या कहते हैं ?

कल्यानं कल्पयं सुद्धं, पूर्व कल्पंति सास्वतं।
न्यानमयं च तत्त्वार्थं, कल्यानं ध्यान संजुतं॥७०॥

ऐसी बात तो की है। अहो! **'कल्यानं कल्पयं पूर्व' कल्याण प्रवाद पूर्व...** नाम का चौदह पूर्व का एक भाग है पूर्व। क्या कहते हैं ? **'सुद्धं सास्वतं न्यानमयं च तत्त्वार्थं कल्यानं ध्यान संजुतं कल्पंति'** भगवान आत्मा शुद्ध अविनाशी ज्ञानमयी निश्चय तत्त्व जो अखण्डानन्द प्रभु पवित्र निर्विकल्प **जो कल्याणकारक है व ध्यानसहित है,...** ७०वीं चलती है। **उसको बताता है।** कल्याण पूर्व। व्यवहार को बताता है, ऐसा भी यहाँ तो लिया नहीं। समझ में आया ? होता है, ऐसा जो ज्ञान कल्याण अपने स्वरूप की ओर मुड़कर निर्विकल्प सच्चे ज्ञान का घोलन हुआ तो बाकी राग रहता है तो सही, शुभराग तो है, उस राग का ज्ञान, स्व के ज्ञान में राग का ज्ञान आ जाता है। राग का ज्ञान नया करना नहीं पड़ता। समझ में आया ?

व्यवहार से कल्याण होता है, निश्चय से कल्याण होता है। दोनों से कल्याण होगा ? दोनों को मोक्षमार्ग कहा है या नहीं ? व्यवहारमोक्षमार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग। दो मार्ग कहे हैं या नहीं ? यह कथन किया है, मार्ग दो नहीं। मार्ग तो एक ही अपना शुद्ध स्वरूप अखण्डानन्द की श्रद्धा-ज्ञान की रमणता करना, वह मोक्षमार्ग है। बीच में राग को निमित्त देखकर छह द्रव्य, सात तत्त्व, भगवान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग देखकर व्यवहार समकित का आरोप राग में दिया है। वास्तव में वह व्यवहार समकित है नहीं। सम्यक् तो निश्चय समकित वही निश्चय समकित है। ऐसा कल्याण पूर्व में कहा गया है। गजब बात भाई!

अरे! पण्डित, हों! बड़े-बड़े काशी के पढ़े हुए। काशी के बोर होते हैं न ? यह

क्या है? यह कोई आम होगा? काशी के बोर कल कहते थे वह काशीफल का। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान! ओहोहो! जो विकल्प उठता है परसन्मुख, परद्रव्य सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ साक्षात् होते हैं, उस ओर का राग हुआ भक्ति का, स्तुति का, वह भी छोड़ने की चीज़ है, रखने की चीज़ है नहीं। होता है, नीचे होता है, परन्तु रखने की चीज़ नहीं। अन्दर में उतारने की नहीं। वह कूचा निकाल डालने की चीज़ है। समझ में आया? भारी झगड़ा भाई! इसमें तो व्यवहार को याद भी नहीं किया। तो ऐसा भी कर दे कि व्यवहार का लोप ही है।

कहते हैं कि **कल्यानप्रवाद पूर्व में तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्माण इन पाँच कल्याणकों का व्यवहारनय से कथन है।** मूल तो व्यवहारनय से पाँच कल्याणक का कहा है न वहाँ? समझ में आया? इसमें भी कहीं कहा है। कल्याणक का आया था न कहीं? उसमें आया था। उसमें होगा ममलपाहुड में पंचकल्याणक। पृष्ठ १८१ इसमें है। पृष्ठ १८१ है। क्या कहते हैं देखो! यह ममलपाहुड। फुलना कौन सा है? फुलना-७४। कल्याणक फुलना। देखो! यहाँ कल्याण ही आया अपने। वह कल्याण पूर्व है न भाई! अर्थात् कल्याण पूर्व में कल्याण फुलना है देखो, और यह आया। कल्याण फुलना है। उसमें आया, देखो!

जब जिनु गर्भवास अवतरियौ, ऊर्ध ध्यान मनु लायौ।
दर्सन न्यान चरन तव यरियौ, उव उवन सिद्धि चितु लायी॥१॥

है? आया?

अरी मैं संमत्तु रयनु धरिये,
जिहि रमन मुक्ति लहिये।
अरी मैं समय सरनि मिलिये,
अरी मैं जिन वयनु हिये धरिये॥२॥

क्या कहते हैं देखो अर्थ में? अर्थ है। '**जब जिनु गर्भवास अवतरियौ**' यह कल्याण पूर्व की बात चलती है। देखो! उसमें आया कल्याण, उसकी बात यहाँ कहते हैं। **जब श्री जिनेन्द्र भगवान सम्यग्दृष्टि श्रद्धावान भव्य जीव के मनरूपी गर्भ के भीतर**

आकर वास करते हैं। अपनी पर्याय में वास करते हैं। गर्भ, जन्म हुआ आत्मा में तीर्थंकर होने की योग्यता है। ओहोहो! समझ में आया? **'जब जिनु गर्भवास अवतरियौ'** भगवान अपने सम्यग्दर्शन की श्रद्धा में आया। **निश्चयनय की अपेक्षा से श्री तीर्थंकर भगवान के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष पाँचों कल्याणकों का वर्णन है।** समझ में आया? कल्याण पूर्व में व्यवहारनय से पाँचों ही कल्याणक का वर्णन है। निश्चय से उसमें आत्मा का अन्तर में गर्भ हुआ (कि) मैं पूर्णानन्द प्रभु, परमात्मा इससे होऊँगा, ऐसे श्रद्धा-ज्ञान हुए, वह गर्भ रहा। उसमें जन्म हुआ (अर्थात्) पर्याय की प्राप्ति (हुई)। विशेष करते-करते तप कल्याणक चारित्र हुआ। केवलज्ञान हुआ, मोक्ष हुआ। यह पंच कल्याणक अपनी पर्याय में उतरते हैं। समझ में आया? देखो! सब लिया है। पाँच कल्याणक के नाम इन्होंने दे दिये हैं। मूल यह भजन है, हों! भजन है न! यह भजन में आया है कि हे भाई! ऐसा करके है।

निश्चय से 'अरी मैं संमत्तु रयनु धरिये' 'अरी' अर्थात् हे भाई! मैंने सम्यग्दर्शन रत्न को धारण किया। यह मेरा गर्भ हुआ भगवान का कि मैं तीर्थंकर होने के योग्य हो गया। **'जिहि रमन मुक्ति लहिये।' जिससे मुक्ति रमणी प्राप्त होगी। 'अरी मैं समय सरनि मिलिये' मेरा स्वरूप समय पदार्थ...** उसका शरण मुझे मिला। **अरी मैं जिन वयनु हिये धरिये'** जिनवचन वीतरागभाव को मैंने मेरे हृदय में धारण किया। यही मेरे पंच कल्याणक हैं। ...लालजी! समझ में आया? भक्ति है न? भक्ति है। इसमें १००८ कलश है, हों! १००८ कलश लिये हैं। २२०। १००८ कलश होते हैं या नहीं? किसे? भगवान को। २२० कहा न? २२० में १००८ कलश है। देखो, यह दूसरा श्लोक। कलशों का फुलना ७९। ७९ कलशों की गाथा। भगवान के ऊपर १००८ कलश चढ़ते हैं न? जन्म होता है तब इन्द्र मेरुपर्वत पर लेकर जाता है। १००८ कलश इन्द्र चढ़ाता है, यह व्यवहार है। व्यवहार है सही। परन्तु निश्चय कलश क्या है? यह बात यहाँ कहते हैं। दूसरी गाथा है न।

सहकारं अर्थ तिअर्थं, अर्थ सहकार कलस जिन उत्तं।
सुर विंजन परिनमं, सहसं अट्ठुमि चौ उवन चौबीसं॥२॥

चार अनन्त चतुष्टय प्रकाश में सहकारी रत्नत्रयरूपी आत्मा पदार्थ है। इसी आत्मानुभव आत्मा को जिनेन्द्र ने कलश कहा है। यह आत्मानुभवरूपी कलश को आत्मा में कलश चढ़ाया कहलाता है। पानी डाला आत्मा के ऊपर। निर्मल जल। एक हजार आठ कलश का ज्ञान चढ़ाया। समझ में आया? **'सुर विंजन परिनमं' स्वर-व्यंजनरूपी शुद्ध ज्ञान का वह फल है। वह आत्मा का अनुभव हो।** लो यह फल है। और **'सहसं अट्ठंमि चौ उवन' ऐसे आत्मा के ऊपर एक हजार कलशों के द्वारा चौबीस तीर्थंकरों का अभिषेक...** देखो पाठ है **'चौबीसं'** है न? **'सहसं अट्ठंमि चौ उवन चौबीस'** तो **चौबीस तीर्थंकरों का अभिषेक होने से चार चतुष्टय पैदा हो गये हैं।**

अपने आत्मा में व्यवहार से रहित होकर अपने स्वभाव में ज्ञानजल से स्वयं स्नान किया। एक हजार आठ कलश। उसमें चढ़ाते-चढ़ाते, स्थिरता करते... करते... करते... अनन्त चतुष्टय प्रगट हो गये। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, आनन्द। यह अपने स्वभाव के कल्याण में से कल्याणपद प्राप्त होता है। कल्याण कोई व्यवहार से या निमित्त से नहीं होता। यह व्यवहार का बोध कहते हैं। व्यवहार में भी थोड़ा निश्चय का अंश है। व्यवहार में भी थोड़ा है। धूल भी नहीं, सुन तो सही! पुण्यबन्ध है। पुण्य बँधता है। हजार खांडी अनाज हो तो हजार गाड़ा, गाड़ा को क्या कहते हैं? गाड़ी। इतने भूसा। खड कहते हैं न? घास। वह घासफूस होता है उतना। जब तक पूर्ण न हो, तब तक ऐसा होता है। अपने स्वरूप का साधन करके, अपूर्ण हो तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, स्तुति, व्रत, नियम का विकल्प, सबका विकल्प अपवाद करना, वह भी एक विकल्प शुभराग है। समझ में आया? वास्तव में वह चीज़ नहीं। आत्मा का कल्याण करने की चीज़ अपने अन्तर में आती नहीं।

उपवास की व्याख्या तो है कहीं। उपवास की है सही। दूसरे में होगी। कहीं था अवश्य। उपवास। कारण-कार्य की स्तुति है न! पण्डित की व्याख्या है। कहाँ है? यह तो कल आ गया था। इसमें है देखो! यह क्या है? श्रावकाचार पृष्ठ ४०१। ४०१। है? उपवास किसे कहते हैं, यह बात चलती है। देखो, ४०९। श्रावकाचार का ४०९ श्लोक। ४०८-४०९।

पोसह प्रोषधस्चैव, उववासं जेन क्रीयते।
संमिक्तं जस्य हृदयं सुद्धं, उववासं तस्य उच्यते॥४०८॥

पोषह रूप प्रोषध पर्व के दिन अपना उपवास किया जावे। जिसका सम्यग्दर्शन भी शुद्ध हो। यह सम्यग्दर्शन अनुभव हो और उसके समीप में रहे तो उसे उपवास कहते हैं। बाकी लंघन कहते हैं। यह दस पर्व में करते हैं न? तो कहते हैं कि देखो, '**उववासं तस्य उच्यते**'

संसार विरतिते जेन, सुद्ध तत्त्वं च सार्धयं।
सुद्ध दिस्टी स्थिरी भूतं, उववासं तस्य उच्यते॥४०९॥

जिसने संसार से राग छोड़ दिया है और शुद्ध आत्मिक तत्त्वरूप हो गया है। शुद्ध दृष्टि स्थिर हो गयी है, उसी के उपवास कहा जाता है। ऐसे मात्र आहार न करना और विकल्प से शुभराग करना, उसे भगवान उपवास नहीं कहते। आत्मा के अन्दर ज्ञान में उप, शुद्ध स्वभाव में उप—समीप में वास बसना। अन्तर आनन्द निर्विकल्प में बसना, उसे भगवान उपवास कहते हैं।

उववासं इच्छंन कृत्वा, जिन उक्तं इच्छनं जथा।
भक्ति पूर्वं च इच्छंते, तस्य हृदय समचरेत्॥४१०॥

उपवास करने की बड़ी रुचि रखना योग्य है। जैसा जिनेन्द्र ने कहा है। ऐसी वृत्ति हो यह उपवास की। **जैसा तत्त्व का स्वरूप विचार करे, भक्तिपूर्वक जहाँ रुचि हो, उसके मन में उपवास की मान्यता है।** भगवान शुद्धात्मा की भक्ति अर्थात् प्रेम, उसमें बसना है, उसे भगवान यहाँ उपवास कहा जाता है। कहो, समझ में आया? कहाँ आया अपने?

कल्याण पूर्व, ७०-७०। तो उसे कल्याणपूर्व में **तीर्थंकरों का गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण पाँच कल्याणकों का व्यवहार वर्णन है।** वहाँ निश्चय पद लगाकर कहते हैं। **निश्चयनय से पूर्व कल्याण का मार्ग ही बताता है। पूर्व आत्मकल्याण का मार्ग बताता है। ध्यान में एकतान होकर शुद्ध ज्ञानमय अविनाशी आत्मा का अनुभव किया जावे।** लो! अब अन्तिम पूर्व त्रिलोकबिन्दु। चौदह पूर्व में त्रिलोकबिन्दु है चौदहवाँ। त्रिलोकबिन्दु चौदहवाँ पूर्व।

मध्यस्थान सुयं रूपं, पद विंदं च विंदते।
त्रिलोकं ति अर्थ सुद्धं च, न्यानं चरनं तं धुवं॥७१॥

समयं च समयं सुद्धं, पंच दीप्ति समं पदं।
त्रिलोकं त्रिभुवनं च, अप्पा परमप्पयं धुवं॥७२॥

दो गाथा साथ में है। **त्रिलोकबिन्दुसार पूर्व...** चौदह पूर्व में नाम में त्रिलोक... पहले त्रिलोक लिया। **पूर्व मध्यम स्थानमयी पदों को रखनेवाला है।** ... मध्य में है न ५१ करोड़ हजार श्लोक? एक-एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक एक पद में हैं। ऐसे-ऐसे साढ़े बारह करोड़ मध्यम पद हैं। साढ़े बारह करोड़। एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक। जो चौदहवाँ त्रिलोकबिन्दुसार है, उसमें मध्यमपद अर्थात् ५१ करोड़ अधिक श्लोक को मध्यमपद कहते हैं। और ऐसे साढ़े बारह करोड़ मध्यमपद है, एक त्रिलोकबिन्दु में। इतना मुनि को कण्ठस्थ हो जाता है। समझ में आया? कण्ठस्थ हों ऐसे। एक-दो घड़ी में पारायण करना हो तो बारह अंग पारायण कर जाते हैं। दो घड़ी में इतने श्लोक। इतनी सामर्थ्य आत्मा में प्रगट हो जाती है तो कहते हैं कि **तीन लोक के पदार्थों को...** कहनेवाला है। त्रिलोकबिन्दु।

'**सुद्धं धुवं तं न्यानं चरनं समयं च**' क्या कहते हैं त्रिलोकबिन्दु में। **शुद्ध निश्चय ज्ञान, चारित्र व सम्यग्दर्शन को...** त्रिलोकबिन्दुसार में कहते हैं। समझ में आया? '**समयं सुद्धं**' और **शुद्ध आत्मा को...** समय अर्थात् आत्मा। शुद्ध आत्मा को त्रिलोकबिन्दु में कहा है। अकेला भगवान तेरी वस्तु क्या है? परमात्मा साक्षात् तू ही परमात्मा है। राग और विकल्प का आश्रय छोड़ दे, तू ही पूर्ण परमात्मा है, ऐसा त्रिलोकबिन्दुसार में कहा गया है। **पाँच परमेष्ठियों के समभावरूपी पद को...** और उसमें पाँच परमेष्ठी का स्वरूप बताया है। आत्मा के, हों! अरिहन्त भी आत्मा, सिद्ध भी आत्मा, आचार्य आत्मा, उपाध्याय आत्मा। शरीर, वाणी, मन, विकल्प नहीं। यह पाँच पद आत्मा में तिष्ठते हैं। **ऐसे समभावरूपी पद को तीन लोक की पर्यायों को...** त्रिलोकबिन्दु में कहा है।

'**त्रिभुवनं च**' लो! **तीन लोक की पर्यायों को निश्चय आत्मा व परमात्मा को बताता है।** तीन लोक की पर्याय एक समय की एक गुण की ऐक, ऐसी अनन्त गुण की

अनन्त तीन काल की पर्याय जैसी अनन्त द्रव्यों की है, वैसी त्रिलोक बिन्दु में बतलायी है। और आत्मा तथा परमात्मा दोनों को बतलाया है। उसमें सार तो यह है या नहीं? दूसरी जानने की बातें तो बहुत आती हैं। परन्तु अन्तर में भगवान परमात्मा तू ही शुद्ध है। परमात्मा तेरे गर्भ में स्थित है, गर्भ में। श्रद्धा हुई तो मेरे गर्भ में परमात्मा है, ऐसी प्रतीति हुई और उसमें से मैं क्रम-क्रम से पर्याय में एकाग्र होकर परमात्मा हो जाऊँ, ऐसी श्रद्धा हुई तो परमात्मा का गर्भ रहा। सेठी! तब उसका जन्म होगा। तेरहवें गुणस्थान में जब स्थिरता होगी, तब केवलज्ञान का जन्म हो गया। आहाहा! समझ में आया? ७१-७२ कही न? अब कहते हैं।

मध्यं च पद विंदं च, पदार्थं पद विंदते।
विंजनं च पदार्थं सुधं, ममात्मा ममलं धुवं॥७३॥

यह मध्यबिन्दु है न? ... क्या-क्या कहा, यह बात चलती है।

मध्यम पद से पदार्थों का बोध होता है। उसमें मध्यम कहा था न? .... उस **मध्यम पद से पदार्थों का बोध होता है। उन मध्यम पद के धारी अंग तथा पूर्वों में जितने शब्द हैं, वे शुद्ध हैं...** यह भगवान ने जितने शब्द कहे, वे सब शुद्ध हैं। शब्द शुद्ध हैं। क्योंकि शुद्ध को बतलाना है तो शब्दों को भी शुद्ध कहा जाता है। शक्कर को कहा तो उस शब्द में शक्कर आयी। शक्कर तो शक्कर में है। इस प्रकार शुद्ध आत्मा को बतलानेवाली शब्द ध्वनि है, उसे भी शुद्ध कहा जाता है।

तथा जितना पदार्थ वर्णन किया गया है, वह सब यथार्थ है... भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो आत्मासहित जो पदार्थ कहा, वही यथार्थ अर्थात् सत्य है। **उनमें सार कथन यह है कि यह मेरा आत्मा निश्चय से निर्मल है-सिद्ध सम शुद्ध है।** लो! अन्त में सब पदार्थों में मेरे आत्मा को पर से पृथक् करके, राग से हटकर मेरा आत्मा अन्तर में भिन्न है, वह सार में सार त्रिलोकबिन्दु चौदह पूर्व में कहा गया है। उसमें कोई दूसरी कोई विशेष चीज़ नहीं कही गयी है। लो, ७३ (गाथा) हुई। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ४, मंगलवार, दिनांक - ०२-१०-१९६२
गाथा - ७४ से ७८, प्रवचन-८

विसल्यं सल्य मुक्तस्य, क्रीयते ध्यान सुद्धयं।
परमानंद आनंदं, परमात्मा परमं पदं॥७४॥

पहले मोक्षार्थी को शल्यरहित होना चाहिए। शल्य अर्थात् मिथ्या श्रद्धा क्या है? और निदान क्या है? और माया शल्य क्या है? तीन को समझकर पहले छोड़ना चाहिए। यह छोड़े बिना उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र नहीं होते। समझ में आया? देखो, **शल्यरहित महात्मा... 'सल्य मुक्तस्य'** पहला शब्द लिया। **'विसल्यं' शल्यरहित निर्मल धर्मध्यान कर सकता है...** जिसकी श्रद्धा में वास्तविक दृष्टि आयी नहीं, जिसके ज्ञान में यथार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय, विकार क्या है? किस प्रकार बन्ध से होता है? उसे दर्शन-ज्ञान का ध्यान होता नहीं। समझ में आया? देखो! यह तारणस्वामी ७४ में कहते हैं।

शल्यरहित हो, वह विशल्य अपना निर्मल धर्मध्यान कर सकता है। तो अभी खबर भी नहीं मिथ्यात्व क्या है? मिथ्याज्ञान क्या है? अपना शुद्धस्वरूप कैसे प्राप्त होता है? विकार की मर्यादा कितनी है? संयोग की हद कितनी है? उसकी खबर बिना यह स्वाध्याय करे तो भी उसकी दृष्टि निर्मल नहीं होती। क्योंकि दृष्टि में शल्य भरी है। समझ में आया? जिसे दृष्टि में शल्य पड़ा है, वह अपने आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान का ध्यान नहीं कर सकता।

'परमानंद आनंदं' जो परम आनन्द देनेवाला है। उत्तम ध्यान है। अपनी शान्ति जो आनन्द श्रद्धा-ज्ञान में आता है, वह ध्यान आनन्द का देनेवाला है। **'आनंदं, परमात्मा परमं पदं'** वह **आनन्दमय परमात्मा का उत्तम पद प्राप्त होता है।** शल्यरहित आत्मा शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान करने से आत्मा का आनन्द आता है। उस आनन्द से परमानन्द परमात्मा की प्राप्ति होती है। कहो, सेठी! उसमें ऐसा भी कहा कि बीच में रागादि, आकुलता शुभादि आते हैं, वह आकुलता है, वह आनन्द नहीं और वह आकुलता परमानन्द परमात्मा की प्राप्ति का उपाय भी नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षणिक तो आकुलता हुई न ? आकुलता है, वह अनाकुल मोक्ष आनन्द की प्राप्ति का कारण नहीं, ऐसा ७४वीं गाथा में कहते हैं। ७५ (गाथा)।

लोकालोकं च वेदंते, विस्वमानो सुयं प्रभो।
कुन्यानं विलयं जांति, न्यानं भुवन भास्करं॥७५॥

क्या कहते हैं देखो, कहते हैं कि '**विस्वमानो सुयं प्रभो**' **वर्तमान उपलब्ध श्रुतज्ञान भी...** उसमें भी इतनी ताकत है। सम्यक् श्रुतज्ञान। भले केवलज्ञान न हो, परन्तु वर्तमान श्रुतज्ञान है, इतना ज्ञान करने से भी '**लोकालोकं च वेदंते**' लोक और अलोक का स्वरूप क्या है, वह सब इसके ज्ञान में आ जाता है। शोभालालजी! कहो, देखो, '**विस्वमानो सुयं प्रभा**' है ? जितना सम्यक् श्रुतज्ञान वर्तमान में है, उसका वर्तमान सम्यक् ज्ञान यथार्थ आत्मा-सन्मुख होकर करने से '**लोकालोकं च वेदंते**' लोक और अलोक का क्या स्वरूप है ? उसमें क्या वस्तु है ? अरिहन्त क्या ? सिद्ध क्या ? आचार्य, उपाध्याय, साधु, मोक्षमार्ग क्या ? बन्धमार्ग सबका ज्ञान, भावश्रुतज्ञान विद्यमान है, उसमें इन सबका ज्ञान आ जाता है। समझ में आया ? पण्डितजी! लोकालोक का ज्ञान श्रुतज्ञान में आ जाता है। श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में प्रत्यक्ष और परोक्ष का ही अन्तर है, दूसरा कोई अन्तर नहीं। केवलज्ञान प्रत्यक्ष जानता है, श्रुतज्ञान परोक्ष जानता है, परन्तु सम्यक् श्रुत में पूर्ण लोकालोक का ज्ञान जानने की सामर्थ्य है। सम्यग्दर्शन के साथ, अपने शुद्ध आत्मा के अनुभव के साथ जो भावश्रुतज्ञान की प्राप्ति विद्यमान वर्तमान है, उसमें भी लोकालोक जानने की सामर्थ्य है। कहो, समझ में आया ?

'**भुवन भास्करं न्यानं कुन्यानं विलयं जांति**' **इस जगत प्रकाशी ज्ञान से...** लोकालोक कहा न पहले ? अन्तर में भावश्रुतज्ञान प्रकाशी ज्ञान से **मिथ्याज्ञान का...** विलय अर्थात् **नाश हो जाता है।** उसमें मिथ्याज्ञान रहता नहीं। परन्तु सम्यग्ज्ञान करे तब न। ज्ञान की खबर नहीं। मात्र स्वाध्याय करे परन्तु सम्यग्ज्ञान क्या है, उसकी खबर नहीं। पढ़ डाले... पढ़ जाये। समझ में आया ? पढ़ लिया और छोड़ दिया। क्या है उसमें ? यह निश्चय क्या ? व्यवहार क्या ? उपादान कौन ? निमित्त कौन ? विकार कौन ? निर्विकार कौन ? निमित्त संयोगी चीज़ क्या उपस्थित है ? उससे अपने में कौनसा कार्य नहीं

होता ? नहीं होता। उसकी खबर नहीं। तो कहते हैं कि सम्यग्ज्ञान उसे होता नहीं। और सम्यग्ज्ञान बिना लोकालोक का ज्ञान भी होता नहीं और ऐसे सम्यग्ज्ञान से सब कुज्ञान का विलय अर्थात् नाश हो जाता है। समझ में आया ?

इसमें कहा है न उसमें, भाई! मूलगुण पहले लिये। मूलगुण कहते हैं न कि हमारे मूलगुण चाहिए। यह पृष्ठ २०७ है। मूलगुण पहले चाहिए न मूलगुण। पण्डितजी! देखो। यह गाथा ३८३। यह मूलगुण-मूलगुण कहते हैं न। श्रावक के गुण और मुनि के मूलगुण। गाथा ३८३। ८३ कहते हैं न ? क्या कहते हैं तुम्हारे ? ३, ८ और ३। देखो, मूलगुण क्या है ? पहले मूलगुण उसे कहते हैं और मूलगुण पहले होना चाहिए। श्रावक को भी मूलगुण यह कहते हैं न आठ मूलगुण ? यह आठ उदम्बर आदि का त्याग, परन्तु वह तो व्यवहार के हैं। मूलगुण परमार्थ के दूसरे हैं, ऐसा यहाँ तारणस्वामी कहते हैं। समझ में आया ? और साधु को अट्ठाईस मूलगुण। है न अचेल और वह ? वह तो व्यवहार है। परमार्थ मूलगुण श्रावक-मुनि के दूसरे हैं, वह यहाँ ३८३ गाथा में कहते हैं, देखो!

गुन रुव भेयविन्यानं, न्यान सहावेन संजुत्त धुव निस्चं।
मूलगुनं सुंसुद्धं, उत्तरगुन धरइ निम्मलं विमलं॥३८३॥

क्या कहते हैं, देखो। **गुण स्वरूप उपयोगी भेदविज्ञान है, जिसके द्वारा...** गुणस्वरूप उपयोगी भेदविज्ञान। यह राग और विकल्प से अपना भेद करना, अन्दर जाना, वह मूलगुण है। समझ में आया ? यह सब मूलगुण-मूलगुण का शोर मचाते हैं न ? तो यहाँ तारणस्वामी ने यह मूलगुण अन्तर में घटित किये हैं। अब तेरे निश्चय मूलगुण बिना तेरे व्यवहार मूलगुण कहाँ से आये ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह पाँच उदम्बर फल नहीं खाना। आता है न, तीन म-कार। मद्य, मधु... समझ में आया ? मांस नहीं खाना। वह तो विकल्प शुभराग है। वह वास्तव में मूलगुण नहीं। वह तो व्यवहार मूलगुण है, जब यह निश्चय मूलगुण हो तो। इस निश्चय मूलगुण बिना तेरे आठ मूलगुण भी व्यवहार मूलगुण नहीं कहे जाते। सेठी!

और मुनि को जो विकल्पात्मक अट्ठाइस मूलगुण कहे गये हैं, वह भी वास्तव में मूलगुण नहीं। वह तो व्यवहार मूलगुण है। ऐसे निश्चय मूलगुण बिना व्यवहार मूलगुण

उसे नहीं कहे जाते। कहो, कैसी बात की है ? ...लालजी ! देखो, पढ़ा भी नहीं कभी। कभी पढ़ते नहीं। धन्धा... धन्धा... धन्धा... पण्डितों को भी धन्धा और सेठियों को भी धन्धा। तो कहते हैं कि पहले अपना भेदज्ञान ही अपना वैश्य का व्यापार है। भेदज्ञान वह ज्ञानरूपी वैश्य व्यापार का वह धन्धा है। भेदविज्ञान अपना वैश्य-व्यापार है। राग और पुण्य और निमित्त से मैं पृथक् हूँ, ऐसा ज्ञान करना, वही ज्ञान का व्यवसाय और ज्ञान का वैश्यपने का व्यापार है। शोभालालजी ! यह तो कभी सुना भी नहीं होगा कि वैश्य क्या है ? हम बनिया हैं। बनिया कहाँ से हुआ तू ? बनिया कहाँ से आया ?

अपने में देखो, **'गुन रुव भेयविन्यानं' गुण स्वरूप उपयोगी भेद विज्ञान है,...** समझ में आया ? पहले में पहला विकल्पादि शुभराग है, कर्म आदि का उदय है, उसे मैं पर पृथक... पृथक... पृथक... पृथक... पर से पृथक् हूँ, ऐसे गुण में मूलगुण भगवान त्रिलोकनाथ ने कहा है। कहो, पण्डितजी ! क्या मूलगुण है ? पहले पढ़ा था कि मूलगुण क्या है ? लो, पढ़ा ही नहीं। तो कहते हैं देखो, **जिसके द्वारा... 'न्यान सहावेन संजुत्त धुव निस्चं मूलगुणं' ज्ञान स्वभावमयी अविनाशी आत्मा का अनुभव होता है, उसे धारना सो ही निश्चय शुद्ध मूलगुण है।** है ? देखो, इसमें यह लाईन रखी है, हों ! अन्तिम है न तुम्हारे तो माल अन्दर आ गया। समझ में आया ? क्या कहते हैं ? अहो ! भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव चैतन्यप्रभु अविनाशी आत्मा का अनुभव होता है, उस अनुभव से धारणा होती है कि यह आत्मा। उस अनुभव से धारणा होती है कि यह आत्मा। यही निश्चय शुद्ध मूलगुण है। समझ में आया ?

और **'उत्तरगुन धरइ निम्मलं विमलं'** यह मूलगुण के बाद, ऐसे मूलगुण होने के बाद **इसी आत्मध्यान को रागादि दोषरहित अति निर्मल धारण करना उसी को बढ़ाते जाना उत्तरगुण है।** सेठी ! अपना शुद्ध स्वभाव राग से भिन्न करके पहले भेदज्ञान करना, वही भेदज्ञान उपयोग का करना, वही मूलगुण है। फिर क्रम... क्रम... क्रम से... राग की अस्थिरता टालना और स्थिरता बढ़ाना, वह उत्तरगुण है। समझ में आया ? यह मूलगुण और उत्तरगुण बिना तेरा व्यवहार मूलगुण और उत्तरगुण, उसे व्यवहार भी नहीं कहा जाता। तेरा अकेला व्यवहार वह फोक (व्यर्थ) है। पुण्यबन्ध का कारण है। उसमें कोई आत्मा का कल्याण है नहीं। कहो, समझ में आया ?

पश्चात् ३८४ (गाथा)।

उत्तर ऊर्ध सहावं, ऊर्धं तव विमल निम्मलं सहसा।
सुध सहावं पिच्छदि, उत्तर गुन धरंति सुध ससहावं॥३८४॥

उत्तर गुण श्रेष्ठ आत्म स्वभाव को प्राप्त करना है... क्रम-क्रम से शुद्धि वीतरागी परिणति की प्राप्ति करना, उसे भगवान त्रिलोकनाथ जिन उक्तं—जिन ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वीतरागी ने ऐसा कहा है, ऐसा तारणस्वामी कहते हैं। हम कहते नहीं, हमारे घर की बात नहीं। समझ में आया? देखो, **रागादि से सहित श्रेष्ठ प्रत्यक्ष केवलज्ञान... वह अकस्मात् चार घातियाकर्मों से रहित रागादि से रहित श्रेष्ठ प्रत्यक्ष केवलज्ञान...** होता है। **तब आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव को प्रत्यक्ष अनुभव करता है, यही शुद्ध स्वाभाविक उत्तर गुणों का धारण है।** लो! उत्तर अर्थात् प्रधान। उत्तर का अर्थ ऐसा लिया। मूल में भेदविज्ञान लिया, उत्तर में प्रधान केवलज्ञान लिया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रम-क्रम से उत्तर है न। उत्तर अर्थात् प्रधान, उत्तर अर्थात् प्रधान, उत्कृष्ट और मूल अर्थात् मूल। तो मूलगुण उसे कहते हैं कि विकार व्यवहार विकल्प से पृथक् अपने भेदज्ञान का उपयोग करना, वह मलूगुण है। और पश्चात् उत्तर अर्थात् प्रधान स्वरूप में एकाकार होकर चार घाति (कर्म) का नाश होकर, क्रम-क्रम से शुद्धि की वृद्धि होती जाये, तब केवलज्ञान प्राप्त करना, उसे उत्तरगुण कहते हैं। लोगों को कठिन पड़े, हों! यह तो निश्चय। परन्तु तेरे निश्चय बिना व्यवहार आया कहाँ से? यह कहते हैं यहाँ तो। हम मूलगुण पालते हैं... मूलगुण पालते हैं... मुनि अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं। क्या आया? समझ में आया?

शुद्ध स्वाभाविक उत्तर गुणों का धारण है। लो! फिर जरा ३८५ मुनि की प्रधानता से बात करते हैं न!

मूल उत्तर संसुद्धं, सुधं सम्मत्त सुध तवयरनं।
तिक्तंति चेल सहावं सुधं सम्मत्त धरन संसुद्धं॥३८५॥

जिसके मूलगुण व उत्तरगुण शुद्ध हैं... पहले कहे ऐसे, पहले कहे ऐसे। जिसे

भेदज्ञान रागरहित शुद्धि की प्राप्ति है और उत्तरगुण में भी शुद्धि की वृद्धि होती है। **'सुधं सम्मत्त सुध तवयरनं' जहाँ शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व है...** शुद्ध समकित कहा है न? मूल तो निश्चय समकित है। जहाँ निश्चय सम्यक् है और **शुद्ध आत्मरमण रूप व आत्मपन रूप तपश्चरण है।** यह तपस्या। यह अपवास-बपवास करना, वह तो शुभराग है। परन्तु अपने स्वरूप में, देखो, **'सुधं सम्मत्त सुध तवयरनं'** निज आत्मरमण में आत्मतपन करना और अन्दर शुद्धता की वृद्धि करना। जैसे सोना में गेरुं लगाते हैं न गेरुं? गेरु कहते हैं न? तो सोना में ओप आती है। आप—शोभा होती है। इसी प्रकार अपना आत्मा राग अर्थात् व्यवहार से भिन्न करके भेदज्ञानरूपी मूलगुण प्राप्त किये, पश्चात् अन्तर शुद्ध गुण में वृद्धि करने से निर्मल आत्मा शोभता है। उसे उत्तरगुण कहा जाता है। कहो, समझ में आया? परन्तु यह कहते हैं, जरा लेते हैं। और कोई मुनि नाम धरावे और वस्त्र-पात्र रखे और कहे कि हम भी मुनि हैं। तो ऐसा नहीं है।

ऐसे मूलगुण-उत्तरगुण धरनेवाले **'तित्तंति चेल सहावं' जहाँ वस्त्र परिधान के समान सर्व परभावों का त्यागमयी स्वभाव है...** देखो, मुनि को वहाँ वस्त्र तो छूट गये हैं परन्तु जहाँ रागादि परिधान—ढांकण, गुण को ढांकते हैं, वह राग भी छोड़ दिया है। समझ में आया? **'तित्तंति चेल सहावं' 'सहावं'** शब्द पड़ा है न भाई इसलिए **'चेल सहावं'** ऐसा। वस्त्र जैसा स्वभाव। किसका? राग का। राग का वस्त्र जैसा स्वभाव है। राग अपने को ढांक देता है। समझ में आया? **जहाँ वस्त्र परिधान के समान सर्व परभावों का त्यागमयी स्वभाव है, जहाँ शुद्ध सम्यग्दर्शन का निश्चय से धारना है। यही यथार्थ साधुपना है।** उसे मूलगुण और उत्तर गुणवाले साधु कहा जाता है। कहो, समझ में आया? पश्चात् तो अन्दर के वस्त्र की व्याख्या ली है। यह तो पाँचों ही अन्दर में घटित किये हैं। यह वस्त्र है न अन्दर में? वह भी आत्मा में घटित किये हैं। कहो, यहाँ आये। ७५ गाथा हुई। ७६ (गाथा)।

पूर्वं पूर्व उक्तं च, द्वादसांगं समुच्चयं।
ममात्मा अंग सार्धं च, आत्मनं परमात्मनं॥७६॥

लो, समुच्चय आया यह। ज्ञानसमुच्चय (सार) है न?

अहो! **द्वादशांग का तथा हर एक पूर्व का सार यही कहा गया है... 'उक्तं'** शब्द पड़ा है न? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ देवादिदेव जैन परमेश्वर ने **'उक्तं'** अर्थात् ऐसा कहा है कि **द्वादशांग का तथा हर एक पूर्व...** बारह में से सब पूर्व। **यही कहा गया है... 'ममात्मा अंग सार्धं च' यद्यपि मेरा आत्मा शरीरसहित है...** सम्बन्ध में दिखता है। **तथापि निश्चय से यह आत्मा परमात्मा है ऐसा जाननेयोग्य है।** शरीर की पर्याय को स्पर्शा नहीं, ऐसा बारह अंग में सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ कहते हैं। समझ में आया? ओहो! शरीर उसकी—जड़ की पर्याय है। अरे! विकार, वह भी मलिन पर्याय है। उससे रहित द्वादशांग के सार में और पूर्व के सार में भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र परमात्मा जिनपति ने फरमाया कि तेरा आत्मा विकार और शरीर को स्पर्शा ही नहीं। ऐसी तेरी वस्तु है, वह द्वादशांग ज्ञानसमुच्चयसार का सार है। समझ में आया? ...लालजी! ओहोहो! फिर जरा कहते हैं। ७७-७८ (गाथा)।

संमिक् दर्सन सुधं च, न्यानं सुद्ध मयं धुवं।
चरनं सुद्ध पदं सार्धं सहकारेण तपं धुवं॥७७॥

आराहनं च चत्वारि, भावनं सुध चेयनं।
मय मूर्ति समं सुधं, अप्पा परमप्प संजुतं॥७८॥

दो गाथायें साथ में हैं। क्या कहते हैं?

अहो! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा बारह अंग में साररूप सार मक्खन क्या कहा है? कि **शुद्धात्मा की प्रतीतिरूप निश्चय शुद्ध सम्यग्दर्शन है।** पूर्णानन्द परमात्मा अखण्ड शुद्ध है, उस प्रकार उसमें सन्मुख होकर परिणाम को स्वभाव सन्मुख करके प्रतीति निश्चय सम्यग्दर्शन करना, वह बारह अंग में साररूप कहा है। समझ में आया? पहले सम्यग्दर्शन है, देखो! पश्चात् शुभभाव हो, पुण्यबन्ध का कारण बीच में आता है, परन्तु वह चारित्र नहीं और सम्यग्दर्शन का वह विषय भी नहीं। अपने स्वरूप की शुद्ध प्रतीति, अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है और वही शुद्धस्वरूप का निश्चय **स्वसंवेदन ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।** वह ज्ञान का ज्ञान अन्तर में वेदन करना, वह सम्यग्ज्ञान है। शास्त्र का ज्ञान एक ओर रख दिया। समझ में आया? निश्चय की बात लोगों को कठिन पड़ती है।

समझने की दरकार नहीं। फिर स्वाध्याय करे परन्तु उसमें से ऐसा निकाले कहाँ से ? यह कहते हैं, ऐसा लिखा है, लिखा है ऐसा माने। ऐसा लिखा है, परन्तु लिखा है उसका आशय क्या है ? तो कहते हैं कि स्वसंवेदनज्ञान को भगवान बारह अंग पूर्व में सम्यग्ज्ञान कहते हैं। **'सुद्ध पदं सार्धं चरनं' शुद्ध पदार्थ में तन्मय होना...** लो, यह चारित्र की व्याख्या। भगवान आत्मा पवित्र अखण्डानन्द शुद्ध जो दृष्टि में लिया था, उसमें लीन होना, इसका नाम चारित्र है। कोई वस्त्र का त्याग, महाव्रत पालने का विकल्प, वह चारित्र-फारित्र है नहीं। समझ में आया ?

अब तप कहते हैं—आराधना, भाई ! चार की आराधना। लोग कहते हैं न दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप की आराधना करो, आराधना करो। कहते हैं या नहीं ? वह आराधना कौनसी ? विकल्प की आराधना करना है ? जड़ की आराधना, नहीं खाना, उसकी आराधना ? कि नहीं। अपना स्वरूप शुद्ध परमानन्दस्वरूप विकल्प व्यवहाररत्नत्रय से पर, ऐसी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसकी रमणता और **इन तीन रत्नसहित आत्मा में तपना...** देखो, यह तप है। बाकी सब लंघन है। शोभालालजी ! यह घर में स्त्रियाँ कर डालती हैं चार अपवास और आठ अपवास। चलो भाई ! बहुत किया तुमने। लाओ हम गृहस्थ हैं ... दो हजार खर्च डालो। क्या कहते हैं उसे ? उत्सव कहते हैं न ? उद्यापन कहते हैं। उद्यापन कहते हैं या क्या कहते हैं ? सेठिया को घर से स्त्री ने इतने किये। दस पर्व किये। अब अपने प्रमाण में दो-पाँच हजार खर्च करना तो पड़े न ! वरना लंघन की। घर के लोग कहे, दूसरे कहे, लंघन की, तू इतना पैसेवाला है न। है तो लंघन ही, तुझे खबर नहीं। पैसा खर्च करे तो उसका लंघन मिट जाये। ऐसा है ? यहाँ तो कहते हैं कि लंघन है, परन्तु तेरा लंघन कब मिटे ? शुद्ध सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में तपना, अन्दर में रमना, ऐसी अपनी शोभा प्रगट करे तो उसे तप कहते हैं। समझ में आया ? बाहर का तप, वह तो विकल्प है। वह निश्चय हो तो व्यवहार कहा जाता है। निश्चय न हो तो व्यवहार नहीं कहा जाता। समझ में आया ?

ये चार आराधनायें निश्चय से शुद्ध चेतना की भावना हैं... देखो, संक्षिप्त में ले लिया। बहुत संक्षिप्त में। चार आराधना क्या है ? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप क्या है ? संक्षिप्त में ले लिया। **'सुध चेयनं भावनं'** शुद्ध चेतना ज्ञानानन्द चेतनमूर्ति प्रभु की

एकाग्रता से भावना होना, वह चार आराधना है। भावना शब्द से विकल्प नहीं, हों! **'सुध चेयनं भावनं'** उतने बहुत संक्षिप्त शब्द लिये। शुद्ध चैतन्य ज्ञानमूर्ति भगवान के अन्तर में दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप की एकाग्रता को भगवान बारह अंग में आराधना कहते हैं। यह भगवती आराधना में आता है न। वह यह आराधना है। इस आराधना बिना अकेला कायक्लेश करे, आहार छोड़ दे, वह आराधना करता है? विराधना करता है। समझ में आया?

शुद्ध चेतना की भावना है मिट्टी के मूर्ति के समान शुद्ध रूप से एकाग्रता है... एकाकार मानो सोना की मूर्ति मिट्टी की होती है न? ऐसे अन्तर में एकाकार हो गया। चैतन्य धातु भगवान एकाकार असाधारण स्वभाव जो है, उसमें लीन हो गया। अर्थात् कि आत्मा का परमात्मा के साथ संयोग कराना। अपनी निर्मल पर्याय द्वारा परमात्मा अर्थात् त्रिकाल शुद्ध स्वभाव का सम्बन्ध कराना, इसका नाम आराधना कहा जाता है। गजब बात, भाई! आराधना। लो, यह पुस्तकें इतनी रखी हैं तो भी इन सेठ ने और इन पण्डितों ने सुना और वाँचा नहीं। पुस्तकें तो बहुत वाँचते हैं। परन्तु यह क्या है? समझ में आया?

भगवान आराधना त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर उसे कहते हैं, तारणस्वामी कहते हैं कि मेरे घर की बात हम नहीं कहते। **'उक्तं च'** वीतराग त्रिलोकनाथ अनन्त परमेश्वर हुए, उन्होंने आराधना के चार प्रकार शास्त्र में बारह अंग में ऐसे कहे हैं। अपने शुद्ध आनन्दकन्द में भावना अर्थात् एकाग्रता होना, इसका नाम दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप की आराधना कहा जाता है। सब व्याख्या ही दूसरी है। समझ में आया?

यह देखो, जरा अनुकम्पा लेना है। थोड़ा-थोड़ा बाकी है न? अनुकम्पा है अनुकम्पा, भाई है न! कहाँ है? यह पृष्ठ १३२। १३२। १३२ है न? गाथा २३७। १३१ पृष्ठ पर है। २३७ गाथा। अनुकम्पा। लोग अनुकम्पा दूसरी कहते हैं, भगवान निश्चय अनुकम्पा दूसरी कहते हैं, यह कहते हैं। समझ में आया?

अनुकंपा जीवानं, थावर वियलेंदिय सयलमप्पानं।
अनुकंप भाव विसुधं असत्य सहितोपि विवरीदो॥२३७॥

क्या कहते हैं, देखो! **समस्त जीवों पर दया भाव अनुकम्पा है।** यह विकल्प व्यवहार है। **स्थावर एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक विकलत्रय जन्तु तथा पंचेन्द्रिय जीव सर्व ही प्राणियों पर करुणा भाव... 'असत्य सहितोपि विवरीदो'** असत्य रागसहित है तो भी असत्य से विपरीत है। कौन? यह राग है, वह अनअनुकम्पा है, राग है, पुण्य है, वह अभी अनअनुकम्पा है, अनअनुकम्पा है। तो असत्य ऐसा राग से रहित अपनी श्रद्धा, ज्ञान और निर्मलता करना, उसे भगवान अनुकम्पा कहते हैं। गजब व्याख्या, भाई! पर की अनुकम्पा तो शुभराग है। जो पहले कहा, भाई! परन्तु वह वास्तव में शुभराग को अनुकम्पा व्यवहार से कब कहा जाये? कि असत्य जो नाशवान विकल्प है, दया, दान, व्रत का विकल्प जो राग है, पर की अनुकम्पा का राग दया का, उस राग से रहित, वह राग असत्य है, त्रिकाल सत्स्वरूप नहीं, उससे रहित अपने स्वभाव की एकाग्रता रागरहित दशा को भगवान अनुकम्पा कहते हैं। गजब बात, भाई! कहो, समझ में आया? यह थोड़ा-थोड़ा नमूना उसमें से आ जाता है। सार-सार ज्ञानसमुच्चयसार में से। उसे अनुकम्पा कहते हैं।

पश्चात् २३८ में लिया है।

अनुकंप भाव विसुधं, अप्प सरुवं च चेयना भावं।
अनृत असत्य सहियं, तित्तंति अनुकंप भावेन॥२३८॥

निश्चय... अर्थात् वास्तव में **अनुकम्पा आत्मा का शुद्ध वीतराग भाव है...** लो, वह एक बार चिल्लाहट मचाते थे। कोलकाता में व्याख्यान में कहा था न। भाई! पर की दया का भाव, वह राग है और निश्चय से तो वह हिंसा है। हाय.. हाय..! यह तो सब उड़ा देते हैं। हम कोलकाता जब गये थे न, तब यह बात व्याख्यान में चलती थी। राग। राग तो राग ही वह पुण्यबन्ध का कारण है, पर की अनुकम्पा, वह वास्तव में अनुकम्पा है नहीं। कौनसी अनुकम्पा है? शुद्ध वीतरागभाव। वह रागरहित भेदज्ञान करके स्वरूप में लीनता की शुद्धता प्रगट करना, उसे भगवान अनुकम्पा और अहिंसा कहते हैं। सब में अर्थ बदल जाता है, हों!

वह आत्मा का निज स्वाभाविक चैतन्य भाव है। देखो! **'अप्प सरुवं च चेयना भावं'** यह अनुकम्पा क्या है? आत्मा का निज शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और निर्मल

परिणति, वह चैतन्यभाव है, उसे भगवान अनुकम्पा कहते हैं। ऐसा तारणस्वामी द्वादशांग के सार में यह आया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **'अनुकंप भावेन अनृत असत्य सहियं तिक्तंति'** देखो! **इस निश्चय अनुकम्पा के भाव से मिथ्या व क्षणिक रागसहित भाव...** जो शुभाशुभ आदि है, उस **भाव का त्याग हो जाता है।** राग का अभाव हो जाना, दया के भाव का अभाव होना, ऐसे आत्मा में वीतरागभाव होता है, उसे भगवान द्वादशांग में अनुकम्पा और अहिंसा वर्णन करते हैं। समझ में आया? पश्चात् गाथा है न २३९।

दर्संति सुध तत्त्वं, अयं च अप्प गुनेहि दर्संति।
अप्पा परमप्पानं, अनुकंपा लहंति निव्वानं॥२३९॥

निश्चय अनुकम्पा शुद्ध आत्म तत्त्व को देखती है... ओहो! क्या देखते हैं? यह शब्द क्यों लिया? कि व्यवहार अनुकम्पा में परजीव दुःखी न हो, ऐसा भाव पर में दिखता है। शुभराग है न, शुभराग, पर की अनुकम्पा। अरे! उसे दुःख न होओ, ऐसे पर को देखता है शुभ अनुकम्पा, शुभराग अनुकम्पा, पुण्यबन्ध अनुकम्पा। यह निश्चय अनुकम्पा किसे देखती है? **'दर्संति सुध तत्त्वं'** अपने शुद्ध आत्मा की ओर सन्मुख दृष्टि करके देखती है। मैं शुद्ध आत्मा हूँ, ऐसी दृष्टि-ज्ञान में अपना शुद्ध तत्त्व देखती है। समझ में आया? ज्ञानसमुच्चयसार।

'अप्पा' अनुभव कराती है... क्या? **निश्चय अनुकम्पा शुद्ध आत्मतत्त्व को देखती है... 'अयं च अप्प गुनेहि दर्संति' वह आत्मा को आत्मिक गुणरूप ही अनुभव कराती है...** आत्मा तत्त्व को दिखलाती है और वह भाव अनुकम्पा आत्मा का गुण देखती है। अपने गुण निर्मल हैं, उसे देखती है। वीतरागी परिणति द्रव्य और गुण को देखती है और उसमें स्थिर होती है, उसे अनुकम्पा कहते हैं। समझ में आया? वाडीभाई! यह तुम्हारे वे कहते थे कि सब अर्थ बदल डाले हैं, ऐसा कहते थे। **यह आत्मा परमात्मा रूप है, ऐसी अनुकम्पा निर्वाण में ले जाती है।** बाहर की अनुकम्पा स्वर्ग में ले जाती है शुभराग और राग से रहित भगवान चिदानन्द ज्ञान में अन्दर स्थिरता करना, ऐसी अनुकम्पा निर्वाण में ले जाती है, मोक्ष में ले जाती है। शुभराग की सामर्थ्य नहीं कि मोक्ष

में ले जाये या आत्मा के कल्याण की प्राप्ति में परमार्थ साधन हो, ऐसा साधन है नहीं। व्यवहार साधन को वास्तव में साधन कहते ही नहीं। कहो, समझ में आया?

और दूसरी बात है आहारदान। पृष्ठ १५०। आहारदान किसे कहते हैं? १५०। २८१ गाथा है। देखो, २८१। है? देखो यह परमार्थ शास्त्र के सार में दान क्या है, उसे बताते हैं। यह दान तो है आहार आदि का विकल्प शुभराग, परन्तु ऐसे निश्चय आहारदान देने के शुभराग को व्यवहार कहा जाता है। वह यहाँ कहते हैं।

भेषज दान स उत्तं, संसारे सरनि व्याधि मुक्तस्य।
भेषज जिन उवएसं, जिनवयनंपि सार्धं तंपि॥२८१॥

'**स उत्तं**' देखो, कहा है ऐसा, हों! भगवान ने कहा है, ऐसा। हम नहीं कहते। भगवान बारह अंग में कहते हैं।

वह औषधिदान कहा गया है जहाँ संसार में भ्रमणरूपी राग की मुक्ति के लिये जिनेन्द्र के उपदेश रूपी औषधि को ग्रहण किया जाये... जिनेन्द्र का उपदेश, वीतरागभाव का उपदेश है भगवान का। पूरे सार में वीतराग, राग की उपेक्षा कर दे, निमित्त की उपेक्षा कर दे, स्वभाव की अपेक्षा कर दे। क्या कहा, समझ में आया? शुभाशुभराग की उपेक्षा कर दे, निमित्त की उपेक्षा कर दे और त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा कर दे। ऐसा त्रिलोकनाथ परमात्मा का बारह अंग में फरमान है। वह यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि भगवान तो ऐसा ही कहते हैं, भाई! निश्चय के भान बिना तेरे व्यवहार औषधदान, व्यवहार आहारदान, वह वास्तव में गिनने में आते नहीं। समझ में आया?

जिनेन्द्र के उपदेश रूपी औषधि को ग्रहण किया जाये जिनेन्द्र के वचनों को धारण भी किया जाये... परन्तु जिनेन्द्र का वचन कौनसा? कहीं जिनेन्द्र की वाणी धारणा है? जिनेन्द्र वाणी में जो वीतराग श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र कहते हैं, उसे अन्दर धारना, वह वीतराग की वाणी धारण करना है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वाणी तो पर है, जड़ है, उसे क्या धारना? परन्तु उस वाणी में कहा कि शुद्ध चेतनमूर्ति निर्लेप भगवान की दृष्टि, ज्ञान, रमणता कर—ऐसी वीतराग की धारण की, उसने वीतरागभाव को धारण किया। जिनेन्द्र का उपदेश। **और उनके अनुसार साधन भी किया जाये।** देखो!

भेषज दान जिनुत्तं, दव्वं षट् काय पंचत्थं।
नव पयत्थ पदार्थं, तत्तं सप्तं च सुद्ध जानत्थं॥२८२॥

एरिस गुनेहि सुधं, जानदि रुव भेय विन्यानं।
सद्दहंति जिन उत्तं, भेषज दान पयासेई॥२८३॥

लो, यह भेषज दान। औषध-औषध। ऐई! औषध। 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं सद्गुरु वैद्य सुजान, गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।' यह श्रीमद् राजचन्द्र में आता है। आत्मसिद्धि है न! 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं सद्गुरु वैद्य सुजान' परन्तु जाननेवाला... सबको गुरु, हम ज्ञानी हैं, ऐसा माने तो चले नहीं। समझ में आया? 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं' कोई दूसरा रोग है ही नहीं। 'सद्गुरु वैद्य सुजान, गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं।' उनकी आज्ञा, जिनेन्द्र की आज्ञा, वह पथ्य है। आज्ञा क्या है? राग से रहित तेरी चीज़ का समभाव करो, यह हमारी आज्ञा है। ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव समवसरण में फरमाते हैं। समझ में आया? करना क्या? 'औषध विचार ध्यान।' तेरे शुद्ध स्वभाव का विचार और ध्यान करना, यह तेरा रोग मिटाने की औषधि है। समझ में आया?

यह कहते हैं कि **औषधिदान जिनेन्द्र के द्वारा कहा गया है जहाँ पदार्थ के ज्ञान के लिये व शुद्ध आत्मा के ध्यान के लिये छह द्रव्यों को,...** छह द्रव्य क्या है, उसका ज्ञान करना। **पाँच अस्तिकाय को, नव पदार्थों को तथा सात तत्त्वों को जाना जाये। इन गुणों से युक्त शुद्ध आत्मा के स्वभाव को बतानेवाले भेदविज्ञान को जानता है।** देखो! भेदविज्ञान के बाद यह तत्त्व का बराबर ज्ञान करने में आता है। **'जिन उत्तं सद्दहंति'** देखो, है न? **'जिन उत्तं' तथा जिन कथित मार्ग पर श्रद्धान रखता है, वही औषधिदान को प्रकाश करनेयोग्य है।** यह आत्मा का संसार नाश करने की औषधि है। बाहर की औषधि तो सब... कहाँ दुर्गादासजी! यह औषधि आयी तुम्हारी। फोगट। फोगट की औषधि कहते हैं। अब आहारदान। २८४ (गाथा)।

पत्त कुपत्तं जानदि, भेषज उवएस सुधमप्पानं।
जे भव्य जीव साहं, ते जर मरन विनासेई॥२८४॥

जो पात्र, कुपात्र को पहचानता है... सम्यग्ज्ञानी को पात्र की और अपात्र की बराबर पहिचान होती है। ऐसे का ऐसा बिना भान के नहीं चलता कि यह पात्र है और ऐसा, ब्रह्मचर्य पालता है और ऐसा पात्र है, ऐसा नहीं। अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान विवेक क्या है ? विवेक किसे नहीं ? ऐसा बराबर समझता है। **शुद्ध आत्मा का अनुभव कराने के लिये उपदेशरूपी औषधि देता है...** पात्र तो वह है कि **शुद्ध आत्मा का अनुभव कराने के लिये उपदेश रूपी औषधि देता है...** उसका उपदेश ऐसा होता है सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि का। और **उसका ग्रहण कर जो भव्य जीव साधन करता है, वह जरा व मरण का नाश कर देता है।**

आहारदान सुधं, न्यानं आहार दिंति पत्तस्य।
तिक्तंति जीव आहारं, न्यान आहार कुनय भव महनं ॥२८५॥

ओहोहो! आहार की व्याख्या की, देखो! **शुद्ध आहारदान यह है कि पात्र को ज्ञान का आहार दिया जावे...** उस पात्र को ज्ञान का आहार दिया जाये। समझ में आया ? सम्यग्ज्ञान शुद्ध चैतन्य का ज्ञान देना, उसका नाम वास्तव में आहारदान कहा जाता है। व्याख्या भी सब अलग। समझ में आया ? यह आहारदान होता है, पात्र को होता है, शुभराग है। परन्तु पश्चात् अन्तर ज्ञान की एकाग्रता से ज्ञान के शुद्धभाव का घोलन करके शुद्ध उपदेश देना, वही वास्तव में आहारदान में ज्ञानदान गिनने में आता है।

स्थावर जीवों के घात से बना आहार त्याग कराया जावे... बाहर से स्थावर जीवों के घात का त्याग अन्तर में से राग का त्याग करावे और स्थिरता। **ज्ञान का भोजन खिलाना मिथ्यानय से प्राप्त अज्ञान को व संसार के भय को दूर करनेवाला है।** मिथ्याज्ञान का नाश करना और सम्यग्ज्ञान का भोजन कराना, इसका नाम वास्तव में अन्नदान कहा जाता है। आहाहा! देखो, है या नहीं इसमें ? **तिक्तंति जीव आहारं, न्यान आहार कुनय भव महनं'** ऐसा है। फिर आहार की व्याख्या। अभयदान की व्याख्या है। ....

अब अतिथि लेना जरा अतिथि है न, भाई! २७१ पृष्ठ पर है। २७१ है। २७१। **'अतिथि सुयं विभाग'** यह अतिथिसंविभाग आता है न बारहवाँ व्रत। साधु को अतिथिसंविभाग व्रत (होता है)। गाथा ४९६। है ?

अतिथि सुयं विभागं, मिथ्या मय राग दोस विरयंतो।
अन्यानं नहु पिच्छै, सुध सहावं च पिच्छए अप्पा॥४९६॥

अपने आत्मारूपी अतिथि... देखो, अपना आत्मा तिथि रहित है, त्रिकाली चीज़ है। उसे कोई काल लागू नहीं पड़ता। तिथि नहीं, अतिथि। त्रिकाल ज्ञानानन्द ध्रुव आत्मा अतिथि है, अपना आत्मा अतिथि। **अर्थात् साधु को...** अपने आत्मारूपी साधु को **आत्मानुभव का प्रदान करना...** आत्मा के अनुभव के आनन्द का दान देना। अतीन्द्रिय आत्मा का आनन्द साधु को देना, इसका नाम अतिथिसंविभाग व्रत कहा जाता है। आहाहा! अरेरे! समझ में आया? '**अतिथि सुयं विभागं**' लिखा है न!

मिथ्यात्व, मद, राग, द्वेष को छोड़ता हुआ मिथ्याज्ञान को नहीं देखता हुआ आत्मा शुद्ध स्वभाव का अनुभव करता है, यही अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत है। यह बारहवाँ व्रत इसे कहते हैं। श्रावक-श्रावक कहे, परन्तु आत्मा अन्दर शुद्ध आनन्द का भोजन अतिथि भगवान आत्मा, उसे अन्नदान आनन्द का न दे, बाहर से मात्र आहारदान दे तो शुभराग होगा, पुण्यबंध हो जाएगा। जन्म-मरण का अन्त यह बारहवाँ व्रत बाहर से व्यवहार से आता नहीं, निश्चय से आता है। ओहोहो! सार-सार निकला है। पश्चात् ४९७ है न?

सुयं विभागी सुधं, अन्यो पुग्गल विअनु अप्पानं।
विविक्त सरुव सुधं, अप्पानं परमप्पयं जानं॥४९७॥

अपने शुद्ध स्वरूप को पर से विभाग करना... लो, यह अतिथिसंविभाग व्रत। भाग करना है न? अपने आहार में से भाग करके थोड़ा मुनि को देना, यह व्यवहार विकल्प है। निश्चय से **अपने शुद्ध स्वरूप को पर से विभाग करना अतिथि सुयंविभाग है...** सेठी! बहुत शीघ्रता से बात करते हैं। **पुद्गल अन्य है, आत्मा अन्य है—ऐसा जानना...** इसका नाम अपना विभाग-संविभाग किया है। पुद्गल से और अपने आत्मा को राग से अपने आत्मा को भिन्न करना, यही अतिथिसंविभाग व्रत है। यह न हो तो मात्र मुनियों को, सच्चे मुनि हैं, सच्चे मुनि, उन्हें भी, अरे! तीर्थंकर जैसे साधु छद्मस्थ-छद्मस्थ उन्हें आहार दे तो भी शुभराग है। समझ में आया? परन्तु अपना अतिथि साधु

भगवान आत्मा, जिसकी तिथि नहीं, जिसका काल नहीं, त्रिकाल आनन्दकन्द ध्रुव पड़ा है, उसे अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति का भोजन देना और पुद्गल से भाग करना, इसका नाम अतिथिसंविभाग कहा जाता है।

'विविक्त सुध सरुवं' अपने शुद्ध स्वरूप को जान करके आत्मा को परमात्मा रूप अनुभव करना अतिथि सुयंविभाग शिक्षाव्रत है। लो! समझ में आया? आसन्न शब्द आता है भाई इसमें। ५०० गाथा है न!

बारह वय उवएसं, धरन्ति भावे विसुध सभावं।
आसन्न भव्य पुरिसा, न्यान बलेन निव्वुए जंति॥५००॥

यह बारह व्रत लिये। यह अन्तर के हों, निश्चय व्रत हैं। कहते हैं कि **ऊपर कहे गये बारह व्रतों का उपदेश निश्चयनय से किया गया है। जो कोई... 'आसन्न भव्य पुरिसा'** जिसका भव निकट है, संसार का नाश निकट है। अल्प काल में जिसे मुक्ति में जाना है, उसे आसन्नभव्य पुरुष कहा जाता है। **निकट भव्य पुरुष...** अल्प काल में जिसे मुक्ति होनी है, ऐसा पुरुष **अपने भावों में शुद्ध आत्मिक भाव को धारण करते हैं, वे अपने आत्मज्ञान के बल से निर्वाण को पाते हैं।** अपने ज्ञान के अन्तर के जोर से स्थिर होकर निर्वाण को पाते हैं। विकल्प बीच में आता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है, उसका निषेध हो जाता है। समझ में आया? यह हो गयी।

अब थोड़ा मान (के विषय में कहते हैं)। पृष्ठ ७८। पृष्ठ ७८ है न? क्या चलता है? पृष्ठ ७८ है न। देखो! अध्यात्म की दृष्टि से मान की व्याख्या करते हैं। १४० गाथा है, लो!

मानं च जिन उक्तं च, मानं प्रमान चिन्तनं।
अप्पा परमप्पयं तुल्यं, मानं प्रमान उच्यते॥१४०॥

है? कितनी गाथा है? १४०। **श्री जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ मान यह है जो मान परिमाण चिन्तवन करे...** अपना आत्मा जितने प्रमाण में शुद्ध है, उसका माप करके, ध्यान करके मान करे, उसका नाम मान कहा जाता है। उससे विरुद्ध रागादि का मान करे तो अनन्तानुबन्धी का मान कहा जाता है। समझ में आया? शुभराग का मान

करे कि यह मेरी चीज़ है तो उसका मान किया उसे अनन्तानुबन्धी का मान कहते हैं। और अपने शुद्ध आत्मा का मान प्रमाण करे कि मैं शुद्ध चैतन्य वीतराग पूर्णानन्द वीतराग जैसे जिनेन्द्र, वैसा मैं हूँ—ऐसा ज्ञान से अन्दर में माप—प्रमाण अन्दर में करे, उसमें से मान निकाला है। सेठी!

श्री जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ मान यह है जो मान परिमाण चिन्तवन करे आत्मा परमात्मा के बराबर है... 'अप्पा परमप्पयं तुल्यं' मान करना है न मान? माप करना है। राग का माप करता है कि शुभराग हुआ तो मुझे कल्याण होगा। यह माप तेरा अनन्तानुबन्धी का माप है, यह अनन्तानुबन्धी का कषाय है। राग हो, परन्तु वह निमित्तरूप है, बन्ध का कारण है। मेरे स्वभाव का वास्तव में साधन नहीं परन्तु राग को स्वभाव का साधन मान ले तो अनन्तानुबन्धी का माप है। राग का माप लिया कि उसमें मुझे कल्याण होगा। राग का बहुमान किया। अपना बहुमान किसे कहते हैं? कि अपनी शुद्ध चैतन्य रागरहित विकल्परहित चैतन्य मूर्ति प्रभु आत्मा परमात्मा तुल्य है, ऐसा अपने ज्ञान प्रमाण करना, उसे आत्मा का मान कहा जाता है। शोभालालजी! सब बात ही दूसरी है। सागर में सुनी नहीं होगी, लो! **'मानं प्रमान उच्यते'** देखो, इसमें बात करते हैं। फिर १४१।

मानं लोकालोकांतं, त्रिलोकं भुवनत्रय।
केवलदर्सन न्यानं च, मानं सर्वन्य पूजते॥१४१॥

'मानं लोकालोकांतं, त्रिलोकं भुवनत्रय' मान अर्थात् सम्यग्ज्ञान तीन लोक को तथा अलोक को देखने-जाननेवाला है। मान अर्थात् सम्यग्ज्ञानरूपी प्रमाण अपना प्रमाण हुआ। प्र-माण। प्र निकाल दो तो मान। मान अर्थात् माप। माप कहते हैं न? माप। माप कहते हैं यह दाने इतने हैं, यह ... इतने हैं, ऐसा माप करते हैं न? तो अपने आत्मा का माप किया कि मैं तो सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा हूँ, शक्ति में तो मैं परमात्मा हूँ। राग और विकल्प मेरी वस्तु में नहीं है। ऐसा **सम्यग्ज्ञान तीन लोक को तथा अलोक को देखने-जाननेवाला है। वही केवलदर्शन व केवलज्ञान स्वरूप है, ऐसे मान के धारी...** ऐसे प्रमाण को धरनेवाला, ऐसे मान को धरनेवाला, ऐसे सर्वज्ञ **भगवान है, जो पूजनिक अर्हंत हैं।** वास्तव में सर्वज्ञ भगवान ही मान है। उनके पास मान है, माप है।

तीन काल-तीन लोक उस मान में आ गये हैं। कहाँ द्रव्य जीव है, कहाँ उसकी पर्याय होगी ? भूत की, वर्तमान, भविष्य की सब उनके मान में, मान अर्थात् प्रमाण में, प्रमाण अर्थात् ज्ञान में माप आ गया है। तो वास्तव में तो अरिहन्त भगवान ही मानवाले हैं, प्रमाणवाले हैं। यह मान निकालकर ऐसे प्रमाण ले लिया, गुलाँट खाकर। आत्मा का मान ले लिया। समझ में आया ? थोड़ा अनन्तानुबन्धी का आया है न! वह भी है सही परन्तु चिह्न किया नहीं कहीं।

माया शुद्धं। १४८। १४८। १४८ है। यहाँ तो अपने शुद्ध में लेना है न! वह अशुद्ध तो एक ओर निकाल दिया।

माया सुधं जिन प्रोक्तं, त्रिलोक त्रिभुवन मयं।
ति अर्थ षट् कमलस्य, पंचदीप्ति प्रस्थितं॥१४८॥

देखो, यह तारणस्वामी माया का अर्थ करते हैं। माया कहते हैं न ? **जिनेन्द्र भगवान ने कहा है... 'जिन प्रोक्तं'** है न पण्डितजी! **'जिन प्रोक्तं' 'प्रोक्तं', 'प्रोक्तं'** भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा समवसरण में फरमाते हैं कि **शुद्ध माया या लक्ष्मी...** उसे माया कहते हैं न ? यह मायावाला प्राणी है। इसकी माया इतनी है, ऐसा कहते हैं न ? माया इतनी है। पचास लाख की माया, पच्चीस लाख की माया। यह माया नहीं, यह तो अशुद्ध माया है। **माया या लक्ष्मी तीन लोक के पदार्थ हैं, जिनसे तीन भुवन रचा हुआ है या तीन पदार्थ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हैं या छह अक्षरी मन्त्ररूपी कमल है या पाँच प्रकाशमान परमेष्ठी हैं या पाँच परमेष्ठी में पाये जानेवाले पाँच ज्ञान हैं।** ऐसी अपनी ज्ञानरूपी लक्ष्मी को माया कहा जाता है। जिस लक्ष्मी से लोकालोक का ज्ञान होता है और जिस लक्ष्मी से ज्ञान प्रगट हुआ उसे पाँचवाँ केवलज्ञान भी प्रगट होता है। यह लक्ष्मी। लोग नहीं कहते ? धन धन को बढ़ाता है। क्या कहते हैं ? ऐसा कहते हैं न, हमारी भाषा अपने काठियावाड़ी में नहीं ? पंड रळे तो पेट भराय, पंड रळे तो पेट भराय, ऐसा हमारे कहते हैं। धन रळे तो ढगला थाय। धन बहुत हो न, ब्याज और बहुत (कमाये) तो ढ़ेर हो। यहाँ कहते हैं कि वह धन कौनसा ? अपने स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान की लक्ष्मी, धन कमावे तो ढ़ेर हो। यह लक्ष्मी हो तो केवलज्ञान के ढ़ेर हों। ....भाई!

समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! '**पंचदीप्ति प्रस्थितं**' ऐसी सम्यग्ज्ञानरूपी लक्ष्मी से परमेष्ठी पद की प्राप्ति, ... अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त होता है, उसे वास्तव में माया कहा जाता है।

माया न्यान समं जुत्तं, माया दर्सति दर्सनं।
अप्पा परमप्पयं तुल्यं, माया मुक्ति पंथं धुवं॥१४९॥

'**माया**' अर्थात् **लक्ष्मी रूप माया वह है जो ज्ञान को समतारूप व यथार्थ जाना जाये...** अपने स्वरूप को समतारूप में यथार्थरूप से जाने, उसे माया कहते हैं। समझ में आया? सब अर्थ बदल दिये। **लक्ष्मीरूपी माया सम्यग्दर्शन को देखनेवाली है...** देखो, लक्ष्मी—सम्यग्ज्ञानरूपी माया सम्यग्दर्शन को देखनेवाली है। अथवा '**दर्सति दर्सनं**' अपने स्वरूप को दिखाती है। **आत्मा परमात्मा के समान ऐसी आत्मज्ञानमयी माया या लक्ष्मी मोक्षमार्ग है, ऐसा ज्ञानियों ने कहा है।** है न? बुद्ध ने। यह सर्वज्ञ ज्ञानियों ने माया का निश्चय लक्षण यह बनाया है। बाहर माया, कपट और कुटिल है, वह जरा पापबंध का कारण है। वह वास्तविक माया नहीं, तेरा स्वरूप ही वास्तविक माया है, लो! इतना उसमें आया। समझ में आया?

एक दूसरी बात लेते हैं, भाई! २३९ पृष्ठ पर है। २३९। २३९ यह आ गया है। यह द्विपद परिग्रह किसे कहते हैं? द्विपद, चौपद आता है या नहीं? दो पैर मनुष्य और उसका परिग्रह तथा चार पैर जो ढ़ोर, उसका परिग्रह किसे कहते हैं?

दुपदं दुबुहि जुत्तं, अन्यानं न्यान सुद्ध पद रहियं।
दुपदं अनिस्ट दिस्टं, इस्टं विओय दुपद तिक्तं च॥४४३॥

दुपद परिग्रह दासी-दास को कहते हैं, अन्तरंग में दुपद परिग्रह दुर्बुदि सहित भाव को कहते हैं... '**दुपदं**' '**दुपदं**' दो पैरवाला, यह बाहर। यहाँ '**दुपदं**' अर्थात् बुरा पद, बुरा पद अज्ञान राग-द्वेष। मेरा शुद्ध स्वभाव, मेरे राग से प्राप्त होगा, पुण्य से प्राप्त होगा, निमित्त से प्राप्त होगा, ऐसा जो अज्ञान और मिथ्याश्रद्धा, वह दुपद का परिग्रह मिथ्यादृष्टि ने पकड़ रखा है। ऐसा परिग्रह छोड़े बिना तेरे स्त्री, कुटुम्ब का दुपद छोड़ दे तो उसे हम परिग्रह का त्याग नहीं कहते। समझ में आया? क्या कहा?

'**दुपदं**' अन्दर में जो अपना शुद्धपद आत्मा है, उसके विरुद्ध श्रद्धा, पुण्य से धर्म मानना, पाप में सुख मानना, निमित्त से अपने में कार्य मानना—ऐसा अज्ञानरूपी दुपद है मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याज्ञान, उस दुपद का परिग्रह, वही मिथ्यात्व का परिग्रह है। उसका त्याग किये बिना बाहर का परिमाण, कोई परिमाण कहते थे न, लो इस समय आ गया है। तुम कहते थे न कि परिग्रह प्रमाण। कोई पूछता था किसी समय। ... ख्याल में तो एक बार आया था, ख्याल में रह गया। समझ में आया? रतनलालजी! प्रश्न करते थे सेठ। परिमाण, परन्तु किसका परिमाण? पहले '**दुपदं**' अपना अज्ञान, राग-द्वेष, मिथ्या श्रद्धा के त्याग बिना तुझे परिमाण किसका करना है? यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि अरे भाई! तू चैतन्यमूर्ति भगवान है, उसके विरुद्ध श्रद्धा, विकल्प और विकार से लाभ माननेवाले, संयोग की क्रिया हम करनेवाले, ऐसे मिथ्या श्रद्धा, अज्ञान रखता है और उसे छोड़े बिना परिग्रह का परिमाण करता है, तेरा परिग्रह का परिमाण सच्चा परिमाण है ही नहीं। शोभालालजी! समझ में आया?

दुपदं दुर्मति जुत्तं, हिंसानंदी च दुर्बुधिं जुत्तं।
दुपदं निगोय भावं, न्यान सहावेन दुपद तिक्तं च॥४४४॥

... बात की है। समझ में आया? यह **दुपद कुमतिज्ञान सहित भाव है, हिंसानंदी और मिथ्या शास्त्रज्ञान सहित है...** कुशास्त्र का ज्ञान और व्यवहारज्ञान से निश्चय प्राप्त होता है, निश्चय में व्यवहार की सहायता है, ऐसा निकालता है, वह सब मिथ्या शास्त्रज्ञान है। **दुपद निगोद में ले जानेवाला भाव है...** वह दुपद निगोद में ले जानेवाला भाव है। वह दुपद परिग्रह मिथ्यात्व और अज्ञान। **इसलिए निर्ग्रन्थ साधु ज्ञान स्वभाव में ठहरकर दुपद परिग्रह का त्याग कर देते हैं।** अब एक चतुरपद रह गया है। लो! '**चतुपद चौगइ सहियं**' चार पैर यह पशु है न, उनका प्रमाण करना। यह प्रमाण बाहर का है। तेरा प्रमाण अन्दर कर न!

चतुपद चौगइ सहियं, चौगइ चौकषाय संजुत्तं।
घाय चवक्कय सहियं, चौविहि बंध च बंध सहकारं॥४४५॥
ठिदि अनुभाग स उत्तं, प्रकृति प्रदेस बंध सुह असुहं।
चौपद बन्ध सहावं, न्यानबलेन चौपदं तिक्तं॥४४६॥

लो, यह चार प्रकार हैं। चार गति के भाव का छेदन करना, उसने चार पद का परिमाण किया। '**चौगइ**' चार कषाय का त्याग करना, उसने चौ पद का त्याग किया। चार घाति का नाश करना, चार बन्ध का नाश करना और बन्ध में भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश—चार। यह प्रकृतिबन्ध आदि... '**चौपद बन्ध सहावं,**' यह '**न्यानबलेन चौपदं तिक्तं**' ज्ञानस्वरूप के जोर से उसका त्याग करना, यह चतुर्पद का परिमाण किया और चतुर्पद का त्याग किया, ऐसा बारह अंग में यह सार कहा गया है। यह चौ पद का कहा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)